CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

7.2

संगीतोपयोगी संस्कृत

[द्वितीय भाग]

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, भदैनी
वाराणसी-5

[सौ०] विमला मुसलगाँवकर
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीतोपयोगी संस्कृत

(द्वितीय भाग)

आ : 1/५१८
आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

लेखिका

(सौ०) विमला मुसलगाँवकर एम. ए.

(हिन्दी, संस्कृत) बी० टी०

संस्कृत अध्यापिका, संगीतशास्त्र विभाग,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

भूमिका एवं परिशिष्ट

(डॉ० कु०) प्रेमलता शर्मा

अध्यक्षा, संगीतशास्त्र विभाग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशिका

(सौ०) विमला मुसलगाँवकर

©

वितरक—मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली; वाराणसी; पटना

आम्नाय ग्रन्थालय,
...व, करौंदी
वाराणसी-5

मूल्य १०)

प्रथम संस्करण—जनवरी, १९७५

मुद्रक :—
नरेन्द्रकुमार प्राणलाल आचार्य
आचार्य मुद्रणालय, मछोदरी
वाराणसी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, करोंदी
वाराणसी-5

भूमिका

'संगीतोपयोगी संस्कृत' के द्वितीय भाग का भारतीय संगीत जगत् में प्राकट्य देखकर मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है।

तिङ्, कृत्, तद्धित और समास—इतने विषयों का इस भाग में समावेश करने की 'प्रतिज्ञा' पूरी हुई। वाक्य-संग्रह प्रथम भाग की अपेक्षा विस्तृत है। केवल वाद्य और ताल-सम्बन्धी वाक्य नहीं दिये जा सके हैं। कागज़ की दुर्लभता ही इस अवांछित संक्षेप का कारण है।

परिशिष्ट में संगीतशास्त्र के अध्ययन से सम्बद्ध समस्याओं पर विशेष रूप से रचित संस्कृत संवाद और स्वरलिपि-सहित तीन संस्कृत ध्रुवपद गीत दिये गए हैं। इस सामग्री का गत तीन वर्षों में संगीतशास्त्र विभाग में आयोजित वार्षिक संस्कृत दिवसों के उपलक्ष्य में सर्जन हुआ था। संस्कृत वृत्तों को तालबद्ध करके गाने की पद्धति का सोदाहरण निर्देश भी परिशिष्ट के अन्त में दिया गया है। आशा है यह सामग्री विद्यार्थियों के लिए उपयोगी होगी। इस बार (२६ अगस्त १९७४ को) हमारे संस्कृत दिवस के अवसर पर परम विदुषी बहन प्रोफेसर डॉक्टर पद्मा मिश्रा का जो अध्यक्षीय भाषण हुआ था उसे भी पाठकों के लाभार्थ समाविष्ट किया गया है।

विस्तार-भय से तिङन्त रूपों का निर्देश-मात्र ही सम्भव हुआ है। रूपों के समग्र दर्शन के लिए विद्यार्थी किसी रूप-संग्रह का उपयोग अवश्य करें। सर्वत्र पाणिनि-सूत्रों का समावेश इसी विचार से किया गया है कि शिक्षक की सहायता से विद्यार्थी संस्कृत व्याकरण की सूत्रपद्धति का आवश्यक परिचय पा सकेंगे। जिन्हें शिक्षक की सहायता सुलभ न हो, वे यथासम्भव सार या मर्म को ग्रहण करके सन्तोष पा लेंगे ऐसी आशा है। द्वितीय भाग की विषय-वस्तु स्वाभाविक रूप से कुछ कठिन है। प्रथम भाग के विषयों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हृदयंगम करने के पश्चात् ही विद्यार्थी द्वितीय भाग का अध्ययन करेंगे, ऐसी अपेक्षा है।

अनुक्रमणिका के अन्त में कुछ विशेष अशुद्धियों का संकेत दिया गया है। तदनुसार पाठक कृपया संशोधन कर लें। मुद्रण की सामान्य अशुद्धियाँ विज्ञ पाठक स्वयं ही सुधार लें, ऐसी विनम्र प्रार्थना है।

सौ० विमला मुसलगाँवकर परिश्रम और अध्यवसाय के लिए बधाई की पात्र हैं। आप की इस कृति का उचित मूल्यांकन और समादर होगा ऐसी मेरी श्रद्धा है। भारतीय संगीत के आधुनिक शिक्षण के इतिहास में इसका महत्त्व क्रमशः स्वीकृत होगा, इसमें सन्देह नहीं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की प्राध्यापिका के द्वारा यह कार्य सिद्ध होने में विशेष औचित्य है। और इस कारण मुझे द्विगुणित हर्ष है।

प्रेमलता शर्मा
अध्यक्षा, संगीतशास्त्र विभाग
संगीत एवं ललित कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वाराणसी—५
मङ्गलवार,
मकरसङ्क्रान्ति
१४ जनवरी, १९७५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्म-निवेदन

गतवर्ष १६ अगस्त १९७३ को 'संगीतोपयोगी संस्कृत' पुस्तक का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ तभी 'इसके द्वितीय भाग में तिङ्, कृत्, तद्धित तथा समास का परिचय और संगीत के शास्त्रीय ग्रन्थों से विपुल संस्कृत-वाक्यों का संग्रह दिया जायगा' ऐसा संकल्प किया था। कागज़ की अप्रत्याशित दुर्लभता के कारण इस 'भाग' के प्रकाशन में अनुमान से अधिक विलम्ब हो गया। कुण्ठित-शिथिलमन को तत्काल साहस और गति देने का श्रेय पूज्य बहिन डॉ० प्रेमलता शर्मा [अध्यक्षा, संगीतशास्त्र-विभाग, वाराणसी] को ही है। आज भगवान् की असीम अनुकम्पा और डॉ० (कु०) प्रेमलता शर्मा बहिन जी के अविचल विश्वास से प्रसूत प्रेरणा के कारण ही यह कार्य सम्पन्न हो सका। हाँ! कागज़ के मूल्य में आशातीत वृद्धि हो जाने से पुस्तक के पूर्व-कथित अंशों के कलेवर को संक्षिप्त करना पड़ा है।

पुस्तक के लेखन कार्य में डॉ० (कु०) उर्मिला शर्मा [प्राध्यापिका वसन्त कन्या विद्यालय, वाराणसी] की अमूल्य सेवायें प्राप्त हुई हैं। अतः मैं उनकी चिर कृतज्ञ हूँ।

संगीत-रत्नाकर तथा नाट्यशास्त्र से कुछ उपयोगी वाक्यों के संग्रह तथा चयन करने में दिशा-निर्देश स्नेही पू० डॉ० प्रेमलता बहिन जी से ही मिला है। उनका आभार किन शब्दों में प्रकट करूँ? अमूल्य का मूल्य-मापक ही कहाँ है?

वाक्य संग्रह के अंशों का अन्वय तथा अनुवाद कर जो सहयोग भावी डॉक्टर कु० विद्या कालविण्ट ने प्रदान किया, वह अविस्मरणीय है। उनको मैं हार्दिक शुभकामनाओं सहित आशीर्वाद प्रदान करती हूँ।

परिशिष्ट में संवाद-वैभव, गीतावली और वृत्तगान-पद्धति-निर्देश इन शीर्षकों में बहुमूल्य सामग्री डॉ० प्रेमलता शर्मा से प्राप्त हुई है, जिससे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। मैं प्रोफेसर डॉ० पद्मा मिश्रा के भाषण के प्रकाशन की अनुमति के लिए उनकी चिरकृतज्ञ हूँ।

द्वितीय भाग के प्रूफ-संशोधन का कार्य सम्पन्न करने में विदुषी डॉ० उर्मिला शर्मा बहिन तथा पूज्य प्रेमलताबहिन जी का अपूर्व योगदान रहा है। उन्होंने साहित्य सेवा का आदर्श वास्तविक रूप से चरितार्थ किया है।

पं०(डॉ०) ग० शास्त्री [रीडर, संस्कृत महाविद्यालय, का०हि०वि०वि०] की निःस्वार्थ आत्मीय सेवाओं की मैं चिर ऋणी हूँ। मैं उन सभी को धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने विशेष रूप से अथवा सामान्य रूप से पुस्तक निर्माण में सहयोग दिया है। मैं श्री प्राणलाल आचार्य की भी कृतज्ञ हूँ, जिनके सौजन्य से मुद्रणकार्य सम्पन्न हो सका।

पुस्तक में अनेक दोष तथा त्रुटियाँ मेरी अपनी हैं, इन्हीं में मुद्रण सम्बन्धी दोषों का भी योग है। संगीतशास्त्र के प्रेमी विद्यार्थियों की अभिरुचि के अनुकूल उनके अध्ययनार्थ वैज्ञानिक तथा शास्त्रीय ठोस प्रमाणों के आधार पर इस पुस्तक की रचना की गई है। उक्त विद्यार्थिगण तथा सहृदय संगीतज्ञ इस पुस्तक से लाभ उठाकर संगीतशास्त्र के मौलिक-संस्कृत-ग्रन्थों में प्रवेश पा सकें तो मैं अपने इस प्रयास को सार्थक समझूँगी।

इस पुस्तक के दोनों भागों को उदारता पूर्वक तथा स्नेह से पढ़कर जो सहृदय-संगीतज्ञ तथा संस्कृत-विद्वान् उनमें संशोधन-परिवर्तन-परिवर्धन का उचित सुझाव देने की कृपा करेंगे उनके सुझावों को सहर्ष स्वीकार कर मैं द्वितीय संस्करण के समय उनका पालन करूँगी और अपने को अनुगृहीत समझूँगी।

१४ जनवरी, १९७५ (सौ०) विमला मुसलगांवकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठसंख्या
तिङन्तशब्द–परिचय	१
क्रिया (तिङन्त-शब्द) की आवश्यकता	१
क्रिया-परिचय	१
प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष क्रियाएँ	२
क्रिया के द्वारा वाक्य की पूर्णता	२
क्रिया शब्दों के दो प्रकार	२
क्रिया को तिङन्त कहने में हेतु	३
क्रिया के अवयव 'धातु' का परिचय	४
अनन्त शब्दों की सृष्टि	४
धातुओं की संख्या तथा लकार	५
क्रिया में काल और प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता	५
लकारों की क्रमिक तालिका तथा संख्या	५
दश लकारों की क्रमिक रचना में वैज्ञानिकता	६
लकारों की अर्थव्यवस्था	६
वाच्य–परिवर्तन	७
कर्तरिप्रयोग की त्रिविधता	७
कर्त्ता और कर्म की परिभाषा	९
लकार और उनके काल	१०
प्रकार (अर्थ) विशेष (moods)	१२
धातुओं की श्रेणियाँ या गण	१४
लकारस्थानापन्न अठारह प्रत्यय	१५
पुरुष–परिचय	१७
वचन (संख्या)–परिचय	१८
पुरुष–व्यवस्था	१९
धातुओं का विभाग (सेट्, वेट्, अनि्)	२१
प्रत्ययान्तक्रियाएँ (धातुएँ)	२२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय	पृष्ठसंख्या
णिजन्त धातु (णिजन्त प्रक्रिया)	३२
सन्नन्त क्रियाएँ (धातु) (सन्नन्त प्रक्रिया)	३४
यङन्त क्रियाएँ (धातु) (यङन्त प्रक्रिया)	३६
नामधातु	३६
क्यङ् प्रत्यय	३७
यङ्लुगन्तप्रक्रिया	३८
भावकर्मप्रक्रिया	३९
पद–प्रयोग	३९
भाववाच्य और कर्मवाच्य का अर्थ	३९
कर्मवाच्य में द्विकर्मक धातुओं के किस कर्म में लकार होगा	४३
प्रधान कर्म में प्रथमा	४४
कर्म-कर्तृ-प्रक्रिया	४५
लकारार्थप्रक्रिया	४६
अनद्यतन भूतकाल का अपवाद	४६
लृट् का अपवाद	४७
भ्वादिगणः १	४९
अदादिगणः २	५८
जुहोत्यादिगणः ३	५९
दिवादिगणः ४	६०
स्वादिगणः ५	६२
तुदादिगणः ६	६३
रुधादिगणः ७	६६
तनादिगणः ८	६७
क्र्यादिगणः ९	७०
चुरादिगणः १०	७०
कण्ड्वादि–प्रकरण	७४
कृदन्त–शब्द–प्रकरणम्	७६
कृत्य प्रत्यय (विधि कृदन्त)	७८
भूत काल के कृत् प्रत्यय	८६
वर्तमानकाल के कृत् प्रत्यय	८९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय	पृष्ठसंख्या
भविष्यकाल के कृत् प्रत्यय	६१
तुमुन् प्रत्यय	६१
पूर्वकालिक क्रिया (क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय)	६७
णमुल् (अम्) प्रत्यय (अव्ययकृदन्त)	६६
शील-धर्म-साधुकारिता-वाचक कृत् प्रत्यय	१०२
भावार्थ-कृत्-प्रत्यय	१०५
खलर्थ कृत् प्रत्यय	१०८
उणादि प्रत्यय	१०८
तद्धित प्रकरण	**१०६**
अपत्यार्थ प्रत्यय	११०
मत्वर्थीय प्रत्यय	११२
भावार्थ तथा कर्मार्थ	११३
समूहार्थ	११४
सम्बन्धार्थ और विकारार्थ	११५
परिमाणार्थ और संख्यार्थ	११६
हितार्थ	११७
क्रियाविशेषणार्थ	११७
शैषिक	११६
प्रकीर्णक	१२३
समास-विचार	**१२४**
अव्ययीभाव-समास	१२८
तत्पुरुष-समास	१३२
व्यधिकरण तत्पुरुष-समास	१३३
समानाधिकरण-तत्पुरुष-समास	१३६
उपमानोत्तरपद कर्मधारय	१४०
विशेषणोभयपद कर्मधारय	१४०
द्विगु समास	१४१
द्वन्द्व समास	१४५
समाहार द्वन्द्व	१४६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय	पृष्ठसंख्या
इतरेतर द्वन्द्व	१४८
बहुव्रीहि समास	१५१
वाक्य-संग्रह	१५७
वर्णाः तद्भेदाश्च	१५७
अलङ्कार-प्रयोजनानि	१५८
गीतयः	१५९
राग-गीतयः	१६०
रागालापः	१६०
वाग्गेयकार-लक्षणम्	१६०
शब्दगुणाः	१६२
शब्ददोषाः	१६५
आतोद्य (वाद्य) भेदाः	१६७
वृत्तलक्षणम्	१६७
नाट्यवेद-निर्माणेतिहासः	१६८
नाट्य-नृत्य-नृत्तलक्षणम्	१६८
नाट्यस्य सर्वग्राहिस्वरूपम्	१६९
नाट्यस्य प्रयोजनम्	१७०
रस-स्थायिभाव-व्यभिचारिभावनामानि	१७१
सात्त्विक-भावाः	१७२
अभिनयभेदाः	१७२
नाट्यवृत्तयः	१७२
नाट्यप्रवृत्तयः	१७२
रसनिरूपणम्	१७३
भावनिरूपणम्	१७६
व्यभिचारिभावाः	१८०
स्थायिभावः	१८१
भावरसयोः परस्परसम्बन्धः	१८२
रसानामुत्पाद्योत्पादकसम्बन्धः	१८३
काव्यगुणाः	१८४
अभिनयः	१८६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाठ्य-गुणाः	१८७
पाठ्ये वर्णभेदास्तत्प्रयोगाश्च	१८९
पाठ्ये—षडलङ्काराः	१९०
पाठ्यगुणेषु षडङ्गनिरूपणम्	१९२

परिशिष्टम् ❀

१. संवादवैभवम्	३
२. गीतावली (सङ्गीतलिपिसंवलिता)	२१
३. वृत्तगानपद्धतिनिर्देशः (सङ्गीतलिपिसमेतः)	३९
प्रोफेसरपद्मामिश्रामहोदयानाम् अध्यक्षीयभाषणस्य सारांशः	५४

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७	१७	भाव अर्थ) कर्म	(भाव अर्थ) (कर्म
२४	२५	पाषणयोः	पोषणयोः
२६	१०	पुरीषोत्सगे	पुरीषोत्सर्गे
२६	२४	'श्यन् 'विकः'	'श्यन्' विकरण
३१	१०	बताते	बताये
३१	३०	अप्रत्ययान्त	प्रत्ययान्त
३७	८	जोड़ा जाता +	+ जैसे—किम् इच्छति, इदम् इच्छति।
३७	१४	क्वच्	क्यच्
५२	१	लट्	लुट्
५२	५	स्थः	स्थ म०

❀ परिशिष्ट की विस्तृत विषयानुक्रमणी उसके आरम्भ में दी गई है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५२	२८	गोपामये	गोपायेम
५३	६	गोपाय्यास्त्र	गोपाय्यास्व
५३	२३	अगोपिष्ततम्	अगोपिष्यतम्
५३	२६	अगोपिष्याध	अगोपिष्याव
५४	२०	अरक्षिषयः	अरक्षिष्यः
५४	२१	क्षिषयम्	क्षिष्यम्
५९	३	परोत्ते लोट्	परोत्ते लिट्
६८	१४	तनिष	तनिष्यध्वे
७६	१०	वासुदेवस्य अप०	वसुदेवस्य अप०
७९	१९	के स्वर साधा०	के साधा०
९६	२	से ऋ, ऌ	से इ, ऋ, ऌ
९६	९	भुङ्क्त्वा	भुक्त्वा, भुङ्क्त्वा
१४६	१३	बहुवचन	द्विवचन
१५०	११	तत्र	तच्च
१५१	१५	पूर्वो रङ्गे	रङ्गे पूर्वः
१५८	१८	रक्तिः लाभः	रक्तिलाभः
१५९	७	भवति	भवन्ति
१६०	२	गौरी	गौडी
१७७	१५	आचरण	आहरण
१८३	अन्तिम	ज्ञेयो	ज्ञेयः
१८५	उपान्त्य	(न० ६.१)	(स्त्री० ६.१)
१८९	४	(पुं० १.१)	(अ०)
१९०	२५	वाद्येषु	वाद्येषु (पाठ्येषु)
१९१	उपान्त्य	आस्वादन	आह्वान
१९२	,,	० विलम्बितासु ये वर्णा	(० विलम्बिताश्च ये लया)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तिङन्तशब्द–परिचय

इस पुस्तक के प्रथम भाग (पृ० २७) में हम कह चुके हैं कि शब्द के चार भेदों में से 'आख्यात' के अन्तर्गत 'तिङ्' प्रत्ययों से बने शब्द आते हैं। इन्हीं के परिचयार्थ यह प्रकरण है।

तिङन्त शब्दों का परिचय संस्कृत व्याकरण का मूलाधार है, क्योंकि इसमें धातुओं के सम्बन्ध में विवेचन उपलब्ध होता है। धातुओं के साथ 'तिङ्' प्रत्ययों को जोड़ देने से समस्त तिङन्त शब्दों को बना लिया जाता है।

दूसरी बात यह है कि अत्यन्त कठिन और गंभीर 'प्रक्रियाओं' का महत्त्व भी इस प्रकरण के अध्ययन से हृदयङ्गम हो पाता है।

अतः इस 'तिङन्त शब्द-परिचय' के प्रकरण में धातुओं का, जिनका वर्गीकरण दश गणों में आगे किया जायगा, तथा 'प्रक्रियाओं' का निरूपण हम कर रहे हैं, सावधानी के साथ इसका अध्ययन करने से भाषा सम्बन्धी कठिनाई दूर होकर उसकी सरलता तथा चमत्कार का आनन्द प्राप्त हो सकेगा।

क्रिया (तिङन्त–शब्द) की आवश्यकता

किसी भी वाक्य की पूर्णता उसकी क्रिया पर ही निर्भर होती है। वाक्य को यदि भाषा का शरीर कहें तो क्रिया को प्राण कहना होगा। प्राण के बिना जैसे शरीर किसी भी कार्य में असमर्थ है वैसे ही क्रिया के बिना वाक्य भी वक्ता के वास्तविक अभिप्राय को बताने में असमर्थ रहता है। अतः हमें यह जानना होगा कि क्रिया किसे कहते हैं।

क्रिया–परिचय

वाक्यपदीयकार भर्तृहरि कहते हैं—

"गुणभूतैरवयवैः समूहः क्रमजन्मनाम्।
बुद्धया प्रकल्पितोऽभेदः क्रियेति व्यपदिश्यते॥"

(वाक्यप० ३।८।४)

क्रमशः उत्पन्न होने वाली गुणभूत अर्थात् तत्तद्रूपेण प्रतीयमान क्रियाओं का वह समूह, जो बुद्धि द्वारा एकाकार होकर अभिन्न सा प्रतीत होता है उसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'क्रिया' कहते हैं। निष्कर्ष यह है कि अवान्तर क्रियाओं के समूह को क्रिया कहते हैं। उस समूह को समुदितरूप से कोई भी व्यक्ति देख नहीं सकता क्योंकि अवान्तर क्रियाएँ तो क्षणिक होती हैं, उनका समूह तो कभी बन ही नहीं सकता, इसलिये बुद्धि से उनके समूह की कल्पना कर ली जाती है, तब उस समूह को क्रिया कहते हैं।

इसी प्रौढ़ शास्त्रीय-शब्दावलि के अनुरूप लोकव्यवहार में साधारण लोग आना, जाना, पढ़ना, लिखना, देखना, सुनना, गाना, नाचना, बजाना, आदि चेष्टाओं को ही 'क्रिया' कहते हैं। उन चेष्टाओं को जिन पदों (शब्दों) से प्रकाशित किया जाता है उन्हें क्रियापद (क्रिया शब्द) कहते हैं।

प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष क्रियाएँ

आना, जाना, गाना, नाचना, सुनना आदि प्रत्यक्ष होने वाली क्रियाएँ (चेष्टाएँ) हैं। और सोचना, समझना, अनुभव करना आदि प्रत्यक्ष न होने-वाली क्रियाएँ (चेष्टाएँ) हैं।

क्रिया के द्वारा वाक्य की पूर्णता

हम ऊपर बता चुके हैं कि क्रिया के बिना वाक्य की पूर्णता नहीं हो पाती। क्रिया से ही वाक्य की पूणता होती है अर्थात् वक्ता के अभिप्राय को वास्तविक रूप में वाक्य प्रकाशित कर पाता है।

इसे कतिपय वाक्यों द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है—

जैसे—वह तानपूरा हाथ में लेकर गाता है। राधा पैरों में घुंघुरु बांधकर नाच रही है। तुम सितार बजाते हो—ये वाक्य अपने में पूर्ण हैं, क्योंकि इनमें 'गाता है' 'नाच रही है' 'बजाते हो'—इन रेखांकित क्रियापदों का उपयोग किया गया है। यदि इन रेखांकित क्रियापदों का इन वाक्यों में उपयोग न किया होता तो वक्ता के अभिप्राय का ठीक ठीक बोध न हो पाता।

क्रिया-शब्दों के दो प्रकार

संस्कृत व्याकरण में दो प्रकार के क्रिया शब्द पाये जाते हैं, अतः उनसे निष्पन्न होने वाली क्रियाएँ भी दो प्रकार की उपलब्ध होती हैं।

(१) मौलिक (मूल धातु से बनने वाली अर्थात् अप्रत्ययान्त धातु से बनकर प्रयोग में आने वाली) क्रिया। जैसे—मूलधातु 'पठ्' से 'पठति',

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'लिख' से 'लिखति', 'गै' से 'गायति', 'नृत्' से 'नृत्यति', 'हस्' से 'हसति' आदि मौलिक क्रियाएँ हैं।

(२) यौगिक (प्रत्ययान्त धातु से बनने वाली तथा प्रत्ययान्त संज्ञा (नाम) से बनने वाली) क्रिया।

जैसे—'पाठयति' में 'पठ्' धातु से 'णिच्' प्रत्यय जोड़ने पर 'पठ' के पकार में 'अ' को वृद्धि [उपधावृद्धि] होती है तब 'पाठि' बना, पश्चात् 'सनाद्यन्ता धातवः' सूत्र से उस (पाठि) की 'धातु' संज्ञा की जाती है, अतः 'पाठि' प्रत्ययान्त धातु है, उससे 'पाठयति' क्रिया बनती है। उसी तरह 'लेखयति', 'गापयति', 'नर्तयति' आदि क्रियाओं को भी समझ लेना चाहिये। ये प्रत्ययान्त धातुओं से बनी क्रियाएँ हैं।

इसी प्रकार प्रत्ययान्त संज्ञावाली क्रियाओं—(नामधातु को) समझ लीजिये। जैसे—आत्मनः पुत्रम् इच्छति (अपने लिये पुत्र चाहता है) यहां 'पुत्रम्' सुबन्त संज्ञा है। उससे "सुप आत्मनः क्यच्" सूत्र से 'क्यच्' प्रत्यय जोड़ा जाता है, तब पुत्र + अम् + क्यच् (य) की "सनाद्यन्ताधातवः" सूत्र से (समूचे क्यजन्त की) धातुसंज्ञा की जाती है, और 'अम्' का "सुपोधातुप्रातिपदिकयोः" सूत्र से 'लुक्' (लोप) हो जाता है। "क्यचि च" सूत्र से 'त्र' के अकार को 'ई' हो जाता है, तब 'पुत्रीय' यह क्यजन्त धातु बन पाया। पश्चात् लट्, तिप् आदि के जोड़ देने से 'पुत्रीयति' क्रियापद निष्पन्न होता है। उसी तरह 'अशनं भोक्तुम् इच्छति अशनायति।' 'कृष्ण इव आचरति कृष्णति।' 'राजेव आचरति राजानति' आदि क्रियापदों को समझना चाहिये। ये प्रत्ययान्त–संज्ञावाली क्रियाएँ हैं।

तात्पर्य यह है कि क्रिया में दो अवयव होते हैं। दो अवयवों के मेल से क्रिया बनाई जाती है। उन दो अवयवों में से एक अवयव 'धातु' है और दूसरा अवयव 'प्रत्यय' है। व्याकरण के कतिपय नियमों के अनुसार उन दोनों को (धातु + प्रत्यय) मिलाने से क्रिया का रूप निष्पन्न होता है। जैसे 'पठ-ति' क्रिया में 'पठ्' धातु है और 'ति' प्रत्यय है। व्याकरण के कतिपय नियमों के अनुसार उन दोनों को मिलाने से 'पठति' (पढ़ता है) क्रियापद निष्पन्न किया जाता है।

क्रिया को तिङन्त कहने में हेतु

धातुओं से क्रिया का रूप निष्पन्न करने के लिये जो प्रत्यय लगाये जाते हैं, उन्हें 'तिङ्' विभक्ति कहते हैं। इसलिये 'क्रिया' को 'तिङन्त कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसे संज्ञाओं (नामों) की विभक्तियों को 'सु' से 'प्' तक होने से 'सुप्' कहते हैं, वैसे ही क्रियाओं की विभक्तियों को 'ति' से 'ङ्' तक होने से 'तिङ्' कहते हैं। इसी अभिप्राय को महर्षि पाणिनि ने "विभक्तिश्च"— सूत्र से बताया है। कुछ आगे चलकर 'तिङ्' प्रत्ययों की तालिका दी जायगी।

क्रिया के अवयव 'धातु' का परिचय

इतना समझ लेने के बाद यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि 'धातु' किसे कहते हैं ? तब समझना होगा कि क्रिया पद के मूल को धातु' कहते हैं। कोई भी क्रिया अथवा क्रियापद 'धातु' से निष्पन्न होता है। अर्थात् क्रियापद (क्रियाशब्द) के मूल रूप को 'धातु' कहते हैं। वास्तव में प्रायः सभी शब्दों के मूल में 'धातु' अवश्य हो रहता है। धातुओं से विभिन्न प्रत्ययों को जोड़ देने से मनचाही शब्द-सृष्टि निर्माण की जा सकती है।

लोक जीवन में जैसे मूलभूत प्रकृति-प्रदत्त पदार्थ होते हैं, जिनका उपयोग मानव युगों से करता चला आ रहा है। सोना, चांदी, लोहा, ताम्बा आदि धातुएँ मानव के विभिन्न प्रकार के जीवन में प्रयुक्त हुआ करती हैं, उसी तरह भाषा में भी मूलरूप या प्रकृति रूप में प्राप्त कुछ धातुयें हैं। उनमें कुछ हेरफेर करके भाषा को विभूषित कर उनका विभिन्न अर्थों में उपयोग किया जाता है।

तात्पर्य यह है कि किसी भी सार्थक सुबन्त शब्द या क्रिया की मूल-प्रकृति (मूलरूप) 'धातु' है, जिसके आगे भिन्न भिन्न प्रत्ययों को जोड़कर भिन्न भिन्न प्रकार के सुबन्त शब्दरूप तथा क्रियारूप निष्पन्न किये जाते हैं। जैसे—गै, भू, नृत्, लिख् आदि धातुओं से 'अन' प्रत्यय जोड़ देने पर गायन, भवन, नर्तन, लेखन आदि सुबन्त शब्दरूप बना लिये जाते हैं। उसी तरह उन्हीं धातुओं से 'तिप्' (ति) आदि प्रत्ययों के जोड़ देने पर गायति, भवति, नृत्यति, लिखति आदि क्रियाशब्द (क्रियापद) बना लिये जाते हैं। यही रीति अन्यान्य धातुओं के सम्बन्ध में समझनी चाहिये।

अनन्त शब्दों की सृष्टि

जिस प्रकार लोकजीवन में प्राकृतिक धातुओं को तापन, ताड़न, शोधन आदि संस्कारो के द्वारा नवीनरूप दिया जाता है, साथ ही उनमें अन्य वस्तुओं का मिश्रण कर चमक-दमक लाई जाती है, वैसे ही भाषा की धातुओं में भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याकरण के नियमानुसार कतिपय संस्कार तथा उपसर्ग, उपपद प्रत्यय आदि के जोड देनेपर अनेकार्थक अनन्त शब्दों का निर्माण किया जा सकता है।

धातुओं की संख्या तथा लकार

संस्कृत भाषा के व्याकरण में प्रायः २०२० धातुएँ हैं। उनमें से प्रत्येक धातु के दस लकारों में रूप बना लिये जाते हैं। उन दस लकारों में से छह लकार काल (Tense) वाचक और चार लकार प्रकार (Mood) बोधक हैं। इन कालवाचक तथा प्रकारबोधकों को 'लकार' कहने का कारण यह है कि सबके नाम के आरंभ में 'ल' अक्षर आता है। उन दस लकारों को हम आगे चलकर क्रमशः बताएँगे।

क्रिया में काल और प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता

किसी भी क्रिया (कार्य) के होने का पूर्ण ज्ञान तब तक नहीं हो पाता जबतक यह ज्ञात न हो कि वह क्रिया किस काल (समय) में हुई है और वह किस प्रकार की है।

भिन्न-भिन्न कालों तथा भिन्न-भिन्न प्रकारों में क्रिया के भिन्न-भिन्न रूप होते हैं, जिनके द्वारा क्रिया का पूर्णरूप से ज्ञान हो जाता है। इन्हीं कालों और प्रकारों को व्याकरणकारों ने 'लकार' शब्द से कहा है।

लकारों की क्रमिक तालिका तथा संख्या

व्याकरणकार महर्षि पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी के तृतीय अध्याय में लकारों (लट्-लिट् आदि प्रत्ययों) को बताया है। इन लकारों की संख्या दस है।

जैसे—लट्[१], लिट्[२], लुट्[३], लृट्[४], लेट्[५], लोट्[६], लङ्[७], लिङ्[८], लुङ्[९], लृङ्[१०] इन दस लकारों में से पञ्चम 'लेट्' लकार का उपयोग वेदों में ही दिखलाई देता है। लौकिक संस्कृत-भाषा में उसका प्रयोग उपलब्ध नहीं है। लट्, लिट् आदि प्रत्ययों (लकारों) के अनुबन्धों (ट्, ङ्) की इत्संज्ञा "हलन्त्यम्" सूत्र से होकर उनका "तस्य लोपः" सूत्र से लोप कर दिया जाता है।

जिसकी इत्संज्ञा होकर लोप कर दिया जाता है उसे 'अनुबन्ध' कहते हैं। इन लकारों में पहिले छह लकार 'टित्' हैं। क्योंकि उनमें 'ट्' अनुबन्ध है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और अगले चार लकार 'ङित्' हैं। क्योंकि उनमें 'ङ्' अनुबन्ध है। पहिले छह लकारों के 'ट्' की इत्संज्ञा की जाती है, इसलिये उन छह लकारों को 'टित्' कहते हैं। अगले चार लकारों के 'ङ्' की इत्संज्ञा की जाती है, इसलिये उन चार लकारों को 'ङित्' कहते हैं। इन लकारों (प्रत्ययों) के अनुबन्धों का लोप हो जाने से केवल 'ल्' बच जाता है। जिस प्रकार लकारों में जुडे हुए हलों (ट्, ङ्) की इत्संज्ञा, लोप किया जाता है, उसी प्रकार इन लकारों में सुनाई देनेवाले स्वरों (अ, इ, उ, ऋ, ए, ओ) की भी "उपदेशेऽजनुनासिक इत्" सूत्र से इत्संज्ञा और "तस्य लोपः" सूत्र से लोप होता है। अतः वे स्वर भी अनुबन्ध कहलाते हैं। अवशिष्ट केवल 'ल्' रह जाता है। इसी कारण ये दसों प्रत्यय 'लकार' कहे जाते हैं।

दश लकारों की क्रमिक रचना में वैज्ञानिकता

महर्षि पाणिनि ने 'अइउण' आदि १४ प्रत्याहारसूत्रों (वर्णसमाम्नाय) को व्याकरण के प्रारंभ में ही बताया है। उनमें से 'अइउण्, ऋऌक्, एओङ्' इन तीन सूत्रों के क्रम से ही टित् और ङित् लकारों को भी बताया गया है। जैसे—ल, लि, लु, ऌ, ले, लो—यह टित् लकारों का क्रम बताया, उसके पश्चात् ल, लि, लु, ऌ—यह ङित् लकारों का क्रम बताया। अर्थात् इनमें प्रत्येक के साथ छहों 'ट्' और अगले चारों के साथ 'ङ्' जोड देने से टित् तथा ङित् के भेद से दश लकार बना लिये गये हैं। इसी अभिप्राय की और भी सरल सरणि से समझना हो तो इस प्रकार समझाया जा सकता है।

ल्+अ+ट्=लट्, ल्+इ+ट्=लिट्, ल्+उ+ट्=लुट्, ल्+ऋ+ट्=लृट्, ल्+ए+ट्=लेट्, ल्+ओ+ट्=लोट्, ल्+अ-+ङ्=लङ्, ल+इ+ङ्=लिङ्, ल्+उ+ङ्=लुङ्, ल्+ऋ+ङ्=लृङ्। इस पद्धति से इन दस लकारों को समझ लेने से उन्हें रटने की आवश्यकता नहीं होगी। इन लकारों में 'लिङ्' लकार के 'विधिलिङ्' और 'आशीर्लिङ्' नाम के दो भेद हैं। दोनों में क्रिया के रूप एक दूसरे से भिन्न होते हैं। 'लोट्' लकार के भी विधिलोट् और आशीर्लोट् नाम के दो भेद होते हैं, किन्तु उनके रूपों में कोई भेद नहीं है।

लकारों की अर्थव्यवस्था

"लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः"—(पा. सू. ३।४।६९) 'धातु' दो प्रकार के (सकर्मक और अकर्मक) होते हैं। सकर्मक धातुओं से कर्म और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्ता के अर्थ में लकार होते हैं, और अकर्मक धातुओं से भाव तथा कर्ता के अर्थ में होते हैं। इस पुस्तक के प्रथम भाग में पृ. ५१ पर कारकों का स्वरूप-परिचय कराते समय 'कर्ता तथा कर्म' की संक्षिप्त परिभाषा बताई जा चुकी है। आगे चलकर कुछ विस्तार के साथ भी इस पर हम विचार करेंगे।

वाच्य-परिवर्तन

बोलते समय वाक्य का प्रयोग तीन प्रकार से किया जाता है। इसके सम्बन्ध में इस पुस्तक के प्रथम भाग में पृ० १४८ पर संक्षेप से बताया जा चुका है, उसीको अब हम कुछ विस्तार से बता रहे हैं।

[१] कर्तरि प्रयोग, [२] कर्मणि प्रयोग, [३] भावे प्रयोग
(Active Voice) (Passive Voice) (Impersonal Voice)

[१] कर्तरि प्रयोगः—

कर्तरि प्रयोग में कर्तृवाचक शब्द से प्रथमा विभक्ति और कर्मवाचक शब्द से द्वितीया विभक्ति हुआ करती है। तथा कर्तृपद के अनुसार क्रियापद के पुरुष और वचन किये जाते हैं। जैसे—'गायकः स्तोत्रं गायति।' इस वाक्य-प्रयोग में 'गायकः' कर्ता है और उसकी विभक्ति प्रथमा है। 'स्तोत्रम्' कर्म है और उसकी विभक्ति द्वितीया है।

कर्तरि प्रयोग की त्रिविधता

कर्तरि प्रयोग भी तीन प्रकार का है। अकर्मक, सकर्मक, और द्विकर्मक।

[क] जो वाक्य-प्रयोग कर्ता, कर्म और क्रिया से युक्त हो उसे सकर्मक कर्तरि प्रयोग कहते हैं।

[ख] जो वाक्य-प्रयोग कर्म से रहित (शून्य) हो उसे अकर्मक कर्तरि प्रयोग कहते हैं।

[ग] जिस वाक्य-प्रयोग में दो कर्म हों उसे द्विकर्मक कर्तरि प्रयोग कहते हैं। जैसे :—

(क) सकर्मक—रविः प्रकाशं करोति। पुत्रः पितरं वन्दते। प्रथम उदाहरण में 'रविः' कर्ता है और 'प्रकाश' कर्म है। द्वितीय उदाहरण में 'पुत्रः' कर्ता है और 'पितरम्' कर्म है।

(ख) अकर्मक—पुष्पं विकसति। उत्सवः भवति। कन्या लज्जते। वयः वर्धते। प्रथम उदाहरण में 'पुष्पम्' कर्ता है और 'विकसति' क्रिया है। कर्म कोई नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीय उदाहरण में 'उत्सवः' कर्ता है और 'भवति' क्रिया है। कर्म कोई नहीं है। तृतीय उदाहरण में 'कन्या' कर्ता है और 'लज्जते' क्रिया है। कर्म कोई नहीं है। चतुर्थ उदाहरण में 'वयः' कर्ता है और 'वर्धते' क्रिया है। कर्म कोई नहीं है।

(ग) द्विकर्मक—शिष्यः अध्यापकं प्रश्नं पृच्छति।

इस उदाहरण में 'प्रच्छ' धातु द्विकर्मक होने से, 'अध्यापकम्' एक कर्म है और 'प्रश्नम्' दूसरा कर्म है।

नीचे लिखी कारिका में दिये हुए धातुओं के साथ दो कर्म होते हैं—

"दुह्–याच्–पच्–दण्ड्–रुधि–प्रच्छि–चि–ब्रू–शासु–जि–मथ्–मुषाम्।
कर्मयुक्स्यादकथितं तथा स्यान्नी–हृ–कृष्–वहाम्॥"

दुह् (दुहना), पच् (पकाना), दण्ड् (दण्डदेना), रुध् (रोकना), प्रच्छ् (पूछना), चि (इकठ्ठा करना) ब्रू (कहना), शास् (निर्देश देना), जि (जीतना), मन्थ् (मथना), मुष् (चुराना), नी (ले जाना), हृ (हरण करना), कृष् (जोतना), वह् (ढोना)। ये १६ धातुयें द्विकर्मक (दो कर्मवाली) कहलाती हैं।

[२] कर्मणि प्रयोगः —

कर्मणि प्रयोग में कर्तृवाचक पद से तृतीया विभक्ति और कर्मवाचक पद से प्रथमा विभक्ति हुआ करती है। तथा कर्मवाचक पद के अनुसार क्रियापद के पुरुष और वचन किये जाते हैं। जैसे–'गुरुणा शिष्यः उपदिश्यते, इस वाक्य-प्रयोग में 'गुरुणा' कर्ता है और उसकी विभक्ति तृतीया है। 'शिष्यः' कर्म है और उसकी विभक्ति प्रथमा है। जैसे—'शिष्येण अध्यापकः प्रश्नं पृच्छ्यते' इस द्विकर्मक कर्मणि प्रयोग में 'अध्यापकः' अप्रधान कर्म है और 'प्रश्नम्' प्रधानकर्म है।

[३] भावे प्रयोग :—

भावे प्रयोग में कर्मणि प्रयोग के समान कर्तृवाचक शब्द से तृतीया विभक्ति हुआ करती है। जैसे–'पुष्पेण विकस्यते' इस प्रयोग में 'पुष्पेण' कर्ता है और उसकी विभक्ति 'तृतीया' है। इस प्रयोग में कर्म नहीं हुआ करता।

वाच्य परिवर्तन करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि वाक्य में किस प्रकार के धातु का प्रयोग किया गया है। अर्थात् जिस धातु का वाक्य में प्रयोग किया गया है वह सकर्मक है या अकर्मक। यदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकर्मकधातु का प्रयोग कर्तृवाच्य में हुआ हो तो उससे कर्मवाच्य ही होगा। यदि अकर्मक धातु का प्रयोग कर्तृवाच्य में हुआ हो तो उससे भाववाच्य ही होगा। कर्ता के अर्थ में लकार होने पर कर्तृवाच्य और कर्म के अर्थ में लकार होने पर कर्मवाच्य होता है। उसी तरह भाव (क्रिया) के अर्थ में लकार होने पर उसे भाववाच्य कहते हैं।

कर्त्ता और कर्म की परिभाषा

प्रत्येक धातु के दो प्रकार के अर्थ होते हैं—फल और व्यापार। फल का आश्रय कर्म और व्यापार का आश्रय कर्त्ता हुआ करता है। जिस उद्देश्य से क्रिया की जाती है, वह उद्देश्य उस क्रिया का फल होता है। जैसे—गमन क्रिया (जाना) उत्तर देश के संयोग के लिए की जाती है। इसलिये उत्तर देश का संयोग गमन क्रिया का फल है। फल-प्राप्ति के लिए जो क्रिया (चेष्टा) की जाती है उसे व्यापार कहते हैं। जैसे —'पचन' क्रिया में आग जलाने से लेकर पात्र को चूल्हे से नीचे उतारने तक की जाने वाली सभी क्रियाएँ व्यापार हैं। वह 'पच' धातु का अर्थ समझा जाता है। उसी प्रकार गमन क्रिया में उत्तर देश संयोग रूप फल की प्राप्ति के लिए पैरों को चलाते रहने की क्रिया 'गम्' धातु का अर्थरूप व्यापार है।

कर्म में फल और कर्त्ता में व्यापार रहता है। 'पचन' क्रिया में विक्लित्ति (गलना) रूप फल का आश्रय चावल है, इसलिए वह कर्म है और उस विक्लित्ति के साधन आग जलाना, चूल्हे पर पात्र रखना आदि क्रियारूप व्यापारों का आश्रय देवदत्त आदि व्यक्ति हैं, अतः वे कर्त्ता हैं। जहां फल और व्यापार के आश्रय भिन्न-भिन्न हों, उन धातुओं को सकर्मक कहते हैं और जिन धातुओं के फल और व्यापार का आश्रय एक ही हो, उन धातुओं को अकर्मक कहते हैं। जैसे—'शीङ्' (सोना) धातु का फल विश्राम तथा तदनुकूल व्यापार लेटना आदि दोनों एक ही आश्रय देवदत्त में रहता है। इसलिए 'शीङ्' धातु अकर्मक है। अकर्मक धातुओं के बोधनार्थ एक पद्य प्रसिद्ध है-

सत्ता-लज्जा-स्थिति-जागरणं वृद्धि-क्षय-भय-जीवित-मरणम्।
शयन-क्रीडा-रुचि-दीप्त्यर्थं धातुगणंन्तमकर्मकमाहुः॥

पीछे हम लकारों के दस भेद बता चुके हैं। वर्तमानकाल में एक, भूतकाल में तीन तथा भविष्यकाल में दो कुल मिलाकर लकार (क्रिया) के छह भेद होते हैं। इस प्रकार अर्थ विशेष के विचार से आज्ञा, आशीः विधि,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संकेत ये चार भेद और भी हैं। इस तरह लौकिक संस्कृत में पञ्चम लेट् लकार के प्रयुक्त न होने पर भी लकारों की संख्या दस हो जाती है।

लकार और उनके काल

(१) 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) वर्तमान काल की क्रिया को बतलाने के लिये धातु से 'लट्' लकार होता है। कोई भी कार्य जिस क्षण से आरम्भ होकर जिस क्षण में समाप्त हो उस सम्पूर्ण काल को वर्तमान काल कहते हैं। जैसे—गायति, वादयति, नृत्यति (गाती है, बजाती है, नाचती है)।

(२) 'परोक्षे लिट्'—(३।२।११५) अनद्यतन परोक्षभूत अर्थ की विवक्षा रहने पर धातु से 'लिट्' लकार होता है। 'अतीताया रात्रेः पश्चार्द्धेन पूर्वार्द्धेन च सहितो दिवसोऽद्यतनः, तद्भिन्नः—अनद्यतनः'। गत रात्रि के बारह बजे से आगामी रात्रि के बारह बजे तक के काल को 'अद्यतन' कहते हैं, उससे भिन्न बीते हुए काल को अनद्यतन भूतकाल समझना चाहिए। परोक्ष उसे कहते हैं जिसे वक्ता ने अपनी आंखों से न देखा हो। चित्त-विक्षेप में तथा किसी भी हालत में स्वीकार न करने पर प्रत्यक्ष (उत्तम पुरुष) में भी लिट् लकार का प्रयोग हुआ करता है। जैसे—'सुप्तोऽहं किल विललाप'

(३) 'अनद्यतने लङ्'—(३।२।१११ वि० सू०) इसके पूर्व कथन के अनुसार अनद्यतन भूत यदि परोक्ष न हो तो यह सूत्र बता रहा है कि अनद्यतन भूत के प्रत्यक्ष रहने पर लङ् लकार का प्रयोग करना चाहिये। किन्तु अद्यतन और अनद्यतन दोनों प्रकार के भूत कालों का जहाँ मिश्रण रहे वहां लङ् लकार का प्रयोग नहीं करना चाहिये। जैसे—उसने आज और कल यह काम किया—'अद्य ह्यश्च सः इदं कार्यम् अकार्षीत्' यहां लुङ् लकार का ही प्रयोग होगा। अष्टाध्यायी या कौमुदी की पद्धति से अध्ययन न करने वाले आजकल के विद्यार्थी सभी प्रकार के भूत कालों में लङ् लकार का ही प्रयोग कर देते हैं किन्तु वह सर्वथा अनुचित है।

(४) 'लुङ्'—(३।२।११०) पहिले बताये हुए भूत काल के क्षेत्र को छोड़कर भूतसामान्य में लुङ् लकार करना चाहिये। अभी तक तीन प्रकार के भूतकाल बताये गये हैं। उनमें अनद्यतनभूत-परोक्ष में 'लिट्' करना चाहिये। और अनद्यतनभूत में 'लङ्' करना चाहिये। तथा भूतसामान्य में-अर्थात् उक्त दोनों अपवादों के विषय को छोड़कर—'लुङ्' लकार का प्रयोग करना चाहिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'माङि लुङ्'—(३।३।१७५ वि० सू०) 'माङ्' शब्द यदि उपपद हो तो धातु से 'लुङ्' लकार का प्रयोग किया जाता है। इस प्रयोग को सभी लकारों का अपवाद माना गया है। इसलिये वर्तमान, भूत, भविष्यत् और विधि आदियों में भी 'माङ्' का योग होने पर 'लुङ्' लकार का प्रयोग किया जायगा। इसलिये 'मा भवान् गासीत्' 'मा भवती नर्तीत्' का केवल आप न गायें, आप न नाचें इतना ही अर्थ नहीं है बल्कि आप नहीं गाओगे, आपने नहीं गाया, आप नहीं नाचेंगीं, आप नहीं नाचीं आदि अर्थ भी होते हैं।

'स्मोत्तरे लङ् च'—(३।३।१७६ वि० सू०) 'माङ्' के आगे यदि 'स्म' हो तो लङ् और लुङ् का भी प्रयोग किया जाता है। सूत्र में 'च' के कह देने से 'लुङ्' का प्रयोग भी समझना चाहिये।

'न माङ्योगे'—(६।४।७४ नि० सू०) भूतकाल में 'माङ्' का योग रहने पर अट् या आट् का आगम नहीं होता। जैसे—मा स्म भवत्, मा स्म भूत् ही कहा जायेगा। 'अभवत्' 'अभूत्' नहीं।

(५) 'अनद्यतने लुट्—अनद्यतन भविष्यत् काल की क्रिया को बताने के लिए (अनद्यतन भविष्यत् काल की विवक्षा रहने पर) धातु से 'लुट्' लकार होता है। इस कथन से यह स्पष्ट हुआ कि अद्यतन भविष्यत् काल को बताने में 'लुट्' लकार का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए। वहां 'लट्' लकार का ही प्रयोग करना होगा। सूत्र में आये हुए 'अनद्यतने' में 'अविद्यमानः' अद्यतनः कालः यस्मिन् सः अनद्यतनः—तस्मिन् अनद्यतने ऐसा बहुव्रीहि समास है। इसलिये जहाँ अद्यतन और अनद्यतन दोनों का मिश्रण हो वहां 'लट्' लकार का ही प्रयोग होगा। 'लुट्' का नहीं। जैसे—'अद्य श्वो वा गास्यति' आज या कल गावेगा।

(६) 'लृट् शेषे च'—(३।३।१३ वि० सू०) क्रियार्था क्रिया रहे या न रहे भविष्यत् काल की विवक्षा रहने पर (भविष्यत् काल की क्रिया को बताने के लिये) धातु से 'लृट्' लकार किया जाता है। क्रियार्था क्रिया उसे कहते हैं, जो किसी दूसरी क्रिया के लिये की जाती है। 'अहं गास्यामि इति स गच्छति'—मैं गाऊँगा इसलिये वह जाता है। यहां पर गाने के लिये (गायन क्रिया के लिये) गमन क्रिया की जा रही है, इसलिये गमन क्रिया क्रियार्था क्रिया है। अतः क्रियार्था क्रिया (गमनक्रिया) के विद्यमान रहते 'गास्यामि' यह भविष्यत् काल में लृट् का प्रयोग किया गया है। परन्तु ऐसी क्रियार्था क्रिया न रहने पर भी केवल भविष्यत् काल को बताने के लिये भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लृट् लकार का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे—सः गास्यति, सा नर्तिष्यति (नत्स्यंति) वह गायेगा, वह नाचेगी। 'लृट्' लकार के प्रयोग करने में भूतकाल की तरह अद्यतन, अनद्यतन या परोक्ष, प्रत्यक्ष आदि की कोई शर्त नहीं दी गई है, इसलिये सामान्य भविष्यत् काल जहाँ बताना हो वहां 'लृट्' का प्रयोग किया जाता है। किन्तु यह उत्सर्ग (सामान्य नियम) है, इसलिये यह सूत्र 'लुट्' की परिधि (क्षेत्र, विषय) को छोड़कर ही प्रवृत्त होगा। जहां अनद्यतन भविष्यत् काल बताना हो वहां 'लुट्' का प्रयोग करना चाहिये। जैसे—परश्वः परीक्षा भविता।

प्रकार (अर्थ) विशेष (MOODS)

(७) 'लोट्' च—, ३।३।१६२ वि. सू.) विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न, प्रार्थन इन अर्थों में धातु से लोट् भी होता है। आदेश या आज्ञा देने को 'विधि' कहते हैं। किसी कार्य को अवश्य करने की प्रेरणा देने को 'निमन्त्रण' कहते हैं। इसमें प्रेरणा मिलने पर भी कार्य न किया जाय तो पाप लगता है। प्रेरणा मिलनेपर भी काम करना या न करना जहां इच्छापर निर्भर हो, उस प्रेरणा को 'आमन्त्रण' कहते हैं। यहां काम करने या न करने पर कोई पुण्य या पाप नहीं लगता। अपने से किसी बड़े पूज्य को—आदर, सन्मान पूर्वक कार्य करने की प्रेरणा देने को 'अधीष्ट' कहते हैं। जैसे—संगीतशास्त्रम् अध्यापयेत् भवान्' आप कृपया संगीत शास्त्र पढ़ावें। किसी पूजनीय, बडे व्यक्ति के पास किसी बात के निश्चय करने को 'सम्प्रश्न' कहते हैं। जैसे—किं भो ! अहं गीतम् अधीयीय उत नृत्यम् ? क्या मैं गाना सीखूँ या नृत्य सीखूँ। किसी वस्तु के मांगने को 'प्रार्थन' कहते हैं। उपर्युक्त इन अर्थों को बताने के लिये जैसे 'लोट्' लकार बताया—जा रहा है, वैसे ही आगे चलकर इन्हीं अर्थों में 'लिङ्' लकार भी बताया जायगा। आशीर्वाद अर्थ को बताने में भी 'लोट्' लकार का तथा 'लिङ्' लकार का प्रयोग किया जाता है।

(८) "आशिषि लिङ्-लोटौ"—(३।३।१७३ वि. सू.) आशीर्वाद देने के लिये धातु से लिङ् और लोट् लकार किये जाते हैं। अन्य व्यक्ति के लिये किसी अप्राप्त अभिलाषित वस्तु की कामना करने को 'आशीर्वाद' कहते हैं। जैसे—त्वं गानकलायां निपुणतमो भव। 'भव' लोट् लकार के मध्यम पुरुष का एक वचन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(९) 'विधिनिमन्त्रणाऽऽमन्त्रणाऽधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्'—(३।३।१६१ वि. सू.) विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न और प्रार्थन अर्थों में धातु से लिङ् लकार होता है। विधि, निमन्त्रण आदि के अर्थ ऊपर बता चुके हैं। इस 'लिङ्' को ही 'विधिलिङ्' कहते हैं।

उसी प्रकार आशीर्वाद देने के लिये भी 'लिङ्' का उपयोग किया जाता है, जिसे हम ऊपर बता चुके हैं। इस 'लिङ्' को 'आशीर्लिङ्' कहते हैं। इस आशीर्लिङ् में धातु के रूप विधिलिङ् के धातुरूपों से भिन्न हो जाते हैं। जैसे—विधिलिङ् में 'भवेत्' किन्तु आशीर्लिङ् में 'भूयात्' होता है।

(१०) लिङ्निमित्ते लृङ्क्रियातिपत्तौ—(३।३।१३९) लिङ् लकार का प्रयोग करने के लिए जो निमित्त बतलाए गये हैं उनके रहते भविष्यत्, भूत वर्तमान कालों में क्रिया की असिद्धि (क्रियाऽतिपत्ति) सूचित हो रही हो तो धातु से आगे 'लृङ्' लकार लगाया जाता है।

'हेतुहेतुमतोर्लिङ्'—(३।३।१५६) कार्यकारणभाव (हेतुहेतुमद्भाव) व्यक्त करना हो तो धातु से लिङ् लकार विकल्प से करने के लिए बतलाया गया है। हेतु का अर्थ 'कारण' और हेतुमत् का अर्थ कार्य है। कार्यकारणभाव में यदि वक्ता को किसी अन्य प्रमाण से क्रिया की असिद्धि का निश्चय हो जाता हो तो इस लिङ् का अपवादस्वरूप 'लृङ्' लकार का विधान उपर्युक्त सूत्र ने किया है। तात्पर्य यह है कि 'लिङ् लकार के प्रयोग में हेतुहेतुमद्भाव को जैसे निमित्त कहा गया है ठीक वैसे ही 'लृङ्' लकार का प्रयोग तभी होगा जब हेतुहेतुमद्भावरूप निमित्त उपस्थित रहे। और भविष्यत्, भूत, वर्तमान किसी काल में क्रिया की असिद्धि का निश्चय भी अवश्य रहे। अर्थात् कार्यकारणभाव आदि का प्रयोग करने वाले वक्ता को यदि यह ज्ञात रहे कि यहाँ क्रिया होनी नहीं है, तभी 'लृङ्' लकार का प्रयोग किया जाता है। किन्तु जहाँ क्रिया की अनिष्पत्ति का निश्चय न हो और केवल हेतुहेतुमद्भाव ही रहे, वहाँ 'लृङ्' लकार का प्रयोग न होकर 'लिङ्' लकार का ही प्रयोग होगा। जैसे—हेतुहेतुमद्भाव में लिङ् के उदाहरण। 'वृष्टिर्भवेत् चेत् सुभिक्षं स्यात्। सः गायेत् चेत् गायको भवेत्। अब (१) लिङ् के निमित्त (२) भविष्यत् काल (३) क्रियातिपत्ति तीनों के उपस्थित रहने पर 'लृङ्' लकार का उदाहरण—'सः अत्र अगास्यत् चेत् नूनं सा अनर्तिष्यत् (अनर्त्स्यत् वा)। यदि वह यहां गाता तो वह अवश्य नाचती। यहां 'गाना' हेतु (कारण)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है और 'नाचना' हेतुमत् (कार्य) है। इस हेतु-हेतुमद्भाव को यहां भविष्यत्काल में बताया गया है। वक्ता को यहांपर क्रिया की अनिष्पत्ति का पूरी तरह से निश्चय हो चुका है। अर्थात् उसे विश्वास है कि न उसे गाना है और न इसे नाचना है। इसलिये भविष्यत् कालिक क्रियातिपत्ति में 'लङ्' लकार का प्रयोग किया गया है। 'सुवृष्टिश्चेत् सुभिक्षम् अभविष्यत्' यदि वर्षा अच्छी हुई होती तो फसल अच्छी होती। यहां पर भूतकालिक क्रियातिपत्ति में 'लङ्' का प्रयोग हुआ है। न वर्षा अच्छी हुई और न फसल अच्छी हुई। उसी प्रकार 'किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता' तं चेत् सहस्र किरणो धुरि नाऽकरिष्यत् –(शाकुं. ७।४) क्या अरुण अन्धकार को दूर करने में समर्थ हो सकता था, यदि सूर्य उसे अपने आगे न बिठाता ? यहां वर्तमानकालिक क्रियातिपत्ति में लङ् का प्रयोग किया गया है।

ये लट्, लिट् आदि नाम कालों और अर्थों (प्रकार) के पारिभाषिक हैं।

"लट् वर्तमाने लेट् वेदे भूते लुङ्लङ्लिटस्तथा।
विध्याशिषोस्तु लिङ्लोटौ लुट्लृट्लृङ् च भविष्यति ॥"

ये पारिभाषिक नाम महर्षि पाणिनि के दिये हुए हैं। अन्य वैयाकरणों ने अन्य नाम दिये हैं। जैसे—(१) भवति (वृत्तिः), (२) अद्यतनी, (३) ह्यस्तनी, (४) परोक्षा, (५) श्वस्तनी, (६) भविष्यन्ती, (७) पञ्चमी, (८) सप्तमी, (९) क्रियातिपत्ति, (१०) आशीः।

ऊपर किये गये विवेचन से यह ज्ञात हो जाता है कि भिन्न भिन्न कालों तथा भिन्न भिन्न प्रकारों (अर्थों) को बताने के लिये धातु के आगे लकार लगाए जाते हैं। जिनके आगे लकार लगाये जाते हैं उन धातुओं को अनेक श्रेणियों में विभक्त किया गया है।

धातुओं की श्रेणियां या गण

महर्षि पाणिनि ने 'धातुपाठ' की रचना की है। उसमें उन्होंने धातुओं को दस श्रेणियों में विभक्त किया है। उन श्रेणियों को व्याकरण में 'गण' शब्द से कहा गया है। जैसे—(१) भ्वादिगण, (२) अदादिगण (३) जुहोत्यादिगण, (४) दिवादिगण, (५) स्वादिगण, (६) तुदादिगण, (७) रुधादिगण (८) तनादिगण (९) क्र्यादिगण (१०) चुरादिगण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन गणों का नामकरण उनमें दिये गये प्रथम धातु के आधार पर किया गया है। जैसे– प्रथम गण का नाम उस गण में दिये गए प्रथम धातु 'भू' के आधार पर 'भ्वादि' गण रखा गया है। उसी तरह द्वितीयगण में आनेवाले प्रथम धातु 'अद्' के कारण 'अदादि' गण रखा गया है। यही रीति अन्य गणों के सम्बन्ध में भी है। उक्त दश गणों के नाम याद रखने के लिए निम्नांकित पद्य को कण्ठ कर लेना चाहिये।

"भ्वाद्यदादी जुहोत्यादिर्दिवादिः स्वादिरेव च।
तुदादिश्च रुधादिश्च तन्क्र्यादिचुरादयः"॥

इन धातुओं का कोई एक ही अर्थ न होकर अनेक अर्थ होते हैं। 'धातूनामनेकार्थाः' यह उक्ति प्रसिद्ध ही है। धातुपाठ में धातुओं के प्रसिद्ध अर्थों को ही दिया गया है। उन अर्थों को अन्यान्य अर्थों के उपलक्षणार्थ ही समझना चाहिये।

पीछे हम कह आये हैं कि जिस काल की क्रिया बनानी हो उस काल को बताने के लिये धातु से आगे लट् आदि लकार लगाए जाते हैं। उन लकारों के स्थान पर अठारह प्रत्ययों का आदेश किया जाता है। 'आदेश' शत्रु के समान होता है, 'शत्रुवदादेशः' अर्थात् शत्रु जैसे दूसरे को मेट कर उसके स्थानापन्न हो जाता है वैसे ही उक्त अठारह प्रत्यय भी लकारों को मेटकर उनके स्थानापन्न होते हैं। लकारों के स्थान पर होनेवाले आदेशस्वरूप अठारह प्रत्यय इस प्रकार हैं—

लकार स्थानापन्न अठारह प्रत्यय

"तिप्-तस्-झि-सिप्-थस्-थ-मिब्-वस्-मस्-ताऽऽताम्-झ-थासाथां-ध्वमिड्-वहि-महिङ्"—(३।४।७८ वि० सू०)

तिप्, तस्, झि; सिप्, थस्, थ; मिप्, वस्, मस् त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्; इट्, वहि, महिङ्।

इन अठारहों में प्रथम नौ प्रत्ययों की 'परस्मैपद' संज्ञा होने से उन नौ को परस्मैपदी प्रत्यय कहते हैं, और अवशिष्ट नौ की 'आत्मनेपद' संज्ञा होने से उन नौ को आत्मनेपदी प्रत्यय कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रत्यय

परस्मैपदी			आत्मनेपदी		
तिप्	तस्	झि	त	आताम्	झ
सिप्	थस्	थ	थास	आथाम्	ध्वम्
मिप्	वस्	मस्	इट्	वहि	महिङ्

इतना समझने के पश्चात् जिज्ञासा होगी कि किस धातु से परस्मैपदी प्रत्यय और किस धातु स आत्मने पदी प्रत्यय किये जाँय ? उस जिज्ञासा का समाधान करने के लिये महर्षि पाणिनि ने तीन सूत्रों की रचना की है।

(१) "अनुदात्तङित आत्मनेपदम्"—(१।३।१२) कतिपय धातुओं में प्रयोजनवश अनुदात्त स्वर जोड़ दिया गया है। जैसे—'एध, कमु, यती आदि धातुओं में अन्तिम स्वर अनुदात्त है। उसकी "उपदेशेऽजनुनासिक इत्" सूत्र से इत्संज्ञा होती है पश्चात् "तस्य लोपः" सूत्र से उस अनुदात्त स्वर का लोप कर दिया जाता है, इसलिये ये निर्दिष्ट धातु 'अनुदात्तेत्' कहे जाते हैं। इस प्रकार के अनुदात्तेत धातुओं से आगे लकार के स्थानपर आत्मनेपदी (आत्मनेपदके) प्रत्यय होते हैं, परस्मैपदी प्रत्यय नहीं।

उसी प्रकार जिन धातुओं के ङकार की इत्संज्ञा होती है उनसे भी लकार के स्थानपर आत्मनेपदी प्रत्यय किये जाते हैं। जैसे—'शीङ्' धातु के 'ङ्' कार की 'हलन्त्यम्' सूत्र से इत्संज्ञा होती है, 'तस्य लोपः' सूत्र से उसका लोप हो जाता है। अतः यह निर्दिष्ट धातु 'ङित्' है, उससे आत्मनेपदी प्रत्यय ही होते हैं।

(२) "स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले"—(१।३।७२) जिस धातु का 'स्वरित' स्वर इत् हो अथवा 'ञ्' इत् हो उस धातु से आगे लकार के स्थान पर आत्मनेपदी प्रत्यय होते हैं यदि क्रिया का फल कर्त्ता को प्राप्त होता हो तो।

जैसे—'यज' 'डुपचष्' (पच) धातुओं के अन्तिम स्वर 'स्वरित' है, उसकी 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' सत्र से इत् संज्ञा की जाती है और 'तस्यलोपः' सत्र से लोप हो जाता है। अतः 'यज' तथा 'पच' धातु स्वरितेत् हैं, उनसे आत्मनेपदी प्रत्यय लगाये जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रिया का प्रारम्भ जिस अभिप्राय से किया जाता है उस अभिप्राय को क्रिया का फल कहते हैं। जहाँ क्रिया का फल कर्त्ता को नहीं मिलेगा वहाँ 'शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र से धातु के आगे परस्मैपदी प्रत्यय होते हैं।

जिस धातु के 'ञ्' कार की इत्संज्ञा की जाती है उसे 'ञित्' कहते हैं। जैसे—'डुकृञ्' 'हृञ्' 'णीञ्' आदि धातु ञित् हैं। इनके 'ञ्' की 'हलन्त्यम्' सूत्र से इत्संज्ञा हो जाती है। यहां पर भी वही शर्त है कि क्रिया का फल यदि कर्ता को प्राप्त होता हो तो आत्मनेपदी प्रत्यय होंगे अन्यथा परस्मैपदी प्रत्यय किये जायेंगे।

'शेषात् कर्त्तरि परस्मैपदम्'—(१।३।७८) जिस धातु में आत्मनेपद के उक्त निमित्त उपलब्ध न हों उस धातु से कर्त्ता के अर्थ में परस्मैपदी प्रत्यय होते हैं। ये परस्मैपदी प्रत्यय केवल कर्ता अर्थ में ही होते हैं जब तक किसी सूत्र से आत्मनेपद का विधान न हो। किसी विशेष सूत्र से आत्मनेपद का विधान रहने पर कर्ता अर्थ में परस्मैपदी प्रत्यय न होकर आत्मनेपदी प्रत्यय किया जाता है। पीछे हम बता चुके हैं कि आत्मनेपदी, परस्मैपदी सभी प्रत्यय लकार के स्थान पर आदेश किये गये हैं, अतः भाव और कर्मवाच्य में लकार के स्थान पर आत्मनेपदी प्रत्ययों को समझना चाहिये। भाववाच्य (भाव अर्थ), और कर्मवाच्य (कर्म अर्थ) में परस्मैपदी प्रत्यय कभी नहीं किया जाता। भले ही धातु परस्मैपदी या आत्मनेपदी या उभयपदी भी क्यों न हो। भाववाच्य और कर्मवाच्य में आत्मनेपदी प्रत्यय ही किया जायगा।

पीछे आत्मने पद के जो निमित्त 'अनुदात्तेत्, ङित्, स्वरितेत् ञित्' बताये हैं उनमें से कोई भी निमित्त 'भू' धातु में नहीं उपलब्ध हो रहा है, उसी तरह किसी विशेष सूत्र से उक्त धातु से आत्मनेपद का विधान भी नहीं किया गया है, इसलिये 'भू' धातु से कर्ता के अर्थ में (कर्तृविवक्षा करने पर) परस्मैपदी प्रत्यय ही किये जाते हैं। जैसे—भवति, भवतः, भवन्ति इत्यादि।

पुरुष—परिचय

"तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः"-(१।४।१०० सं० सू०) 'तिङ्' के परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों में प्रत्येक से नौ-नौ प्रत्यय होते हैं। इसलिये प्रत्येक पद में तीन तीन प्रत्ययों के तीन त्रिक बन जाते हैं।

२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसी तरह संज्ञाएँ भी तीन हैं प्रथम-मध्यम और उत्तम। "यथासंख्यमनुदेशः समानाम्" सूत्र से प्रथम त्रिक की 'प्रथम' संज्ञा, दूसरे त्रिक की 'मध्यम' संज्ञा और तीसरे त्रिक की 'उत्तम' संज्ञा की जाती है। त्रिकों की इन संज्ञाओं के लिये 'पुरुष' शब्द का व्यवहार पाणिनि के पूर्ववर्त्ती आचार्यों से चला आ रहा है। अतः प्रथम से प्रथमपुरुष, मध्यम से मध्यमपुरुष, और उत्तम से उत्तमपुरुष समझना चाहिये।

त्रिक संख्या	परस्मैपद	आत्मनेपद	संज्ञा
प्रथम त्रिक	तिप्, तस्, झि	त, आताम्, झ	प्रथम पुरुष
द्वितीय त्रिक	सिप्, थस्, थ	थास्, आथाम्, ध्वम्	मध्यम पुरुष
तृतीय त्रिक	मिप्, वस्, मस्	इट्, वहि, महिङ्	उत्तम पुरुष

वचन (संख्या)—परिचय

'तान्येकवचन-द्विवचन-बहुवचनान्येकशः"—(१।४।१०२) 'तिङ्' प्रत्याहार में तीन परस्मैपद के और तीन आत्मनेपद के कुल मिलाकर छह त्रिक बनते हैं। प्रत्येक त्रिक को 'एकवचन, द्विवचन, बहुवचन' ये तीन संज्ञाएँ प्राप्त होती हैं। उन संज्ञाओं को वह त्रिक अपने अन्तर्गत रहनेवाले तीन प्रत्ययों में विभक्त कर देता है। 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' इस परिभाषा के अनुसार प्रत्येक त्रिक का पहला प्रत्यय 'एकवचन', दूसरा प्रत्यय 'द्विवचन' और तीसरा प्रत्यय 'बहुवचन' कहलाता है 'तिप्, तस् झि' यह प्रथम त्रिक है। 'सिप्, थस्, थ' यह द्वितीय त्रिक है। 'मिप्, वस्, मस्' यह तृतीय त्रिक है। ये तीनों त्रिक परस्मैपद के हैं। इसी तरह 'त आताम्, झ' यह प्रथम त्रिक है। 'थास्, आथाम्, ध्वम्' यह द्वितीय त्रिक है। 'इट्, वहि, महिङ्' यह तृतीय त्रिक है। ये तीनों त्रिक आत्मनेपद के हैं। तात्पर्य यह हुआ कि 'तिप्' एकवचन का प्रत्यय है, 'तस्' द्विवचन का प्रत्यय है, 'झि' बहुवचन का प्रत्यय है। यही पद्धति अन्य पांच त्रिकों में भी समझनी चाहिये। प्रत्येक त्रिक को तीन-तीन संज्ञाएँ मिली हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम त्रिक (प्रथम पुरुष)	तिप्	तस्	झि	त	आताम्	झ
द्वितीय त्रिक (मध्यम पुरुष)	सिप्	थस्	थ	थास्	आथाम्	ध्वम्
तृतीय त्रिक (उत्तम पुरुष)	मिप्	वस्	मस्	इट्	वहि	महिङ्

पुरुष—व्यवस्था

'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः"—(१।४।१०४ वि० सू०) इस सूत्र के अर्थ को बड़ी सावधानी से समझना होगा। प्रथमतः इतना ही समझिये कि 'युष्मदि उपपदे मध्यमः (पुरुषः भवति)—धातु के समीप ही युष्मद् शब्द के रहने पर मध्यम पुरुष होता है। जैसे—'त्वं पाठशालां गच्छसि' यहां 'त्वम्' यह युष्मद् शब्द 'उपपद' है, इस कारण 'गम्' धातु से मध्यम पुरुष का 'सि' प्रत्यय हुआ है। अब 'समानाधिकरणे' का अर्थ देखिये—लकार का जो वाच्य (अर्थ या अधिकरण) हो, वही वाच्य (अर्थ या अधिकरण) 'युष्मद्' शब्द का भी होना चाहिये, तभी युष्मद् शब्द लकार का समानाधिकरण (दोनों का एक अधिकरण) कहलायेगा। तात्पर्य यह है कि लट् लिट् आदि लकार जिस कर्ता, कर्म के अर्थ में हुए हों युष्मद् शब्द का वाच्य (अर्थ, अधिकरण) भी वही कर्ता, कर्म होने चाहिये, उससे भिन्न नहीं। जैसे—'त्वं गायसि, त्वं नृत्यसि, त्वं वादयसि, त्वं गच्छसि, त्वं पठसि' इन वाक्यों में 'गै', 'नृत्', 'वादि', 'गम्', 'पठ्' आदि धातुओं से 'लट्' लकार कर्ता अर्थ में हुआ है। यहाँ पर लट् लकार से जिस कर्ता का निर्देश किया गया है उसी को 'युष्मद्' शब्द भी बता रहा है। उससे अन्य किसी दूस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को नहीं। इसलिये युष्मद् और लट् दोनों के वाच्य (अर्थ या अधिकरण) में भेद न होने के कारण यहाँ मध्यम पुरुष का प्रयोग किया गया है। यदि दोनों के वाच्यों (अर्थ या अधिकरणों) में भेद होगा तो मध्यम पुरुष का प्रयोग नहीं होगा। जैसे—'अध्यापकः त्वां पश्यति' यहाँ पर 'पश्यति' में लट् लकार अध्यापक (कर्त्ता) की ओर निर्देश कर रहा है किन्तु युष्मद् शब्द किसी दूसरे की ओर निर्देश कर रहा है, इस कारण अधिकरण दोनों के भिन्न भिन्न हुए, अतः उक्त वाक्य में मध्यम पुरुष का प्रयोग नहीं हुआ। अब सूत्र के 'स्थानिन्यपि' के अर्थ को देखिये। उपर्युक्त समानाधिकरण वाले युष्मद् शब्द का प्रयोग हुआ हो या न भी हुआ हो, दोनों स्थितियों में मध्यम पुरुष होगा। तात्पर्य यह है कि 'युष्मद्' का प्रयोग, वक्ता या लेखक के द्वारा किये जाने पर तो मध्यम पुरुष होता ही है, जैसे–'त्वं गायसि या त्वं नृत्यसि', किन्तु युष्मद् का प्रयोग न किये जाने पर भी अर्थात् केवल गम्यमान रहने पर भी मध्यम पुरुष हो जाता है। जैसे—'गायसि, नृत्यसि, पाठशालां गच्छसि' यहाँ युष्मद् का प्रत्यक्ष प्रयोग न रहने पर भी उसके गम्यमान होने से मध्यम पुरुष किया गया है।

"अस्मद्युत्तमः"—(१।४।१०६ वि. सू.)

लकार के साथ समान वाच्य वाले अस्मद् शब्द के उपपद रहने पर तथा उसके प्रयोग होनेपर या न होने पर भी उत्तम पुरुष होता है। अर्थात् लकार और अस्मद् शब्द दोनों समानाधिकरण होने चाहिये। लकार जिसकी ओर निर्देश करता हो उसी की ओर यदि अस्मद् शब्द भी निर्देश करता हो तब दोनों समानाधिकरण कहलाते हैं। जैसे—अहं गायामि, अहं नृत्यामि अथवा गायामि, नृत्यामि आदि।

"शेषे प्रथमः"—(१।४।१०७ वि. सू.)

'युष्मद्युपपदे' सूत्र ने केवल 'युष्मद्' के सम्बन्ध में तथा 'अस्मद्युत्तमः' सूत्र ने केवल 'अस्मद्' के सम्बन्ध में बताया था, लेकिन यह सूत्र उन दोनों की परिधि को छोड़कर समस्त सर्वनाम तथा संज्ञाओं के सम्बन्ध में बता रहा है। तात्पर्य यह है कि मध्यम और उत्तम पुरुष का विषय जहां न हो वहां प्रथम पुरुष होता है। जैसे—सः, कः, यः, असौ, भवान्, रामः, गोपालः, गन्धर्वः, गायति। सः, गन्धर्वः वाद्यं वादयति आदि। तात्पर्य यह है कि विभक्तियों में तीन पुरुष होते हैं—प्रथम, मध्यम और उत्तम। क्रिया के साथ युष्मद् शब्द से भिन्न शब्दों के प्रयुक्त होनेपर प्रथम पुरुष, युष्मद् शब्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के प्रयुक्त होनेपर मध्यम पुरुष, और अस्मद् शब्द के प्रयुक्त रहने पर उत्तम पुरुष होता है। तथा कर्ता का जो वचन रहे वही क्रिया का भी वचन होता है। जैसे—(१) सः (बालकः) गायति, तौ (बालकौ) गायतः, ते (बालकाः गायन्ति। (२) त्वं गायसि, युवां गायथः, यूयं गायथ। (३) अहं गायामि, आवां गायावः, वयं गायामः।

यदि युष्मद् और अस्मद् दोनों की एक ही क्रिया के साथ युगपद् विवक्षा रहे तो 'अस्मद्युत्तमः' सूत्र से उत्तम पुरुष का ही प्रयोग करना चाहिये। जैसे—त्वं च अहं च गायावः। 'गाथावः' यह लट् (वर्तमानकाल) लकार के उत्तम पुरुष का द्विवचन है। यदि मध्यम और प्रथम दोनों की युगपत् विवक्षा रहे तो मध्यम पुरुष ही होगा। क्योंकि वहां मध्यम (युष्मद् शब्द) विद्यमान है इसलिये 'शेषे०' सूत्र के अनुसार शेषत्व नहीं बन पा रहा है। उदा०—त्वं च स च गायथः। उसी प्रकार उत्तम (अस्मद् शब्द) और प्रथम की विवक्षा रहनेपर उत्तम पुरुष ही होगा। जैसे—सः अहं च गायावः।

वाक्य में क्रिया का प्रयोग करने के लिये क्रिया से सम्बन्धित कतिपय नियमों के साधारण ज्ञान का रहना आवश्यक होता है, इसलिये हमने यहांतक काल, पुरुष, वचन, पद (परस्मैपद तथा आत्मनेपद) के बारे में बताया। अब हम धातुओं के रूपों का सुगमता से ज्ञान हो सके इसलिये धातुओं का विभाग बता रहे हैं।

धातुओं का विभाग

(सेट्, वेट् अनिट्)

धातुओं का विभाजन सेट्, वेट्, अनिट्, इन तीन विभागों में किया जाता है। सेट् का अर्थ है 'इट्' के सहित। जिन धातुओं के रूपों में धातु और प्रत्यय के मध्य में 'इ' आती है। यह 'इ' कतिपय प्रत्ययों के ही पूर्व आती है, सबके पूर्व नहीं। जैसे 'भू' धातु सेट् है, अतः 'भविता' 'भविष्यति' में धातु के आगे और प्रत्यय के पूर्व 'इ' सुनाई पड़ रहा है।

'वेट्' (वा + इट्) विभाग में उन्हीं धातुओं का संग्रह है, जिनके आगे 'इ' विकल्प से आती है। जैसे—'अक्ष्' व्याप्तौ धातु 'वेट्' है अतः 'अक्षिता' और 'अष्टा', 'अक्षिष्यति' और 'अक्ष्यति' यहाँ एक रूप में धातु और प्रत्यय के मध्य में 'इ' सुनाई दे रहा है और दूसरे रूप में धातु-प्रत्यय के मध्य में 'इ' नहीं सुनाई दे रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'अनिट्' विभाग में उन धातुओं का संग्रह है, जिनके आगे 'इ' नहीं होती। जैसे—'त्यज्' धातु अनिट् है, अतः 'त्यक्ता', 'त्यक्ष्यति' में धातु और प्रत्यय के मध्य में 'इ' नहीं सुनाई पड़ रही है। 'गै' धातु अनिट् है अतः 'गाता' 'गास्यति' में धातु के आगे और प्रत्यय के पूर्व 'इ' नहीं सुनाई पड़ रहा है। तात्पर्य यह है कि जो धातु 'उदात्त' हो उसे 'सेट्' कहते हैं, और जो धातु 'अनुदात्त' हो उसे 'अनिट्' कहते हैं, और जो धातु स्वरित हो उसे 'वेट्' कहते हैं। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ये नाम स्वरों के हैं, किन्तु कतिपय परिगणित धातु भी उसी नाम से कहे जाते हैं अब कौन उदात्त है और कौन अनुदात्त तथा स्वरित है, इस जिज्ञासा के समाधानार्थ धातुओं को गिनवा दिया गया है, उससे उदात्त, अनुदात्त, स्वरित धातुओं का पता चल जाता है। अनुदात्त शब्द को सुनकर अनुदात्त और अनुदात्तेत् को एक नहीं समझना चाहिये। अनुदात्तेत् धातुओं में अनुदात्त अनुबन्ध 'इत्' होता है, और 'इत्' होनेपर आत्मनेपद किया जाता है। केवल अनुदात्त धातु से आगे आर्धधातुक प्रत्यय को इडागम नहीं हुआ करता। यह अनिवार्य नहीं कि जो धातु अनुदात्त हो वह अनुदात्तेत् भी हो। 'एध' धातु अनुदात्तेत् है लेकिन अनुदात्त नहीं है।

अनुदात्त धातुओं का संग्रह एक कारिका में दिया जा रहा है, जिसके कण्ठस्थ कर लेने से धातुओं के उदात्त, अनुदात्त का परिचय सरलता से हो जाता है। उसीसे सेट्, अनिट् धातुओं का परिचय भी अनायास हो जाता है।

कुछ धातु अजन्त [अच् + अन्त = स्वरान्त] और कुछ धातु हलन्त [हल् + अन्त = व्यञ्जनान्त] होते हैं। अजन्त एकाच् (एक स्वरवाले) धातुओं में अनुदात्त धातु ये हैं :—

'ऊदृदन्तैर्-यौति-रु-क्ष्णु-शीङ्-स्नु-नु-क्षु-श्वि-डीङ्-श्रिभिः।

वृङ्-वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः॥

ऊदन्त, ऋदन्त, यु, रु, क्ष्णु, शीङ्, स्नु, नु, क्षु, श्वि, डीङ्, श्रि, वृङ् और वृञ्—इन धातुओं को छोड़कर धातुपाठ में बताये गये एक अच् (स्वर) वाले सम्पूर्ण अजन्त धातु निहत यानी अनुदात्त हैं।

ऊदृदन्त (ऊकारान्त और ऋकारान्त)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१—ऊदन्तधातु-भू = सत्ता (होना, भ्वा० पर०) लूञ् =छेदन (काटना, क्रया० उभ०) पूञ् = पवन (पवित्र करना, क्रया० उभ०) इत्यादि ।

२—ॠदन्तधातु—कॄ = विक्षेप (बिखेरना, तुदा० पर०), पॄ = पालन, पूरण (पालना या भरना, जुहो० पर०), गॄ= निगरण (निगलना, तुदा० पर०) इत्यादि ।

३—यौतिधातु—यु=मिश्रण—अमिश्रण (मिलाना या अलग करना, अदा०पर०)।

४—रु = शब्दे—(शब्द करना, अदा०पर०), रुङ् =गति—रेषण (गमन या हिंसा करना, भ्वा० आत्मने०) ।

५—क्ष्णु =तेजन (तीक्ष्ण करना, अदा० पर०) ।

६—शीङ् = स्वप्न (सोना, अदा०, आत्मने०) ।

७—स्नु—ष्णु = प्रस्रवण (चूना, टपकना, अदा० पर०)

८—नु—णु = स्तुति (स्तुति करना, अदा० पर०) ।

९—क्षु—टुक्षु = शब्द (शब्दकरना, अदा० पर०) ।

१०—श्वि—टुओश्वि = गति, वृद्धि, (गमन, बढना, भ्वा०, पर०)

११—डीङ् =विहायसा गति (उडना, भ्वा०, दिवा०, आत्मने०)

१२—श्रिञ् = सेवा (सेवा करना, आश्रय करना, भ्वा० उभ०)

१३—वृङ् = सम्भक्ति (सेवा करना, क्र्या-आत्मने)

१४—वृञ् = वरण (स्वीकार करना, स्वा०, उभ०), वृङ् = आवरण (ढांकना चुरा० उभ०)

ऊपर परिगणित किये गये चौदह एकाच् अजन्त धातु 'उदात्त' हैं। इनके अतिरिक्त बचे हुए सभी एकाच् अजन्त धातु 'अनुदात्त' समझने चाहिये। ऊपर गिनवाये गये चौदह धातुओं में 'इट् ' का निषेध नहीं होगा। जैसे—ऊदन्त धातुओं में (भू) भविता, भविष्यति, (लू) लविता, लविष्यति। ॠदन्त धातुओं में (कॄ) करिता, करिष्यति। (यु) यविता, यविष्यति। (रु) रविता, रविष्यति। (क्ष्णु) क्ष्णविता, क्ष्णविष्यति। (शीङ्) शयिता, शयिष्यते। (स्नु) स्नविता, स्नविष्यति। (नु) नविता नविष्यति। (क्षु) क्षविता, क्षविष्यति। (श्वि) श्वयिता, श्वयिष्यति। (डीङ्) डयिता, डयिष्यते। (श्रिञ्) श्रयिता, श्रयिष्यति। (वृङ्) वरिता, वरिष्यति। (वृञ्) वरिता, वरिष्यति। इनमें सर्वत्र इट् का आगम हुआ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन परिगणित चौदह धातुओं को छोड़कर सभी एकाच् अजन्त धातु अनुदात्त हैं, उनमें 'इट्' का आगम नहीं होता। जैसे–या = प्रापणे (प्राप्त होना = जाना, अदा० पर०) याता, यास्यति, यातुम्, यातव्यम्)। अजन्त धातुओं में उदात्तधातु अल्प हैं और अनुदात्तधातु अधिक हैं। इसलिये उदात्त धातुओं को गिनाकर शेष धातुओं को अनुदात्त कह दिया गया।

इसके विपरीत हलन्त धातुओं में उदात्त बहुत हैं और अनुदात्त धातु कम हैं। इसलिये ककाराद्यन्त क्रम से अनुदात्त धातुओं को ही गिनवा दिया गया है।

ककारान्त धातुओं में एक 'शक्लृ' शक्तौ (सकना, समर्थ होना, स्वा० पर०) धातु ही अनुदात्त है।

चकारान्त धातुओं में छह धातु अनुदात्त हैं—

१—'पच्'–डुपचष् = पाके (पकाना, भ्वा० उभ०)।

२—मुच्–मुच्लृ = मोक्षणे (छोडना, तुदा० उभ०)।

३—रिच्–रिचिर् = विरेचने (दस्त लगना, खालीकरना, रुधा० उभ०) तथा रिच् = वियोजन–सम्पर्चनयोः (अलगकरना, मिलना चुरा० उभ०)।

४—वच्–वच = परिभाषणे (बोलना, अदा० पर०) तथा 'ब्रुवो वचिः' सूत्र से 'ब्रू' के स्थान पर किया गया 'वच्' आदेश।

५—विच्–विचिर् = पृथग्भावे (अलग करना रुधा० उभ०)।

६—सिच्–षिच = क्षरणे (सींचना, तुदा० उभ०)।

छकारान्तों में केवल एक धातु अनुदात्त हैं—

१. प्रच्छ = ज्ञीप्सायाम् (पूछना, तुदा० पर०)।

जकारान्तों में पन्द्रह धातु अनुदात्त हैं—

१. त्यज = हानौ (छोड़ना, भ्वा० पर०)।

२. निजिर् – णिजिर् = शौचपौषणयोः (शुद्ध करना या पोषण करना, जुहो० उभ०)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. भज = सेवायाम् (सेवा करना, भ्वा० उभ०)
४. भञ्ज्–भञ्जो = आमर्दने (तोडना, रुधा० पर०)
५. भुज्–भुज=पालनाऽभ्यवहारयोः (पालन करना, खाना, रुधा०पर०) तथा भुजो = कौटिल्ये (टेढा करना, तुदा० पर०)।
६. भ्रस्ज = पाके (पकाना, भूनना, तुदा० उभ०)
७. मस्ज–टुमस्जो = शुद्धौ (शुद्ध होना, डुबकी लगाना, तुदा० पर०)
८. यज = देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु (यज्ञ करना, भ्वा० उभ०)
९. युज्–युजिर् = योगे (जोड़ना, रुधा० उभ०) तथा युज = समाधौ (समाहित होना, दिवा० आत्मने०) तथा युज संयमने (बान्धना, चुरा० उभ०)
१०. रुज्–रुजो = भङ्गे (तोडना, तुदा० पर०)
११. रञ्ज = रागे (रंगना, अनुरक्त होना, भ्वा० उभ० दिवा०)
१२. विजिर् = पृथग्भावे (अलग होना, जुहो० उभ०)
१३. स्वञ्ज–ष्वञ्ज = परिष्वङ्गे (आलिङ्गन करना, भ्वा० आत्मने०)
१४. सञ्ज्–षञ्ज = सङ्गे (चिपटना, भ्वा० पर०)
१५. सृज = विसर्गे (छोड़ना, पैदा करना, दिवा० आत्मने०, तुदा० पर०)

दकारान्तों में सोलह धातु अनुदात्त हैं—

१. अद = भक्षणे (खाना, अदा० पर०)।
२. क्षुद्–क्षुदिर् = सम्पेषणे (कूटना–पीसना, रुधा०, उभ०)
३. खिद्–खिद = दैन्ये (खिन्न होना, दिवा० आत्मने०, रुधा० आत्मने०) तथा खिद = परिघाते (मारना, तुदा० पर०)।
४. छिद्–छिदिर् = द्वैधीकरणे (काटना, रुधा० उभ०)
५. तुद = व्यथने (पीडादेना, तुदा० उभ०)
६. नुद्–णुद = प्रेरणे (प्रेरित करना, तुदा० उभ०)
७. पद्य–पद = गतौ (जाना या प्राप्तकरना, दिवा० आत्मने०)
८. भिद्–भिदिर् = विदारणे (भेदनकरना, रुधा० उभ०)
९. विद्य–'श्यन्' विकरणवाली विद् धातु–विद = सत्तायाम् (होना दिवा० आत्मने०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१०. विनद्-श्नम्—विकरणवाली विद्—विद = विचारणे (विचारना, रुधा० आत्मने०)

११. विन्द्-नुमागम वाली विद् धातु—विद्लृ=लाभे (पाना, तुदा० उभ०)

१२. शद्-शद्लृ = शातने (नष्ट होना, भ्वा०, तुदा०, पर०)

१३. सद्-षद्लृ = विशरणगत्यवसादनेषु (टूटना, जाना, थकना, भ्वा०, तुदा०, पर०)

१४. स्विद्य-श्यन्विकरणवाली स्विद् धातु—ञिष्विदा = गात्रप्रक्षरणे (पसीनाआना, दिवा० पर०)

१५. स्कन्द-स्कन्दिर् = गतिशोषणयोः (जाना, सुखाना, भ्वा० पर०)

१६. हद = पुरीषोत्सर्गे (मलत्याग करना भ्वा०, आत्मने०)

धकारान्तों में ग्यारह धातु अनुदात्त हैं—

१. क्रुध = क्रोधे (क्रोध करना, दिवा० पर०)

२. क्षुध = बुभुक्षायाम् (भूखा होना, दिवा० पर०)

३. बुध्य-'श्यन्' विकरणवाली बुध धातु-बुध = अवगमने (जानना, दिवा०, आत्मने०)

४. बन्ध = बन्धने (बांधना, क्र्या० पर०)

५. युध = सम्प्रहारे (युद्ध करना, दिवा० आत्मने०)

६. रुधिर् = आवरणे (रोकना, रुधा० आत्मने०)

७. राध = संसिद्धौ (सिद्ध करना, स्वा० पर०) तथा राध = वृद्धौ (बढ़ना, दिवा० पर०)

८. व्यध = ताडने (मारना, बींधना, दिवा० पर०)

९. शुध = शौचे (पवित्र होना, दिवा० पर०)

१०. साध = संसिद्धौ (सिद्ध करना, स्वा० पर०)

११. सिध्य-श्यन् 'विक' णवाली सिध् धातु—षिधु=संराद्धौ (सिद्ध होना दिवा० पर०)

नकारान्तों में दो धातु अनुदात्त हैं—

१. मन्य-'श्यन्' विकरणवाली मन् धातु—मन = ज्ञाने (जानना, मानना, दिवा० आत्मने०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. हन = हिंसागत्योः (हिंसा करना, गमन करना अदा० पर०)

पकारान्तों में तेरह धातु अनुदात्त हैं—

१. आप्—आप्लृ = व्याप्तौ (प्राप्त करना, स्वा० पर०), तथा आप्लृ = लंभने (हिंसा करना, चुरा० उभ०)
२. क्षिप = प्रेरणे (फेंकना, दिवा० पर०, तुदा० उभ०)
३. छुप = स्पर्शे (छूना, तुदा० पर०)
४. तप्—तप = सन्तापे (तपना भ्वा० पर०) तप = ऐश्वर्ये (ऐश्वर्यवान् होना, दिवा० आत्मने०) तथा तप = दाहे (जलाना, चुरा० उभ०)
५. तिप्-तिपृ = क्षरणे (टपकना, चूना, भ्वा० आत्मने०)
६. तृप्य—'श्यन्' विकरणवाली तृप् धातु-तृप = प्रीणने (तृप्त होना व करना दिवा० पर०)
७. दृप्य—'श्यन्' विकरणवाली दृप् धातु—दृप = हर्षमोहनयोः (खुश-होना घमण्डकरना, दिवा० पर०)
८. लिप = उपदेहे (लीपना, तुदा० उभ०)
९. लुप्—लुप्लृ = छेदने (काटना, तुदा० उभ०)
१० वप्—डुवप = बीजसन्ताने (बीज बिखेरना, भ्वा० उभ०)
११. शप्—शप = आक्रोशे (शाप देना, भ्वा० दिवा० उभ०)
१२. स्वप्—ञिष्वप् = शये (सोना, अदा० पर०)
१३. सृप्—सृप्लृ = गतौ (जाना, भ्वा० पर०)

भकारान्तों में तीन धातु अनुदात्त हैं—

१. यभ = मैथुने (मैथुन करना, भ्वा० पर०)
२ रभ = राभस्ये (आरंभ करना, भ्वा० आत्म०)
३. लभ्—डुलभष् = प्राप्तौ (पाना, भ्वा० आत्मने०)

मकारान्तों में चार धातु अनुदात्त हैं—

१. गम्—गम्लृ = गतौ (जाना, भ्वा० पर०)
२. नम्—णम = प्रह्वत्वे शब्दे च (झुकना, शब्दकरना, भ्वा० पर०)
३. यम्—यमु = उपरमे (शान्त होना, भ्वा० पर०)
४. रम्—रमु = क्रीडायाम् (खेलना, भ्वा० आत्मने०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शकारान्तों में दस धातु अनुदात्त हैं—

१. क्रुश = आह्वाने रोदने च (बुलाना, रोना, भ्वा० पर०)
२. दंश = दंशने (डंक मारना, भ्वा० पर०)
३. दिश = अतिसर्जने (देना, तुदा० पर०)
४. दृश्–दृशिर् = प्रेक्षणे (देखना, भ्वा० पर०)
५. मृश = आमर्शने (छूना, तुदा० पर०)
६–७. रुश, रिश = हिंसायाम् (हिंसा करना, तुदा० पर०)
८. लिश = अल्पीभावे (कम होना, दिवा० आत्मने०), लिश = गतौ (जाना, तुदा० पर०)
९. विश = प्रवेशने (प्रवेश करना, तुदा० पर०)
१०. स्पृश = संस्पर्शे (छूना, तुदा० पर०)

षकारान्तों में ग्यारह धातु अनुदात्त हैं—

१. कृष = विलेखने (हलजोतना, भ्वा० पर०, तुदा० उभ०)
२. त्विष = दीप्तौ (चमकना, भ्वा० उभ०)
३. तुष = प्रीतौ (प्रसन्न होना, दिवा० पर०)
४. द्विष = अप्रीतौ (द्वेष करना, अदा० उभ०)
५. दुष = वैकृत्ये (दूषित होना, दिवा० पर०)
६. पुष्य–श्यन्, विकरणवाली पुष् धातु–पुष = पुष्टौ (पुष्ट करना, दिवा० पर०)
७. पिष्–पिष्लृ = संचूर्णने (पीसना, रुधा० पर०)
८. विष्–विष्लृ = व्याप्तौ (व्याप्त करना, जुहो० उभ०) तथा विषु = सेचने (सींचना, भ्वा० पर०) तथा विष = विप्रयोगे (छोड़ना, क्र्या० पर०)
९. शिष्–शिष = हिंसायाम् (हिंसा करना, भ्वा० पर०), शिष्लृ = विशेषणे (विशिष्ट करना, रुधा० पर०) तथा शिष = असर्वोपयोगे (बच रहना, चुरा० उभ०)
१०. शुष = शोषणे (सूखना, दिवा० पर०)
११. श्लिष्य–श्यन् विकरणवाली श्लिष् धातु–श्लिष = आलिङ्गने (आलिङ्गन करना, दिवा० पर०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकारान्तों में दो धातु अनुदात्त हैं—

१. घस्-(अद्) घस्लृ = अदने (खाना, भ्वा० पर०)
२. वसति-भ्वादि का वस् धातु-वस = निवासे (रहना, भ्वा० पर०)

हकारान्तों में आठ धातु अनुदात्त हैं—

१. दह् = भस्मीकरणे (भस्मकरना, जलाना, भ्वा० पर०)
२. दिह् = उपचये (बढ़ाना, अदा० उभ०)
३. दुह् = प्रपूरणे (दोहना, अदा० उभ०)
४. नह्-णह् = बन्धने (बान्धना, दिवा० उभ०)
५. मिह् = सेचने (सींचना, भ्वा० पर०)
६. रुह् = बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च (उगना, भ्वा० पर०)
७. लिह् = आस्वादने (चाटना, अदा० उभ०)
८. वह् = प्रापणे (लेजाना, भ्वा० उभ०)

इस प्रकार 'अनुदात्ता हलन्तेषु धातवस्त्र्यधिकं शतम् ।' हलन्त धातुओं में अनुदात्त धातुओं की संख्या १०३ है। ये सब अनिट् हैं। किन्तु ऐसे भी कुछ धातु हैं जिनमें 'इट्' विकल्प से होता है जैसे—'स्वृ' =(शब्द करना, दुःख देना भ्वा० पर०), 'षूङ्'=(पैदा करना, अदा० आत्मने० दिवा० आत्मने०) धूञ् = (कँपाना, हिलाना, स्वा०, क्र्या० उभय०) तथा ऊदित—गुप, गाहू आदि धातुओं से स्वरिता-स्वर्ता, सविता—सोता, धविता—धोता, गोपिता—गोप्ता—ये लुट् लकार में रूप होते हैं।

पीछे हम बता चुके हैं कि आर्धधातुक प्रत्यय को इट् का आगम होता है जिससे सेट् धातु की पहिचान हो पाती है। सार्वधातुक और आर्धधातुक का ज्ञान लकारों से होता है, क्योंकि लकारों को सार्वधातुक और आर्धधातुक दो भागों में बाटा गया है। लट्, लङ्, लोट्, और विधिलिङ् ये चार लकार सार्वधातुक हैं। लुट्, लृट, लङ्, लिट्, लुङ् और आशीर्लिङ् ये छह लकार आर्धधातुक कहलाते हैं! ये सार्वधातुक और आर्धधातुक लकार जैसे परस्मैपद में वैसे ही आत्मनेपद में भी होते हैं।

सार्वधातुक लकारों में धातु और प्रत्ययों के बीच कुछ अन्य प्रत्यय, जिन्हें 'विकरण' कहते हैं, जोड़े जाते हैं। जैसे—भू धातु के लट् लकार में 'भवति' रूप बनता है, उसमें 'भू+अ+ति' ये तीन अंश रहते हैं। (१)'भू'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धातु है, (२) 'अ' विकरण प्रत्यय है, और 'ति' यह पुरुषप्रत्यय है। ये विकरण प्रत्यय दस हैं।

उन दस प्रकार के विकरणों के कारण ही धातुओं को दस गणों में विभक्त किया गया है।

गण	नाम	धातु	विक. प्र.	पुरु.प्र.		रूप	
				(पर.)	(आत्मने)	पर.	आत्मने
प्र. गण	भ्वा.	भू	अ (शप्)	ति	ते	भवति	
		वन्द्	अ (शप्)				वन्दते
द्वि. गण	अदा.	अद्	– (अ का लोप)	ति	–	अत्ति	—
		अस्	– (अ का लोप)	–	ते	—	आस्ते
तृ. गण	जुहो.	हु	– (अ का लोप)	ति	–	जुहोति	—
		हा	– (अ का लोप)	–	ते	—	जिहीते
चतु. गण	दिवा.	दिव्	य (श्यन्)	ति	ते	दीव्यति	दीव्यते
पञ्च. गण	स्वादि	सु	नु (श्नु)	ति	ते	सुनोति	सुनुते
षष्ठ गण	तुदादि	तुद्	अ (श)	ति	ते	तुदति	तुदते
सप्तम गण	रुधादि	रुध्	न (श्नम्)	ति	ते	रुणद्धि	रुन्धे
अष्टम गण	तनादि	तन्	उ	ति	ते	तनोति	तनुते
नवमगण	क्र्यादि	क्री	ना (श्ना)	ति	ते	क्रीणाति	क्रीणीते
दशमगण	चुरादि	चुर्	शप् (अय)	ति	ते	चोरयति	चोरयते

वाक्य में क्रिया का उपयोग करते समय हमें निम्नलिखित कतिपय बातों पर विशेष रूप से सावधानी बरतनी चाहिये—

क्रिया के प्रयोग करते समय ज्ञातव्य बातें—

धातु, काल, पुरुष, वचन, प्रत्यय, गण, विकरण, पद, सार्वधातुक, आर्धधातुक, सेट्, अनिट्, वेट् सकर्मक, अकर्मक और वाच्य।

इस पुस्तक के प्रथम भाग में १४८ वे पृष्ठ पर हमने वाच्य के संबन्ध में वहाँ के लिये उपयुक्त जानकारी संक्षेप में दी थी। अब हम उसी के संबन्ध में विशेष जानकारी अवसरप्राप्त होने के कारण पाठकों को सुविधा के लिये दे रहें हैं।

क्रिया का ऊपयोग करते समय हमेशा ध्यान रखना होगा कि पूर्वोक्त तीन वाच्यों में से किस वाच्य में धातु का रूप हमें बनाना है। प्रथम भाग में हम पढ़ आये हैं कि कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य ये तीन वाच्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होते हैं। इन्हीं को विद्वान् लोग कभी कभी कर्तरिप्रयोग, कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग भी कहते हैं। हिन्दी आदि भाषाओं में भी लोग इन प्रयोगों का उपयोग किया करते हैं। जैसे—मैं पुस्तक पढ़ता हूँ। [अहं पुस्तकं पठामि] यह कर्तरि प्रयोग (कर्तृवाच्य) में हुआ। मेरे द्वारा (मुझसे) पुस्तक पढ़ी जाती है (मया पुस्तकं पठ्यते) यह कर्मणि प्रयोग (कर्मवाच्य) में हुआ। तथा मुझसे सोया नहीं जाता (मया न सुप्यते), यह भावे प्रयोग (भाववाच्य) में हुआ। केवल सकर्मक धातुओं की क्रियाओं में कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य के प्रयोग हुआ करते हैं। और अकर्मक धातुओं की क्रियाओं में कर्तृवाच्य ओर भाववाच्य के प्रयोग हुआ करते हैं। अंग्रेजी भाषा में केवल कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य के प्रयोग बताते गये हैं, भाववाच्य के नहीं। अंग्रेजी के विद्वान् भाववाच्य में वाक्य बोल तो जाते हैं लेकिन समझ नहीं पाते कि वे भाववाच्य का प्रयोग कर रहे हैं, वे उसे भी कर्मवाच्य ही कह देते हैं। जैसे—ही वाज़ बॉर्न (He was born)। उनके यहाँ धातुओं (क्रियाओं) के सकर्मक अकर्मक का भी निर्णय नहीं हो पाया है। वे जाना (go) क्रिया को अकर्मक कह देते हैं, किन्तु जब उन्हें ही गोज़ होम (He goes home) वाक्य में 'होम' की पार्जिंग पूछी जाती है, तब वे चुप्पी साध लेते हैं या उसे 'एँडवर्बियल ऑब्जेक्ट' कह देते हैं, जिसका मतलब कुछ भी नहीं है। अपितु उसे वदतोव्याघात ही कहना होगा। ऐसी अनेक बातें हैं, जिनकी वजह से अंग्रेजी के व्याकरण को अपूर्ण कहा गया है। हिन्दी में कर्तरि प्रयोग को अधिक मुहावरेदार समझा जाता है। लेकिन संस्कृत में कर्मणि प्रयोग तथा भावेप्रयोग को अधिक मुहावरेदार समझा गया है।

दसों गणों के बारे में आवश्यक जानकारी करा दी गई। उन दसों गणों के धातुरूपों (क्रियाओं के रूपों) को आगे दिया जायगा। उनको रट लेने से संस्कृत के शास्त्रीय ग्रन्थों को समझने में तथा संस्कृत बोलने या लिखने में कठिनाई का अनुभव न होगा।

इसके आगे हम अपने पूर्व कथनानुसार प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में बतायेंगे, जिससे भाषा का चमत्कार समझ में आसकेगा। साथ ही साथ भाषा की प्रौढता, गंभीरता का भी थोड़ा बहुत आभास प्राप्त हो सकेगा।

इसी भाग के प्रारंभ में दो प्रकार की (मौलिक अथवा अप्रत्ययान्त और दूसरी यौगिक अथवा अप्रत्ययान्त) क्रियाओं का निर्देश हम कर चुके हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभीतक हमने पहले प्रकार की अर्थात् मौलिक (अप्रत्ययान्त) क्रियाओं के बारे में आवश्यक बातों को ध्यान में रखते हुए बताया।

अब हम दूसरी प्रकार की (यौगिक अथवा प्रत्ययान्त) क्रियाओं के बारे में उपपादन करने जा रहे हैं।

प्रत्ययान्त क्रियाएँ (धातुएँ)

इन क्रियाओं के मूलभूत धातुओं में विशेष प्रत्ययों को जोड़कर धातु के अर्थ के साथ-साथ अन्य अर्थ का भी ज्ञान हो जाता है। जैसे हिन्दी या अंग्रेजी या अन्य किसी भी भाषा में 'मैं गाता हूँ' के साथ यदि चाहने का अर्थ लगाना हो तो 'मैं गाना चाहता हूँ' इस वाक्य का प्रयोग करेंगे। इस वाक्य में दो धातुओं ('गाना' और 'चाहना') का प्रयोग करना पड़ा, परन्तु संस्कृत में 'गै' (गाना) धातु के अनन्तर 'सन्' प्रत्यय जोड़कर चाहने का अर्थ निकाल लिया जाता है। जैसे—'गै'—गाना, जिगास—गाने की इच्छा करना। अहं पठामि–मैं पढ़ता हूँ, अहं पिपठिषामि–मैं पढ़ना चाहता हूँ। सः गायति–वह गाता है, सः जिगासति–वह गाना चाहता है। 'जिगास' 'जिगमिष' 'पिपठिष' को 'सन्' प्रत्ययान्त धातु कहा जाता है। 'सन्' आदि प्रत्यय 'धातु' और 'तिङ्' प्रत्ययों के बीच में जोड़े जाते है, तब क्रिया का रूप बनता है।

प्रत्ययान्त क्रियाएँ (धातुएँ) चार प्रकार की होती हैं—

(१) णिजन्त—'णिच्' प्रत्यय में अन्त होनेवाली।
(२) सन्नन्त—'सन्' प्रत्यय में अन्त होनेवाली।
(३) यङन्त—'यङ्' प्रत्यय में अन्त होनेवाली।
(४) नामधातु—किसी प्रातिपदिक को धातु का रूप देकर बनायी जाने वाली।

णिजन्त (णिच्+अन्त) धातु (णिजन्तप्रक्रिया)

किसी धातु में प्रेरणा का अर्थ जब समाविष्ट करना हो तो 'णिच्' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है। जैसे—पढ़ना से पढ़ाना, करना से कराना, गाना से गवाना, नाचना से नचवाना, बजाना से बजवाना, बनाना से बनवाना आदि प्रेरणा के अर्थ है। शुद्ध धातु में जो कर्ता रहता है, वह प्रेरणार्थक धातु में स्वयं कार्य नहीं करता, अपितु दूसरे से कार्य कराता हैं। जैसे—'अध्यापक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गाता है' इस वाक्य में अध्यापक स्वयं गान क्रिया का कर्ता है अर्थात् गाने का काम करता है, किन्तु 'अध्यापक (छात्र से) गववाता है' इस वाक्य में अध्यापक स्वयं नहीं गाता किन्तु गाने का काम दूसरे (छात्र) से कराता है। 'णिच्' प्रत्यय लगकर अकर्मक धातु सकर्मक हो जाता है और उसके अर्थ में परिवर्तन भी हो जाता है। क्रिया को साक्षात् (स्वयं) करने वाला व्यक्ति 'कर्ता' कहा जाता है, और क्रिया (काम) करने की प्रेरणा देने वाले व्यक्ति को 'प्रयोजक कर्ता' कहते हैं। प्रयोजक (प्रेरणा देनेवाला) यद्यपि चेतन ही हो सकता है, क्योंकि उसमें ही प्रेरणा देने का सामर्थ्य हो सकता है, तथापि औपचारिक रीति से अचेतन को भी प्रयोजक मान लिया जाता है। जैसे— 'छात्रवृत्तिः वासयति' (छात्रवृत्ति = स्कालर्शिप निवास करवा रही है), कारीषोऽग्निः अध्यापयति (कण्डों की अग्नि पढ़ाती है)।

णिजन्त क्रिया का प्रयोग तभी होगा जब प्रयोजक कर्ता से प्रेरणा पाकर प्रयोज्य कर्ता (साक्षात् कर्ता) कार्य करे। प्रेरणा पाकर भी कार्य करना या न करना उसकी इच्छा पर निर्भर होता है। जब वह कार्य करने लगता है तभी 'गै—गापयति', 'नृत्—नर्तयति', 'वद्—वादयति', 'पच्—पाचयति', 'कृ—कारयति', ये प्रयोग किये जाते हैं। इसलिये गायन्तं प्रेरयति—गापयति, नृत्यन्तं प्रेरयति—नर्तयति, वदन्तं प्रेरयति—वादयति, पचन्तं प्रेरयति-पाचयति, कुर्वन्तं प्रेरयति-कारयति—इस प्रकार णिजन्तों का विग्रह किया जाता है। प्रेरणा पांच प्रकार की होती है—प्रेषण, अध्येषण, अनुमति, उपदेश, अनुग्रह।

णिजन्त धातु के रूप चुरादिगण की धातुओं के समान चलते हैं, धातु और तिङ् प्रत्ययों के बीच 'अय्' जोड दिया जाता है। चुरादिगण के धातुरूप, प्रेरणार्थक में भी वैसे ही होते हैं जैसे अपने शुद्ध रूप में।

छात्रों की ज्ञान—वृद्धि के लिये हम अत्यन्त प्रसिद्ध कतिपय धातुओं के णिजन्तरूप, मूल धातुओं के साथ लट् और लुङ् में दे रहे हैं।

धातु	शुद्धरूप, लट्	णिजन्त (प्रेरणार्थक) रूप
१ बुध्	बोधति	बोधयति
वद्	वदति = बोलता है	वादयति = बुलवाता है
२ अद्	अत्ति	आदयति
३ हु	जुहोति	हावयति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४ दिव्	दीव्यति	देवयति
५ सु	सुनोति	सावयति
६ तुद्	तुदति = दबाता, कष्ट पहुँचाता है	तोदयति = दबवाता है, कष्ट पहुँचवाता है
७ रुध्	रुणद्धि	रोधयति
८ तन्	तनोति	तानयति
९ क्री	क्रीणाति	क्राययति
१० चुर्	चोरयति	चोरयति

प्रायः आकारान्त (उसी प्रकार ए, ऐ, ओ में अन्त होने वाली धातुएँ, जो आकारान्त हो जाती हैं) धातुओं के बाद अय् के पूर्व 'प्' जोड़ते हैं। जैसे—दा से दापयति, स्ना से स्नापयति, गै से गापयति। मी, दी, जि, क्री, में भी 'प्' जोड़ दिया जाता है और इकार को आकार कर दिया जाता है। जैसे—मापयति, दापयति, जापयति, क्रापयति। "जौ गमिरबोधने"—(२।४।४६)

'इण्' (जाना) से गमयति बनता है, क्योंकि इण् धातु में णिच् जुड़ने पर इण् के स्थान में 'गम्' आदेश हो जाता है। किन्तु जहां बोध कराना अथवा समझाना अर्थ हो तो वहां इण् के स्थान में 'गम्' आदेश नहीं होता। जैसे—प्रति+इण्—प्रत्याययति। अधि + इङ् से अध्यापयति। चि-चापयति-ते। जागृ—जागरयति। दुष्—दूषयति-ते, दोषयति—ते। प्री—प्रीणयति। रुह्—रोहयति—ते, रोपयति-ते। वा—वापयति, वाजयति। हन्—घातयति। णिजन्त (प्रेरणार्थक) धातुओं के रूप चुरादिगणीय धातुओं के तुल्य दसों लकारों, तीनों वाच्यों (कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य, भाववाच्य) और दोनों पदों (परस्मैपद, आत्मनेपद) में चलाये जाते हैं।

सन्नन्त क्रियाएँ (धातु)

(सन्नन्त प्रक्रिया)

किसी कार्य के करने की इच्छा को बताने के लिये उस कार्य के वाचक धातु से 'सन्' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है। जैसे—मैं नाचना चाहती हूँ, इस वाक्य में नाचने के अर्थ की धातु (नृत्) के अनन्तर 'सन्' प्रत्यय जोड़ने से 'नाचना चाहती हूँ' यह अर्थ निकल आयेगा। जो कर्त्ता नाचने की क्रिया का होगा वही इच्छा करने वाला होना चाहिए। यदि वह कर्त्ता न होकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई दूसरा ही कर्ता होगा तो 'सन्' प्रत्यय नहीं जुड़ेगा। जैसे—'मैं चाहता हूँ कि वह गाए', इस वाक्य में इच्छा करने वाला 'मैं' हूँ और गाने वाला 'वह' है, ऐसी परिस्थिति में 'सन्' प्रत्यय नहीं जोड़ा जायगा। किन्तु 'मैं उसे पढ़ाना चाहता हूँ' इस वाक्य में 'सन्' लग सकता है क्योंकि वहाँ 'पढ़ाना' और चाहना दोनों क्रियाओं का कर्त्ता एक ही है।

प्रेरणार्थक (णिजन्त) धातु के अनन्तर भी 'सन्' लगाया जा सकता है जब कि एक ही व्यक्ति प्रेरणा करने वाला और इच्छा करने वाला हो।

'सन्' प्रत्यय लगाना या न लगाना अपनी इच्छा पर निर्भर है। यदि न लगाना चाहें तो अपनी इच्छा को 'इष्' 'अभिलष्' आदि इच्छा का अर्थ बताने वाली क्रियाओं के प्रयोग से भी प्रकट किया जा सकता है। जैसे 'मैं नाचना चाहती हूँ' इसका अनुवाद 'अहं निनर्तिषामि' करें या 'अहं नर्तितुम् इच्छामि अथवा अहं नर्त्तितुम् अभिलषामि' इस प्रकार करें।

जिस कार्य की इच्छा की जाती है, वह इच्छा करने की क्रिया का कर्मस्वरूप होना चाहिए, और कोई कारक नहीं। जैसे 'मैं पढ़ना चाहता हूँ' इस वाक्य में 'चाहता हूँ' क्रिया का 'पढ़ना' कर्म है। तभी 'सन्' प्रत्यय लगाकर 'अहं पिपठिषामि वाक्यप्रयोग किया जा सकता है। किन्तु 'मैं चाहता हूँ कि मेरे पढ़ने से वह प्रसन्न हो'—इस प्रकार का वाक्य हो तो वहाँ सन् प्रत्यय का प्रयोग नहीं होगा क्योंकि 'पढ़ने से' करण कारक है, कर्म कारक नहीं।

इस प्रकार सन्नन्त धातुओं के रूप धातु के पद के अनुसार दसों लकारों में तैयार किये जाते हैं। छात्रों की ज्ञानवृद्धि के लिये सन्नन्त धातुओं से निर्माण किये कतिपय धातुओं के रूप नीचे दिये जा रहे हैं—

पठ्+सन् = पिपठिष (पिपठिषति) = पढ़ना चाहता है।

गृह+सन् = जिघृक्ष (जिघृक्षति) = लेना चाहता है।

प्रच्छ+सन् = पिपृच्छिष (पिपृच्छिषति) = पूछना चाहता है।

कॄ+सन् = चिकरिष (चिकरिषति) = बिखेरना चाहता है।

कृ+सन् = चिकीर्ष (चिकीर्षति) = करना चाहता है।

गॄ+सन् = जिगरिष (जिगरिषति) = बोलना चाहता है।

हन्+सन् = जिघांस (जिघांसति) = मारना चाहता है।

गम्+सन् = जिगमिष (जिगमिषति) = जाना चाहता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यङन्त क्रियाएँ (धातु)

यङन्त-प्रक्रिया

हलादि (व्यञ्जन से आरम्भ होने वाली) किसी भी एकाच् (एक स्वर वाली) धातु के अनन्तर 'क्रिया को बार-बार करने अथवा क्रिया को खूब करने का ज्ञान कराने के लिये 'यङ' प्रत्यय लगाया जाता है। यह प्रत्यय दशम गण (चुरादि) की (सूच् सूत्र, मूत्र, इत्यादि कुछ धातुओं को छोड़कर) किसी भी धातु के अनन्तर नहीं लगता। केवल प्रथम नौ गणों की धातुओं के पश्चात् यह लगाया जाता है। जैसे—'देदीयते (बार बार या खूब देता है) बोबुद्धयते (बार-बार या खूब समझता है) नेनीयते (बार-बार या खूब ले जाता है)

इस प्रकार यङन्त धातुओं के रूप आत्मनेपद में दसों लकारों में चलते हैं, परस्मैपद में नहीं। यङन्त धातुओं के रूप इस प्रकार हैं—

बुध्+यङ् = बोबुद्ध्य (बोबुद्ध्यते)
व्रज्+यङ् = वाव्रज्य (वाव्रज्यते)
लुप्+यङ् = लोलुप्य (लोलुप्यते)
जप्+यङ् = जाजप्य (जाजप्यते)

वैसे तो क्रियासमभिहार (क्रिया का बार बार होना) में ही 'यङ्' प्रत्यय किया जाता है। जैसे—गत्यर्थक धातुओं में कौटिल्य के अर्थ में यङ् प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे कुटिलं व्रजति इति वाव्रज्यते। यहाँ बार बार या अधिक अर्थ नहीं है।

लुप्, सद्, चर्, जप्, जभ्, दह्, दश्, द्द, धातुओं के आगे गर्हित अर्थ में 'यङ्' पत्यय लगाते हैं। जैसे गर्हितं लुम्पति इति लोलुप्यते।

जप्, जभ्, दह्, दश्, भञ्ज्, पश्, धातुओं में 'यङ्' प्रत्यय के जुड़ने पर अभ्यास में 'न' का आगम होता है। जैसे गर्हितं जपति इति जञ्जप्यते। 'गॄ' धातु में 'यङ्' प्रत्यय के जुड़ने पर रेफ (ऋ) के स्थान में लकार हो जाता है। जैसे—गर्हितं गरति इति जेगिल्यते।

नाम धातु

किसी सुबन्त (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषणादि) के अनन्तर प्रत्यय जोड़कर उसे धातु बना लेते हैं। तब उसे नामधातु कहते हैं। नाम का अर्थ है संज्ञा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस कारण यही नाम दिया गया है। नामधातुओं के विशेष-विशेष अर्थ होते हैं। जैसे पुत्रीयति (पु+क्यच्) पुत्र की इच्छा करता है। कृष्णति (कृष्ण+क्विप्) कृष्ण के समान आचरण करता है। लोहितायते (लोहित+क्यच्) लाल हो जाता है। मुण्डयति (मुण्ड+णिच्) मूँडता है।

नामधातुओं के रूप दसों लकारों में चल सकते हैं, तथापि प्रायः उनका प्रयोग वर्तमान काल में ही किया जाता है।

मकारान्त शब्द के अनन्तर तथा अव्यय के अनन्तर 'क्यच्' प्रत्यय नहीं जोड़ा जाता। जैसे पुत्रम् आत्मनः इच्छति = पुत्रीयति (पुत्र+क्यच्) अपने लिये पुत्र की इच्छा करता है। गङ्गाम् आत्मनः इच्छति = गङ्गीयति (गङ्गा + क्यच्) अपने लिये गङ्गा की इच्छा करता है। इसी प्रकार कवि + क्यच् = कवीयति, नदी + क्यच् = नदीयति, विष्णु + क्यच् = विष्णूयति वधू + क्यच् = वधूयति कर्तृ + क्यच् = कर्त्रीयति गो + क्यच=गव्यति, नौ + क्यच् = नाव्यति, राजन् + क्यच् = राजीयति।

क्यच् प्रत्ययान्त धातुओं के रूप परस्मैपद में सब लकारों में चलते हैं।

क्यङ् प्रत्यय

किसी सुबन्त के पश्चात् 'जैसा वह करता है वैसा ही यह करता है' इस अर्थ को बतलाने के लिये 'क्यङ्' प्रत्यय लगाकर नामधातु बनाये जाते हैं और उसके रूप आत्मनेपद में चलते हैं। इस प्रत्यय के पूर्व सुबन्त का 'अ' दीर्घ कर दिया जाता है और यदि दीर्घ 'आ' हो तो वह वैसा ही रहता है। जैसे—कृष्ण इव आचरति = कृष्णायते, कृष्ण के समान आचरण करता है। ओजस्वी इव आचरति = ओजायते, ओजस्वी के समान आचरण करता है। गर्दभ इव आचरति = गर्दभायते, गर्दभ के समान आचरण करता है, अप्सरा इव आचरति = अप्सरायते अप्सरा के समान आचरण करती है, विद्वान् इव आचरति = विद्वायते अथवा विद्वस्यते, विद्वान् के समान आचरण करता है।

स्त्री प्रत्ययान्त शब्द का (यदि वह 'क' में अन्त न होता हो) स्त्री प्रत्यय हटाकर बचे हुए शब्द से 'क्यङ्' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है। जैसे कुमारी इव आचरति = कुमारायते कुमारी की तरह आचरण करता है। युवतिरिव आचरति = युवायते, युवती के समान आचरण करता है। किन्तु 'क' में अन्त होने वाले शब्द से स्त्री प्रत्यय का लोप नहीं होता। जैसे पाचिका इव आचरति पाचिकायते, पाचिका के समान आचरण करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्मभूत रोमन्थ और तपस् शब्दों के अनन्तर वर्तन और चरण अर्थ में क्यङ प्रत्यय जुड़ता है। जैसे रोमन्थं वर्तयति इति रोमन्थायते, जुगाली करती है। तपश्चरति इति तपस्यति, तप का आचरण करता है।

यङ्लुगन्तप्रक्रिया

संस्कृत के व्याकरण में बताई गई अन्य प्रक्रियाओं के समान् 'यङ्-लुगन्त' प्रक्रिया को भी बतलाया गया है ! इस प्रक्रिया में यङन्त प्रक्रिया की तरह किए गये 'यङ्' प्रत्यय का 'लुक्' (लोप) किया जाता है किन्तु अर्थ समान ही रहता है। क्रियासमभिव्याहार (बार-बार और अधिक) आदि जो यङन्त के अर्थ हैं वे यङ्लुगन्त के भी समझे जाते हैं जैसे—यङन्त में 'भू' धातु से 'बोभूयते' और यङ्लुगन्त में उसी धातु से 'बोभवीति' रूप बनता है। दोनों के अर्थों में कुछ भेद नहीं।

यङ्लुगन्त में परस्मैपद ही होता है, आत्मनेपद नहीं। केवल 'तेतिक्ते' एक मात्र आत्मनेपद का रूप उपलब्ध होता है, इसके सिवाय और कोई भी रूप यङ्लुगन्त में उपलब्ध नहीं होता।

यङ्लुगन्त धातुओं के रूप प्रायः कठिन होते हैं और उनके प्रयोग भी कम हुआ करते हैं। छात्रों की ज्ञानवृद्धि के लए यङ्लुगन्त के कतिपय रूप दिये जारहे हैं। जैसे—

(दा) दादेति—दादाति = बार-बार देता है।

(प्रच्छ) प्राप्रच्छीति—प्राप्रष्टि = बार-बार पूछता है।

(पा) पापेति— पापाति = बार-बार पीता है।

(कृ) चर्करीति—चरिकरीति-चरीकरीति-चर्कर्ति—चरिकर्ति—चरीकर्ति = बार बार करता है।

(नृत्)नर्नृतीति-नरिनृतीति-नरीनृतीति-नर्नर्ति-नरिनर्ति नरीनर्ति = बार-बार नाचता है।

(मुद्) मोमुदीति—मोमोत्ति = बार-बार प्रसन्न होता है।

(तॄ) तातरीति—तातर्ति = बार-बार तैरता है।

(वृत्) वर्वृतीति—वरिवृतीति—वरीवृतीति—वर्वर्ति-वरिवर्ति—वरीवर्त्ति = बार बार होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावकर्मप्रक्रिया

"लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः" सूत्र के द्वारा लकारों के तीन अर्थ 'कर्ता, कर्म और भाव' पीछे बताये जा चुके हैं। सकर्मक धातुओं से लकार 'कर्ता' और 'कर्म' अर्थ में तथा अकर्मक धातुओं से लकार 'कर्ता और भाव' अर्थ में हुआ करते हैं। इस प्रक्रिया में अकर्मक धातु से भाव और सकर्मक धातु से कर्म अर्थ में लकारों का होना बताया जायगा। इसीलिये इस प्रक्रिया को 'भाव-कर्मप्रक्रिया' नाम दिया गया है। कर्तरि प्रयोग की अपेक्षा कर्मणि प्रयोग अधिक सुन्दर तथा सरल होते हैं।

पद-प्रयोग

भाववाच्य और कर्मवाच्य में धातु से कौनसा पद करना चाहिये? इस प्रश्न के समाधानार्थ "भावकर्मणोः" (१।३।१३) सूत्र कहता है कि भाव और कर्म में किये गये लकार के स्थान पर आत्मने पद के प्रत्यय करने चाहिये। कर्मवाच्य और भाववाच्य में परस्मैपदा का प्रयोग कभी नहीं होता है। धातु चाहे परस्मैपदी हो या आत्मनेपदी अथवा उभयपदी भी क्यों न हो। भाववाच्य और कर्मवाच्य में आत्मनेपद का ही प्रयोग होगा।

भाववाच्य और कर्मवाच्य का अर्थ

धातु के अर्थ क्रिया को 'भाव' कहते हैं। भावार्थक लकार स्पष्टता के लिये उसी धात्वर्थ का अनुवाद करता है। भाववाच्य में लकार की युष्मद् और अस्मद् के साथ समानाधिकरणता नहीं होती, इसलिये प्रथमपुरुष का प्रयोग होता है। भाव 'द्रव्य' नहीं होता है, उसमें द्वित्व आदि की प्रतीति नहीं होती। अतः भाववाच्य में द्विवचन और बहुवचन नहीं होते। केवल एकवचन का ही प्रयोग होता है। एकवचन का प्रयोग तो अनैमित्तिक तथा औत्सर्गिक सिद्ध है। जैसे—त्वया भूयते, मया भूयते, अन्यैः भूयते, त्वया मया अन्यैश्च भूयते इत्यादि। यहाँ 'युष्मद्, अस्मद्, या अन्य कर्ता तो हैं, किन्तु लकार से वे उक्त नहीं हैं।

अब हम कतिपय प्रसिद्ध धातुओं के कर्म तथा भाववाच्य के रूप लट् और लुङ् के प्र० पुरुष के एकवचन में दे रहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लट् लुङ्

अस्—भूयते = हुआ जाता है। अभावि
अर्च्—अर्च्यते = पूजा जाता है। आर्चि
आप्—आप्यते = पाया जाता है। आपि
आस्—आस्यते = बैठा जाता है। आसि
इङ्—अधीयते = पढा जाता है। अध्यगायि—अध्यायि
इष्—इष्यते = चाहा जाता है। ऐषि
कथ कथ्यते = कहा जाता है। अकथि
कृ—क्रियते = किया जाता है। अकारि
कृष्—कृष्यते = जोता जाता है। अकर्षि
क्री—क्रीयते = खरीदा जाता है। अक्रायि
वि + क्री—विक्रीयते = बेचा जाता है। व्यक्रायि
क्षिप्—क्षिप्यते = फेंका जाता है। अक्षेपि
खाद्—खाद्यते = खाया जाता है। अखादि
गण्—गण्यते = गिना जाता है। अगणि
गम्—गम्यते = जाया जाता है। अगामि
गै—गीयते = गाया जाता है। अगायि
ग्रह्—गृह्यते = ग्रहण किया जाता है। अग्राहि
घ्रा—घ्रायते = सूंघा जाता है। अघ्रायि
आ + चर्—आचर्यते = आचरण किया जाता है। आचारि
चित्—चिन्त्यते = सोचा जाता है। अचिन्ति
चुर्—चोर्यते = चुराया जाता है। अचोरि
छिद्—छिद्यते = काटा जाता है। अच्छेदि
जृ—जीर्यते = जीर्ण हुआ जाता है। अजारि
ज्ञा—ज्ञायते = जाना जाता है। अज्ञायि
तड्—ताड्यते = पीटा जाता है। अताडि
तन्—तन्यते = फैलाया जाता है। अतानि
तॄ—तीर्यते = पार किया जाता है। अतारि
त्यज्—त्यज्यते = छोड़ा जाता है। अत्याजि
त्रस्—त्रस्यते = डराया जाता है। अत्रासि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दह्—दह्यते = जलाया जाता है। अदाहि
दा—दीयते = दिया जाता है। अदायि
दुह—दुह्यते = दोहा जाता है। अदोहि
आ + दृङ्—आद्रियते = आदर किया जाता है। आदारि
दृश्—दृश्यते = देखा जाता है। अदर्शि
द्रुह—द्रुह्यते = द्रोह किया जाता है। अद्रोहि
ध्मा—ध्मायते = फूँका जाता है। अध्मायि
ध्यै—ध्यायते = ध्यान किया जाता है। अध्यायि
नम्—नम्यते = नमस्कार किया जाता है। अनामि
निन्द्—निन्द्यते = निन्दा किया जाता है। अनिन्दि
नी—नीयते = ले जाया जाता है। अनायि
नृत्—नृत्यते = नाचा जाता है। अनर्ति
पच्—पच्यते = पकाया जाता है। अपाचि
पठ्—पठ्यते = पढा जाता है। अपाठि
पा—पीयते = पिया जाता है। अपायि
पा—पायते = रक्षा किया जाता है। अपायि
पाल्—पाल्यते = पाला जाता है। अपालि
पुष्—पुष्यते = पुष्ट किया जाता है। अपोषि
पू—पूयते = पवित्र किया जाता है। अपावि
पूज्—पूज्यते = पूजा जाता है। अपूजि
पॄ—पूर्यते = पूर्ण किया जाता है। अपारि
प्रच्छ—पृच्छ्यते = पूछा जाता है। अप्रच्छि
बन्ध्—बध्यते = बांधा जाता है। अबन्धि
ब्रू—उच्यते = कहा जाता है। अवाचि
भक्ष्—भक्ष्यते = खाया जाता है। अभक्षि
भण्—भण्यते = कहा जाता है। अभाणि
भाष्—भाष्यते = कहा जाता है। अभाषि
भिद्—भिद्यते = तोडा जाता है। अभेदि
भू—भूयते = हुआ जाता है। अभावि
भ्रंश्—भ्रश्यते = नीचे गिराया जाता है। अभ्रंशि
मन्थ्—मथ्यते = मथा जाता है। अमन्थि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मृज्—मृज्यते = शुद्ध किया जाता है। अमार्जि
मा—मीयते = मापा जाता है। अमायि
अनु + मा—अनुमीयते = अनुमान किया जाता है। अन्वमायि
यज्—इज्यते = पूजा, याग किया जाता है। अयाजि
याच्—याच्यते = मांगा जाता है। अयाचि
युज्—युज्यते = जोडा जाता है। अयोजि
आ + रभ्—आरभ्यते = आरंभ किया जाता है। आरम्भि
रुद्—रुद्यते = रोया जाता है। अरोदि
रुध्—रुध्यते = रोका जाता है। अरोधि
आ + रुह्—आरुह्यते = चढा जाता है। आरोहि
लभ्—लभ्यते = पाया जाता है। अलम्भि, अलाभि
लिख्—लिख्यते = लिखा जाता है। अलेखि
लिह्—लिह्यते = चाटा जाता है। अलेहि
लू—लूयते = काटा जाता है। अलावि
वन्द्—वन्द्यते = प्रणाम किया जाता है। अवन्दि
वप—उप्यते = बोया जाता है। अवापि
वर्ण—वर्ण्यते = वर्णन किया जाता है। अवर्णि
वस्—उष्यते = निवास किया जाता है। अवासि
वह—उह्यते = उठाया जाता है। अवाहि
उप + विश्—उपविश्यते = बैठा जाता है। उपावेशि
व्यध्-विध्यते = बींधा जाता है। अव्याधि
शास्—शिष्यते = सिखाया जाता है। अशासि,
आ+शास्-आशास्यते = आशा किया जाता है। आशासि
शी—शय्यते = सोया जाता है। अशायि
श्रु—श्रूयते = सुना जाता है। अश्रावि
सिच्—सिच्यते = सींचा जाता है। असेचि
अनु + सृ—अनुस्रियते = अनुसरण किया जाता है। अन्वसारि
स्तु—स्तूयते = स्तुति किया जाता है। अस्तावि
स्था—स्थीयते = ठहरा जाता है। अस्थायि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्ना—स्नायते = नहाया जाता है। अस्नायि
स्मृ—स्मर्यते = स्मरण किय ाजाता है। अस्मारि
स्रंस्—स्रस्यते = नीचे गिराया जाता है। अस्रंसि
स्वप्—सुप्यते = सोया जाता है। अस्वापि
हन्—हन्यते = मारा जाता है। अघानि
हा—हीयते = त्यागा जाता है। अहायि
हु—हूयते = हवन किया जाता है। अहावि
हृ—ह्रियते = हरण किया जाता है। अहारि
ह्री—ह्रीयते = लज्जित हुआ जाता है। अह्रायि

		कर्तृवाच्य			कर्मवाच्य व भाववाच्य
सः,	सा,	नर्तकः—नृत्यति	तेन,	तया,	नर्तकेन—नृत्यते
,,	,,	गायकः—गायति	,,	,,	गायकेन—गीयते
,,	,,	अभिनेता—अभिनयति	,,	,,	अभिनेत्रा-अभिनीयते
,,	,,	वादकः—वादयति	,,	,,	वादकेन—वाद्यते
,,	,,	पाठकः—पठति	,,	,,	पाठकेन—पठ्यते
,,	,,	अध्यापकः—पाठयति	,,	,,	अध्यापकेन—पाठ्यते
,,	,,	जनकः—स्नाति	,,	,,	जनकेन—स्नायते
,,	,,	शिष्यः—गुरुम् अनुसरति	,,	,,	शिष्येण गुरुः-अनुस्रियते
,,	,,	बालिका—ह्रीणाति	,,	,,	बालिकया—ह्रीयते
,,	,,	गुरुः-तिष्ठति	,,	,,	गुरुणा—स्थीयते

कर्मवाच्य में द्विकर्मक धातुओं के किस कर्म में लकार होगा

पीछे बताया जा चुका है कि 'दुह्' 'याच्' आदि कतिपय धातु द्विकर्मक होते हैं। उनके किस कर्म में लकार करना चाहिये ? उक्त प्रश्न के समाधान में कहा जाता है—

"गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नी-हृ-कृष्-वहाम्" दुह् आदि धातुओं के गौण (अप्रधान) कर्म में लकार किये जाते हैं। और 'नी, हृ, कृष् और वह्' धातुओं के प्रधान कर्म में लकार किये जाते हैं। जिस कर्म में लकार होगा वह कर्म उक्त होगा, तब उसमें प्रथमा विभक्ति करनी होगी और दूसरा कर्म उक्त न होने से जैसा है, वैसा ही रहेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्तृवाच्य—(सः) गां दोग्धि पयः = वह गाय का दूध दुहता है।
कर्मवाच्य—(तेन) गौः दुह्यते पयः।
कर्तृवाच्य—(सः) बलिं याचते वसुधाम् = वह बलि से भूमि मांगता है।
कर्मवाच्य—(तेन) बलिः याच्यते वसुधाम्।
कर्तृवाच्य—(सः) तण्डुलान् ओदनं पचति=वह चावलों से भात पकाता है।
कर्मवाच्य—(तेन) तण्डुलाः ओदनं पच्यन्ते।
कर्तृवाच्य-(राजा) गर्गान् शतं दण्डयति=राजा गर्गोंपर सौ रुपिया दण्ड करता है।
कर्मवाच्य—(राज्ञा) गर्गाः शतं दण्ड्यन्ते।
कर्तृवाच्य—(सः) व्रजम् अवरुणद्धि गाम् = वह गाय को गोठे में रोकता है।
कर्मवाच्य—(तेन) व्रजः अवरुध्यते गाम्।
कर्तृवाच्य—(सः) माणवकं पन्थानं पृच्छति = वह बालक से मार्ग पूछता है।
कर्मवाच्य—(तेन) माणवकः पन्थानं पृच्छ्यते।
कर्तृवाच्य—(सः) वृक्षम् अवचिनोति फलानि=वह पेड़ से फलों को चुनता है।
कर्मवाच्य—(तेन) वृक्षः अवचीयते फलानि।
कर्तृवाच्य—(गुरुः) माणवकं धर्मं ब्रूते=गुरु बालक को धर्म बता रहे हैं।
कर्मवाच्य—(गुरुणा) माणवकः धर्मम् उच्यते।
कर्तृवाच्य-(गुरुः) माणवकं धर्मं शास्ति=गुरु बालक को धर्म का उपदेश दे रहे हैं।
कर्मवाच्य—(गुरुणा) माणवकः धर्मं शिष्यते।
कर्तृवाच्य—(सः) शतं जयति देवदत्तम् = वह देवदत्त से सौ जीतता है।
कर्मवाच्य—(तेन) शतं जीयते देवदत्तः।
कर्तृवाच्य—(सः) सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति=वह अमृत के लिये क्षीरसमुद्र को मथता है।
कर्मवाच्य—(तेन) सुधां क्षीरनिधिः मथ्यते।
कर्तृवाच्य—(चौरः) देवदत्तं शतं मुष्णाति=चौर देवदत्त के सौ रुपये चुराता है।
कर्मवाच्य—(चौरेण) देवदत्तः शतं मुष्यते।

प्रधान कर्म में प्रथमा

कर्तरि—सः ग्रामम् अजां नयति = वह बकरी को गांव ले जाता है।

कर्मणि—तेन ग्रामम् अजा नीयते।

कर्तरि—सः ग्रामम् अजां हरति = वह गांव में बकरी का अपहरण करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्मणि—तेन ग्रामम् अजा अपह्रियते ।

कर्तरि—सः ग्रामम् अजां कर्षति = वह गांव में बकरी को खींच ले जाता है ।

कर्मणि—तेन ग्रामम् अजा कृष्यते ।

कर्तरि—सः ग्रामम् अजां वहति = वह गांव में बकरी को ढो ले जाता है ।

कर्मणि—तेन ग्रामम् अजा उह्यते ।

कर्म-कर्तृ-प्रक्रिया

प्रथम भाग के पृ० ४९ पर 'कारक विचार' करते समय कारकों का स्वरूप-परिचय दिया जा चुका है । अब हम आवश्यकतानुसार कर्तृकारक के सम्बन्ध में कुछ अधिक बताना चाह रहे हैं । महर्षि पाणिनि ने 'स्वतन्त्रः कर्ता' सूत्र के द्वारा कर्ताकारक का परिचय दिया है । जैसे अन्य कारक, कर्ता से प्रेरित होकर क्रिया का निष्पादन करते हैं, वैसे कर्ता अन्य कारकों से प्रेरित होकर क्रिया का निष्पादन नहीं करता, बल्कि स्वतन्त्ररूप से क्रिया का निष्पादन करता है । अन्य कारकों की प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति कर्ता के अधीन होती है, लेकिन कर्ता स्वतंत्र होता है । अन्य कारकों के न होनेपर भी कर्ता की प्रवृत्ति होती देखी जाती है । जैसे—कन्या लज्जते, शिशुः वर्धते इत्यादि । किन्तु कर्ता के अभाव में अन्य कारकों की प्रवृत्ति नहीं होती । इसलिये कर्ता को 'स्वतन्त्र' कहते हैं ।

बोलनेवाले की इच्छा के अधीन कारक होते हैं 'विवक्षातः कारकाणि भवन्ति' । पाकक्रिया में जब पत्नी की स्वतन्त्रता—प्रधानता विवक्षित होगी तो 'पत्नी पचति' वाक्य में 'पत्नी' की कर्तृसंज्ञा (कर्तृकारक) होगी । जब स्थाली' (चरुआ—बटलोई) की प्रधानता (स्वतंत्रता) विवक्षित होगी तब 'स्थाली पचति' में 'स्थाली' की कर्तृसंज्ञा (कर्तृकारक) होगी । इसी तरह 'अग्निः पचति, काष्ठानि पचन्ति' आदि में समझना चाहिये । क्योंकि कभी कभी वक्ता प्रयोजनवशात् कर्म, करण, अधिकरण आदि कारकों को भी कर्ता की तरह प्रयुक्त करता है । जैसे—कैंची काट रही है, छुरी चल रही है, कपड़ा फट रहा है, स्थाली पकाती है, फल पकता है, इन वाक्यों में वस्तुतः कोई कर्म तो कोई करण और कोई अधिकरण है, किन्तु वक्ता ने इनको कर्ता के रूप में कहना चाहा है, इसलिये इनका करणादिरूपों में प्रयोग नहीं किया गया,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु कर्ता के रूप में प्रयोग किया गया है। ऐसे प्रयोग सरलता की दृष्टि से किये जाते हैं। 'कर्तरिका छिनत्ति'–कैंची काट रही है में वक्ता को कैंची की धार तेज होने से काटने में सौकर्य का सूचित करना अभीष्ट है। 'स्थाली पचति' बटलोई पकाती है में बटलोई का पेंदा भारी न होने से पाक में बहुत आसानी सूचित हो रही है। करण या अधिकरण आदि की कर्ता के रूप में विवक्षा करने पर कोई विशेष परिवर्तन नहीं है, उनको कर्ता मानकर उनमें लकार कर दिये जाते हैं। किन्तु जब कर्म को कर्ता बनाया जाता है, तब उसमें कहीं कहीं विशेष परिवर्तन होता है। उसे बताने के लिये ही यह 'कर्म–कर्तृप्रक्रिया' रची गई है। जब बोलनेवाले को कर्म ही कर्ता के रूप में (कर्तृत्वेन) बताना इष्ट हो तो सकर्मक धातु भी प्रायः अकर्मक हो जाता है। अकर्मक होने के कारण उन धातुओं से लकार, कर्ता और भाव अर्थ में किये जाते हैं। जैसे–'काष्ठं भिद्यते'–लकड़ी अपने आप टूटती है। यदि कोई कहे कि मोहन लकड़ी तोड़ता है, तब दूसरा कहता है कि वह क्या तोड़ता है, लकड़ी तो स्वयं ही टूटती जा रही है। 'भिद्' धातु जो सकर्मक माना गया है अब वह कर्म के कर्ता बन जाने से अकर्मक हो गया है। सकर्मक अवस्था में उसका अर्थ–'तोड़ना' होता था, किन्तु अब उसका अर्थ–'टूटना' हो गया।

कर्मकर्तृ प्रक्रिया का एक सुन्दर श्लोक मुण्डकोपनिषद् (२।८।) में आया है।

"भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे पराऽवरे॥'

परावर ब्रह्म के साक्षात्कार कर लेने पर हृदय की गांठ खुल जाती है, सब संशय नष्ट हो जाते हैं, तथा इसके समस्त कर्म क्षीण हो जाते हैं।

लकारार्थप्रक्रिया

पीछे तिङन्त प्रकरण में 'वर्तमाने लट्' आदि सूत्रों के द्वारा लकारों के सामान्य अर्थ बताये गये। अब हम उनके कतिपय विशेष अर्थ बताएंगे।

अनद्यतन भूतकाल का अपवाद

"अभिज्ञावचने लृट्"—(३।२।११२) स्मृतिबोधक पद समीप हो तो अनद्यतन भूतकाल में धातु से लृट लकार होता है। 'अभिज्ञा' का अर्थ है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'स्मृति'। सा उच्यते अनेन इति अभिज्ञावचनम्, तस्मिन्। अनद्यतन भूतकाल में 'अनद्यतने लङ्' सूत्र से 'लङ्' लकार करने को बताया गया है, किन्तु यह उपर्युक्त सूत्र उसका 'अपवाद' करता है। जैसे—'स्मरसि कृष्ण! गोकुले वत्स्यामः।' हे कृष्ण! तुम्हें याद है कि हम गोकुल में रहते थे। इस वाक्य में 'स्मरसि' यह स्मृति बोधक पद है, इस कारण 'अनद्यतने लङ्' सूत्र से 'लङ्' प्राप्त था किन्तु उसका बाधकर अनद्यतनभूतकाल में 'लट्' किया गया है।

शिशुपालवध (माघ) काव्य में इसका उदाहरण—

"स्मरत्यदो दाशरथिर्भवन् भवानमुं वनान्ताद्वनितापहारिणम्।
पयोधिमाविद्धचलज्जलाविलं विलङ्घ्य लङ्कां निकषा हनिष्यति"॥

आप दशरथ के पुत्र राम बनकर समुद्र पर पुल बांध, उसके जल को अस्थिर तथा गदला कर उस पार गये थे, वहाँ पहुँच कर लङ्कापुरी के निकट, वन में से जानकी जी को अपहरण करने वाले उस रावण को आपने मारा था। क्या यह बात आपको स्मरण है?। ऐसे स्थलों पर 'लट्' को देखकर भविष्यत् काल का अर्थ नहीं करना चाहिये। संस्कृत की यह अपनी पद्धति है।

लट् का अपवाद

'न यदि'—(३।२।११३) किन्तु 'यद्' शब्द के रहने पर, स्मृतिबोधक पद के समीप होने पर भी अनद्यतन भूतकाल के अर्थ में उपर्युक्त सूत्र से 'लट्' नहीं होता। किन्तु 'अनद्यतने लङ्' किया जाता है। जैसे—'अभिजानासि कृष्ण! यद् वने अभुञ्ज्महि'—कृष्ण! क्या तुम्हें याद है कि हमने वन में खाया था। यहाँ पर 'यद्' शब्द का प्रयोग है इसलिये 'अभिजानासि' इस स्मृति बोधक उपपद के रहने पर भी प्राप्त 'लट्' का उपर्युक्त सूत्र से बाध हो जाता है। और 'अनद्यतने लङ्' सूत्र से 'लङ्' लकार ही हो जाता है। 'अभुञ्ज्महि'—भुज्+लङ्+उ० पु०+ब० व० आत्मनेपद का रूप है।

"लट् स्मे"—(३।२।११८) 'स्म' शब्द उपपद हो और अनद्यतन परोक्ष या अपरोक्ष अर्थ सूचित करना हो तो धातु से लट लकार होता है जैसे अनद्यतन परोक्षभूत अर्थ में 'यजति स्म युधिष्ठिरः' युधिष्ठिर यज्ञ करते थे-इस वाक्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में 'स्म शब्द का प्रयोग अनद्यतन परोक्षभूत को सूचित करने के लिये किया गया है। यहाँ 'परोक्षे लिट्' सूत्र से लिट् लकार प्राप्त था किन्तु उपर्युक्त सूत्र ने उसका बाधकर लट् लकार का प्रयोग करना बतलाया है उसी प्रकार अनद्यतन अपरोक्षभूत में भी 'अपरोक्षे च' सूत्र से लट् लकार बतलाया गया है। जैसे 'एवं स्म भ्राता ब्रवीति' इस प्रकार भाई कहता था। माघ काव्य में भी 'क्रीडन्ति स्म प्राणमूल्यैर्यशांसि'-प्राणों का मूल्य चुकाकर यश को खरीदते थे। यह ध्यान रखना चाहिये कि 'मा स्म' के प्रयोग में लट् लकार नहीं करना, क्योंकि वहाँ अनद्यतनभूतकाल का होना सम्भव नहीं। उन स्थलों पर स्मोत्तरे लङ् 'च' सूत्र से लुङ् या लङ् किया जाता है। जैसे 'भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः' (शा० ना० ४।१७) वर्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा-३।३।१३१-वर्त्तमान काल में जो प्रत्यय जिस अर्थ में बतलाये गये हैं वे समीपवर्ती भूत और भविष्यत् काल में भी वर्तमानकाल की तरह विकल्प से किये जाते हैं। भूतकाल में जैसे-कदा आगतोऽसि ? तुम कब आए, ऐसा भूतकाल में किसी के द्वारा प्रश्न किये जाने पर उत्तर दिया जाता है 'अयं आगच्छामि' यह मैं आरहा हूँ। यह उत्तर वर्तमानकाल में दिया गया है, क्योंकि वर्तमानकाल के समीप यह भूतकाल है सूत्रकार ने 'वा' कहा है, इससे सूचित होता है कि भूतकाल का भी प्रयोग किया जा सकता है। जैसे—'अहम् आगमम्'-मैं आया था। यहाँ लुङ् लकार का प्रयोग किया गया है।

भविष्यत्काल में जैसे--'कदा गमिष्यसि'--कब जाओगे ? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर दिया जाता है--'एष गच्छामि'-यह मैं अभी जा रहा हूँ। यहाँ भविष्यत्कालिक प्रश्न का उत्तर वर्तमानकाल में दिया गया है। क्योंकि वर्तमानकाल के समीप भविष्यत्काल है, यह मैं अभी जाने वाला ही हूँ। सूत्र में 'वा' के कहने से लृट् का भी प्रयोग किया जा सकता है-'एष अहं गमिष्यामि'-मैं अभी जाऊंगा।

'यावत् पुरानिपातयोर्लट्'--(३।३।४) यावत् और पुरा निपातों (अव्ययों) के प्रयोग में भविष्यत् काल में भी लट् लकार का प्रयोग होता है। ये दोनों निश्चय अर्थ को प्रकाशित करते हैं। जैसे--'यावद् गायति'--निश्चय है कि वह गायेगा। 'आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा'-बलिकर्म में लगी हुई वह तुम्हें निश्चित दिखाई पड़ेगी। (मे० दू० ८५)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ्वादिगणः

भू—भ्वा०, पर०, सेट्, अकर्मकः, सत्ता, to be.

वर्तमाने लट् / परोक्षे लिट्

ए०व०	द्वि०व०	ब०व०	पुरुष	ए०व०	द्वि०व०	ब०व०
भवति	भवतः	भवन्ति	प्र०	बभूव	बभूवतुः	बभूवुः
भवसि	भवथः	भवथ	म०	बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
भवामि	भवावः	भवामः	उ०	बभूव	बभूविव	बभूविम

अनद्यतने लुट् / भविष्यति लृट्

भविता	भवितारौ	भवितारः	प्र०	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ	म०	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः	उ०	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

विध्यादौ लोट् / अनद्यतने भूते लङ्

भवतु-भवतात्,	भवताम्	भवन्तु	प्र०	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
भव-भवतात्,	भवतम्	भवत	म०	अभवः	अभवतम्	अभवत
भवानि	भवाव	भवाम	उ०	अभवम्	अभवाव	अभवाम

विध्यादौ लिङ् / आशिषि लिङ्

भवेत्	भवेताम्	भवेयुः	प्र०	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः
भवेः	भवेतम्	भवेत	म०	भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त
भवेयम्	भवेव	भवेम	उ०	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

भूते लुङ् / भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ्

अभूत्	अभूताम्	अभूवन्	प्र०	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
अभूः	अभूतम्	अभूत	म०	अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
अभूवम्	अभूव	अभूम	उ०	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्था (तिष्ठ) भ्वा० पर० अनि० अक० गतिनिवृत्ति to stop.

वर्तमाने लट्				परोक्षे लिट्		
तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति	प्र०	तस्थौ	तस्थतुः	तस्थुः
तिष्ठसि	तिष्ठथः	तिष्ठथ	म०	तस्थिथ तस्थाथ,	तस्थथुः	तस्थ
तिष्ठामि	तिष्ठावः	तिष्ठामः	उ०	तस्थौ	तस्थिव	तस्थिम

अनद्यतने लुट्				भविष्यति लृट्		
स्थाता	स्थातारौ	स्थातारः	प्र०	स्थासति	स्थास्यतः	स्थास्यन्ति
स्थातासि	स्थातास्थः	स्थातास्थ	म०	स्थास्यसि	स्थास्यथः	स्थास्यथ
स्थातास्मि	स्थातास्वः	स्थातास्मः	उ०	स्थास्यामि	स्थास्यावः	स्थास्यामः

विध्यादौ लोट्				अनद्यतने भूते लङ्		
तिष्ठतु-तात्,	तिष्ठताम्,	तिष्ठन्तु	प्र०	अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्
तिष्ठ-तात्,	तिष्ठतम्,	तिष्ठत	म०	अतिष्ठः	अतिष्ठतम्	अतिष्ठत
तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठाम	उ०	अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम

विध्यादौ लिङ्				आशिषि लिङ्		
तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेयुः	प्र०	स्थेयात्	स्थेयास्ताम्	स्थेयासुः
तिष्ठेः	तिष्ठेतम्	तिष्ठेत	म०	स्थेयाः	स्थेयास्तम्	स्थेयास्त
तिष्ठेयम्	तिष्ठेव	तिष्ठेम	उ०	स्थेयासम्	स्थेयास्व	स्थेयास्म

भूते लुङ्				भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ्		
अस्थात्	अस्थाताम्	अस्थुः	प्र०	अस्थास्यत्	अस्थास्यताम्	अस्थास्यन्
अस्थाः	अस्थातम्	अस्थात	म०	अस्थास्यः	अस्थास्यतम्	अस्थास्यत
अस्थाम्	अस्थाव	अस्थाम	उ०	अस्थास्यम्	अस्थास्याव	अस्थास्याम

पठ्, भ्वा० सक० सेट्, पर० व्यक्तायांवाचि (पढ़ना) to read.

वर्तमाने लट्				परोक्षे लिट्		
पठति	पठतः	पठन्ति	प्र०	पपाठ	पेठतुः	पेठुः
पठसि	पठथः	पठथ	म०	पेठिथ	पेठथुः	पेठ
पठामि	पठावः	पठामः	उ०	पपाप—पपठ.	पेठिव	पेठिम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनद्यतने लुट्				भविष्यति लृट्		
पठिता	पठितारौ	पठितारः	प्र०	पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति
पठितासि	पठितास्थः	पठितास्थ	म०	पठिष्यसि	पठिष्यथः	पठिष्यथ
पठितास्मि	पठितास्वः	पठितास्मः	उ०	पठिष्यामि	पठिष्यावः	पठिष्यामः

विध्यादौ लोट्				अनद्यतने भूते लङ्		
पठतु-तात्,	पठताम्,	पठन्तु	प्र०	अपठत्	अपठताम्	अपठन्
पठ-तात्,	पठतम्,	पठत	म०	अपठः	अपठतम्	अपठत
पठानि,	पठाव,	पठाम	उ०	अपठम्	अपठाव	अपठाम

विध्यादौ लिङ्				आशिषि लिङ्		
पठेत्	पठेताम्	पठेयुः	प्र०	पठ्यात्	पठ्यास्ताम्	पठ्यासुः
पठेः	पठेतम्	पठेत	म०	पठ्याः	पठ्यास्तम्	पठ्यास्त
पठेयम्	पठेव	पठेम	उ०	पठ्यासम्	पठ्यास्व	पठ्यास्म

भूते लुङ्				भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ्		
अपाठीत्-अपठीत्,	अपाठिष्टाम्	अपाठिषुः	प्र०	अपठिष्यत्	अपठिष्यताम्	अपठिष्यन्
अपाठीः	अपाठिष्टम्	अपाठिष्ट	म०	अपठिष्यः	अपठिष्यतम्	अपठिष्यत
अपाठिषम्	अपाठिष्व	अपाठिष्म	उ०	अपठिष्यम्	अपठिष्याव	अपठिष्याम

गुपू—भ्वा० सक० सेट्० पर० रक्षणे (रक्षा करना)

वर्तमाने लट्				परोक्षे लिट्		
गोपायति	गोपायतः	गोपायन्ति	प्र०	गोपायाञ्चकार	गोपायाञ्चक्रतुः	गोपायाञ्चक्रुः
गोपायसि	गोपायथः	गोपायथ	म०	गोपायाञ्चकर्थ	गोपायाञ्चक्रथुः	गोपायाञ्चक्र
गोपायामि	गोपायावः	गोपायामः	उ०	गोपायाञ्चकार-चकर	गोपायाञ्चकृव	गोपायाञ्चकृम

एवं—गोपायामास—गोपायाम्बभूव, इत्यादि

आय—प्रत्ययाभावे

जुगोप	जुगुपतुः	जुगुपुः	प्र०
जुगोपिथ—प्थ,	जुगुपथुः,	जुगुप	म०
जुगोप	जुगुपिव—प्व,	जुगुपिम—प्म	उ०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनद्यतने लुट्

गोपायिता	गोपायितारौ	गोपायितारः	प्र०
गोपिता	गोपितारौ	गोपितारः	
गोप्ता	गोप्तारौ	गोप्तारः	
गोपायितासि	गोपायितास्थः	गोपायितास्थः	म०
गोपितासि	गोपितास्थः	गोपितास्थ	
गोप्तासि	गोप्तास्थः	गोप्तास्थ	
गोपायितास्मि	गोपायितास्वः	गोपायितास्मः	उ०
गोपितास्मि	गोपितास्वः	गोपितास्मः	
गोप्तास्मि	गोप्तास्वः	गोप्तास्मः	

भविष्यति लृट्

गोपायिष्यति	गोपायिष्यतः	गोपायिष्यन्ति	प्र०
गोपिष्यति	गोपिष्यतः	गोपिष्यन्ति	
गोप्स्यति	गोप्स्यतः	गोप्स्यन्ति	
गोपायिष्यसि	गोपायिष्यथः	गं।पायिष्यथ	म०
गोपिष्यसि	गोपिष्यथः	गोपिष्यथ	
गोप्स्यसि	गोप्स्यथः	गोप्स्यथ	
गोपायिष्यामि	गोपायिष्यावः	गोपायिष्यामः	उ०
गोपिष्यामि	गोपिष्यावः	गोपिष्यामः	
गोप्स्यामि	गोप्स्यावः	गोप्स्यामः	

विध्यादौ लोट्

गोपायतु–तात्	गोपायताम्	गोपायन्तु
गोपाय–तात्	गोपायतम्	गोपायत
गोपायानि	गोपायाव	गोपायाम

अनद्यतने भूते लङ्   विध्यादौ लिङ्

अगोपायत्	अगोपायताम्	अगोपायन्	प्र०	गोपायेत्	गोपायेताम्	गोपायेयुः
अगोपायः	अगोपायतम्	अगोपायत	म०	गोपायेः	गोपायेतम्	गोपायेत
अगोपायम्	अगोपायाव	अगोपायाम	उ०	गोपायेयम्	गोपायेव	गोपामये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आशिषि लिङ्

गोपाय्यात्	गोपाय्यास्ताम्	गोपाय्यासुः
गुप्यात्	गुप्यास्ताम्	गुप्यासुः
गोपाय्याः	गोपाय्यास्तम्	गोपय्यास्त
गुप्याः	गुप्यास्तम्	गुप्यास्त
गोपाय्यासम्	गोपाय्यास्व	गोपाय्यास्म
गुप्यासम्	गुप्यास्व	गुप्यास्म

भूते लुङ्

अगोपायीत्	अगोपायिष्टाम्	अगोपायिषुः
अगोपीत्	अगोपिष्टाम्	अगोपिषुः
अगौप्सीत्	अगौप्ताम्	अगौप्सुः
अगोपायीः	अगोपायिष्टम्	अगोपायिष्ट
अगोपीः	अगोपिष्टम्	अगोपिष्ट
अगौप्सीः	अगौप्तम्	अगौप्त
अगोपायिषम्	अगोपायिष्व	अगोपायिष्म
अगोपिषम्	अगोपिष्व	अगोपिष्म
अगौप्सम्	अगौप्स्व	अगौप्स्म

भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ्

अगोपायिष्यत्	अगोपायिष्यताम्	अगोपायिष्यन्
अगोपिष्यत्	अगोपिष्यताम्	अगोपिष्यन्
अगोप्स्यत्	अगोप्स्याताम्	अगोप्स्यन्
अगोपायिष्यः	अगोपायिष्यतम्	अगोपायिष्यत
अगोपिष्यः	अगोपिष्तवम्	अगोपिष्यत
अगोप्स्यः	अगोप्स्यतम्	अगोप्स्यत
अगोपायिष्यम्	अगोपायिष्याव	अगोपायिष्याम
अगोपिष्यम्	अगोपिष्याघ	अगोपिष्याम
अगोप्स्यम्	अगोप्स्याव	अगोप्स्याम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रक्ष्—भ्वा० पर० सेट् सक० रक्षायाम्, To Protect.

वर्तमाने लट्				परोक्षे लिट्		
रक्षति	रक्षतः	रक्षन्ति	प्र०	ररक्ष	ररक्षतुः	ररक्षुः
रक्षसि	रक्षथः	रक्षथ	म०	ररक्षिथ	ररक्षथुः	ररक्ष
रक्षामि	रक्षावः	रक्षामः	उ०	ररक्ष	ररक्षिव	ररक्षिम

अनद्यतने लुट्				भविष्यति लृट्		
रक्षिता	रक्षितारौ	रक्षितारः	प्र०	रक्षिष्यति	रक्षिष्यतः	रक्षिष्यन्ति
रक्षितासि	रक्षितास्थः	रक्षितास्थ	म०	रक्षिष्यसि	रक्षिष्यथः	रक्षिष्यथ
रक्षितास्मि	रक्षितास्वः	रक्षितास्मः	उ०	रक्षिष्यामि	रक्षिष्यावः	रक्षिष्यामः

विध्यादौ लोट्				अनद्यतने भूते लङ्		
रक्षतु-तात्,	रक्षताम्	रक्षन्तु	प्र०	अरक्षत्	अरक्षताम्	अरक्षन्
रक्ष-तात्,	रक्षतम्	रक्षत	म०	अरक्षः	अरक्षतम्	अरक्षत
रक्षाणि	रक्षाव	रक्षाम	उ०	अरक्षम्	अरक्षाव	अरक्षाम

विध्यादौ लिङ्				आशिषि लिङ्		
रक्षेत्	रक्षेताम्	रक्षेयुः	प्र०	रक्ष्यात्	रक्ष्यास्ताम्	रक्ष्यासुः
रक्षेः	रक्षेतम्	रक्षेत	म०	रक्ष्याः	रक्ष्यास्तम्	रक्ष्यास्त
रक्षेयम्	रक्षेव	रक्षेम	उ०	रक्ष्यासम्	रक्ष्यास्व	रक्ष्यास्म

भूते लुङ्				भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ्		
अरक्षीत्	अरक्षिष्टाम्	अरक्षिषुः	प्र०	अरक्षिष्यत्	अरक्षिष्यताम्	अरक्षिष्यन्
अरक्षीः	अरक्षिष्टम्	अरक्षिष्ट	म०	अरक्षिष्यः	अरक्षिष्यतम्	अरक्षिष्यत
अरक्षिषम्	अरक्षिष्व	अरक्षिष्म	उ०	अरक्षिष्यम्	अरक्षिष्याव	अरक्षिष्याम

दिवादिगणः

नश्—दिवा० अनि० पर० अक० अदर्शने (नष्ट होना) to be lost.

लट्—नश्यति	नश्यतः	नश्यन्ति	लिट्—ननाश	नेशतुः	नेशुः
नश्यसि	नश्यथः	नश्यथ	नेशिथ-ननंष्ठ,	नेशथुः	नेश
नश्यामि	नश्यावः	नश्यामः	ननाश-ननश,	नेशिव-नेश्व	नेशिम-नेश्म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लुट्—नशिता-नंष्टा, नशितारौ नंष्टारौ नशितारः नंष्टारः
नशितासि नंष्टासि नशितास्थ नंष्टास्थः नशितास्थ नंष्टास्थ
नशितास्मि नंष्टास्मि नशितास्वः नंष्टास्वः नशितास्मः नंष्टास्मः

लृट्—नशिष्यति-नंक्ष्यति, नशिष्यतः-नंक्ष्यतः, नशिष्यन्ति नंक्ष्यन्ति
नशिष्यसि-नंक्ष्यसि, नशिष्यथः-नंक्ष्यथः, नशिष्यथ-नंक्ष्यथ
नशिष्यामि-नंक्ष्यामि, नशिष्यावः-नंक्ष्यावः, नशिष्यामः-नंक्ष्यामः

भ्वादिगणः

गै—भ्वा० पर० अनि० सकर्मक, गाना To Sing

वर्तमाने लट् / **परोक्षे लिट्**

ए० व०	द्वि० व०	ब० व०	पुरुष	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
गायति	गायतः	गायन्ति	प्र०	जगौ	जगतुः	जगुः
गायसि	गायथः	गायथ	म०	जगिथ—जगाथ	जगथुः	जग
गायामि	गायावः	गायामः	उ०	जगौ	जगिव	जगिम

अनद्यतने लुट् / **भविष्यति लृट्**

गाता	गातारौ	गातारः	प्र०	गास्यति	गास्यतः	गास्यन्ति
गातासि	गातास्थः	गातास्थ	म०	गास्यसि	गास्यथः	गास्यथ
गातास्मि	गातास्वः	गातास्मः	उ०	गास्यामि	गास्यावः	गास्यामः

विध्यादौ लोट् / **अनद्यतने भूते लङ्**

गायतु—गायतात्	गायताम्	गायन्तु	प्र०	अगायत्	अगायताम्	अगायन्
गाय—गायतात्	गायतम्	गायत	म०	अगायः	अगायतम्	अगायत
गायानि	गायाव	गायाम	उ०	अगायम्	अगायाव	अगायाम

विध्यादौ लिङ् / **आशिषि लिङ्**

गायेत्	गायेताम्	गायेयुः	प्र०	गेयात्	गेयास्ताम्	गेयासुः
गायेः	गायेतम्	गायेत	म०	गेयाः	गेयास्तम्	गेयास्त
गायेयम	गायेव	गायेम	उ०	गेयासम्	गेयास्व	गेयास्म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूते लुङ् भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ्

अगासीत्	अगासिष्टाम्	अगासिषुः	प्र०	अगास्यत्	अगास्यताम्	अगास्यन्
अगासीः	अगासिष्टम्	अगासिष्ट	म०	अगास्यः	अगास्यतम्	अगास्यत
अगासिषम्	अगासिष्व	अगासिष्म	उ०	अगास्यम्	अगास्याव	अगास्याम

वादि (वद्—णिच्) भ्वा० उभ० से० सक० (बजाना)

वर्तमानेलट् (पर०) वर्तमाने लट् (आत्मने०)

ए० व०	द्वि० व०	ब० व०		ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
वादयति	वादयतः	वादयन्ति	प्र०	वादयते	वादयेते	वादयन्ते
वादयसि	वादयथः	वादयथ	म०	वादयसे	वादयेथे	वादयध्वे
वादयामि	वादयावः	वादयामः	उ०	वादये	वादयावहे	वादयामहे

परोक्षेलिट् (पर०)

वादयाञ्चकार	वादयाञ्चक्रतुः	वादयाञ्चक्रुः
वादयाञ्चकर्थ	वादयाञ्चक्रथुः	वादयाञ्चक्र
वादयाञ्चकार-चकर	वादयाञ्चकृव	वादयाञ्चकृम

परोक्षे लिट् (आत्न०)

वादयाञ्चक्रे	वादयाञ्चक्राते	वादयाञ्चक्रिरे	प्र.
वादयाञ्चकृषे	वादयाञ्चक्राथे	वादयाञ्चकृढ्वे	म.
वादयाञ्चक्रे	वादयाञ्चकृवहे	वादयाञ्चकृमहे	उ.

इसी प्रकार 'वादयामास' 'वादयाम्बभूव' इ० भी समझना चाहिये।

अनद्यतने लुट् (पर०) अनद्यतने लुट् (आत्म०)

वादयिता	वादयितारौ	वादयितारः	प्र.	वादयिता	वादयितारौ	वादयितारः
वादयितासि	वादयितास्थः	वादयितास्थ	म.	वादयितासे	वादयितासाथे	वादयिताध्वे
वादयितास्मि	वादयितास्वः	वादयितास्मः	उ.	वादयिताहे	वादयितास्वहे	वादयितास्महे

भविष्यति लृट् (पर०) भविष्यति लृट् (आत्म०)

वादयिष्यति	वादयिष्यतः	वादयिष्यन्ति	प्र.	वादयिष्यते	वादयिष्येते	वादयिष्यन्ते
वादयिष्यसि	वादयिष्यथः	वादयिष्यथ	म.	वादयिष्यसे	वादयिष्येथे	वादयिष्यध्वे
वादयिष्यामि	वादयिष्यावः	वादयिष्यामः	उ.	वादयिष्ये	वादयिष्यावहे	वादयिष्यामहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विध्यादौ लोट् (पर०) विध्यादौ लोट् (आत्म०)

वादयतु-वादयतात्	वादयताम्	वादयन्तु	प्र०	वादयताम्	वादयेताम्	वादयन्ताम्
वादय-वादयतात्	वादयतम्	वादयत	म०	वादयस्व	वादयेथाम्	वादयध्वम्
वादयानि	वादयाव	वादयाम	उ०	वादयै	वादयावहै	वादयामहै

अनद्यतने भूते लङ् (पर०) अनद्यतने भूते लङ् (आत्म०)

अवादयत्	अवादयताम्	अवादयन्	प्र०	अवादयत	अवादयेताम्	अवादयन्त
अवादयः	अवादयतम्	अवादयत	म०	अवादयथाः	अवादयेथाम्	अवादयध्वम्
अवादयम्	अवादयाव	अवादयाम	उ०	अवादये	अवादयावहि	अवादयामहि

विध्यादौ लिङ् (पर०) विध्यादौ लिङ् (आत्म०)

वादयेत्	वादयेताम्	वादयेयुः	प्र०	वादयेत	वादयेयाताम्	वादयेरन्
वादयेः	वादयेतम्	वादयेत	म०	वादयेथाः	वादयेयाथाम्	वादयेध्वम्
वादयेयम्	वादयेव	वादयेम	उ०	वादयेय	वादयेवहि	वादयेमहि

आशिषि लिङ् (पर०) आशिषि लिङ् (आत्म०)

वद्यात्	वद्यास्ताम्	वद्यासुः	प्र०	वादयिषीष्ट	वादयिषीयास्ताम्	वादयिषीरन्
वद्याः	वद्यास्तम्	वद्यास्त	म०	वादयिषीष्ठाः	वादयिषीयास्थाम्	वादयिषीध्वम्
वद्यासम्	वद्यास्व	वद्यास्म	उ०	वादयिषीय	वादयिषीवहि	वादयिषीमहि

भूते लुङ् (पर०) भूते लुङ् (आत्म०)

अवीवदत्	अवीवदताम्	अवीवदन्	प्र०	अवीवदत	अवीवदेताम्	अवीवदन्त
अवीवदः	अवीवदतम्	अवीवदत	म०	अवीवदथाः	अवीवदेथाम्	अवीवदध्वम्
अवीवदम्	अवीवदाव	अवीवदाम	उ०	अवीवदे	अवीवदावहि	अवीवदामहि

भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ् (पर०)

अवादयिष्यत्	अवादयिष्यताम्	अवादयिष्यन्
अवादयिष्यः	अवादयिष्यतम्	अवादयिष्यत
अवादयिष्यम्	अवादयिष्याव	अवादयिष्याम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ् (आत्म०)

अवादयिष्यत	अवादयिष्येताम्	अवादयिष्यन्त	प्र०
अवादयिष्यथाः	अवादयिष्येथाम्	अवादयिष्यध्वम्	म०
अवादयिष्ये	अवादयिष्यावहि	अवादयिष्यामहि	उ०

अदादिगणः (२)

अस्—अदा० पर० अनि० अक० वर्तमान रहना, To be.

वर्तमाने लट् — परोक्षे लिट्

ए० व०	द्वि० व०	ब० व०	पुरुष	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
अस्ति	स्तः	सन्ति	प्र०	बभूव	बभूवतुः	बभूवुः
असि	स्थः	स्थ	म०	बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
अस्मि	स्वः	स्मः	उ०	बभूव	बभूविव	बभूविम

अनद्यतने लुट् — भविष्यति लृट्

भविता	भवितारौ	भवितारः	प्र०	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ	म०	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः	उ०	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

विध्यादौ लोट् — अनद्यतने भूते लङ्

अस्तु,-स्तात्	स्ताम्	सन्तु	प्र०	आसीत्	आस्ताम्	आसन्
एधि,-स्तात्	स्तम्	स्त	म०	आसीः	आस्तम्	आस्त
असानि	असाव	असाम	उ०	आसम्	आस्व	आस्म

विध्यादौ लिङ् — आशिषि लिङ्

स्यात्	स्याताम्	स्युः	प्र०	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः
स्याः	स्यातम्	स्यात	म०	भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त
स्याम्	स्याव	स्याम	उ०	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

भूते लुङ् — भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ्

अभूत्	अभूताम्	अभूवन्	प्र०	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
अभूः	अभूतम्	अभूत	म०	अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्तत
अभूवम्	अभूव	अभूम	उ०	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जुहोत्यादिगणः—(३)

दा (डुदाञ्) जुहो० उभ० अनि० सक० देना to give.

वर्तमाने लट्				परोक्षे लिट्		
ए० व०	द्विव०	ब०व०	पुरुष	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
ददाति	दत्तः	ददति	प्र०	ददौ	ददतुः	ददुः
ददासि	दत्थः	दत्थ	म०	ददिथ—ददाथ	ददथुः	दद
ददामि	दद्वः	दद्मः	उ०	ददौ	ददिव	ददिम

अनद्यतने लुट्				भविष्यति लृट्		
दाता	दातारौ	दातारः	प्र०	दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति
दातासि	दातास्थः	दातास्थ	म०	दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ
दातास्मि	दातास्वः	दातास्मः	उ०	दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः

विध्यादौ लोट्				अनद्यतने भूते लङ्		
ददातु-दत्तात्	दत्ताम्	ददतु	प्र०	अददात्	अदत्ताम्	अददुः
देहि-दत्तात्	दत्तम्	दत्त	म०	अददाः	अदत्तम्	अदत्त
ददानि	ददाव	ददाम	उ०	अददाम्	अदद्व	अदद्म

विध्यादौ लिङ्				आशिषि लिङ्		
दद्यात्	दद्याताम्	दद्युः	प्र०	देयात्	देयास्ताम्	देयासुः
दद्याः	दद्यातम्	दद्यात	म०	देयाः	देयास्तम्	देयास्त
दद्याम्	दद्याव	दद्याम	उ०	देयासम्	देयास्व	देयास्म

भूते लुङ्				भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ्		
अदात्	अदाताम्	अदुः	प्र०	अदास्यत्	अदास्यताम्	अदास्यन्
अदाः	अदातम्	अदात	म०	अदास्यः	अदास्यतम्	अदास्यत
अदाम्	अदाव	अदाम	उ०	अदास्यम्	अदास्याव	अदास्याम

आत्मनेपदपक्षे

लट्—दत्ते	ददाते	ददते	प्र०	लिट्—ददे	ददाते	ददिरे
दत्से	ददाथे	दद्ध्वे	म०	ददिषे	ददाथे	ददिध्वे
ददे	दद्वहे	दद्महे	उ०	ददे	ददिवहे	ददिमहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लुट्—	दाता	दातारौ	दातारः	प्र०	लृट्—	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
	दातासे	दातासाथे	दाताध्वे	म०		दास्यसे	दास्येथे	दास्यध्वे
	दाताहे	दातास्वहे	दातास्महे	उ०		दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे
लोट्—	दत्ताम्	ददाताम्	ददताम्	प्र०	लङ्—	अदत्त	अददाताम्	अददत
	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्	म०		अदत्थाः	अददाथाम्	अदद्ध्वम्
	ददै	ददावहै	ददामहै	उ०		अददि	अदद्वहि	अदद्महि

वि० लि०—				आ० लि०—		
ददीत	ददीयाताम्	ददीरन्	प्र०	दासीष्ट	दासीयास्ताम्	दासीरन्
ददीथाः	ददीयाथाम्	ददीध्वम्	म०	दासीष्ठाः	दासीयास्थाम्	दासीध्वम्
ददीय	ददीवहि	ददीमहि	उ०	दासीय	दासीवहि	दासीमहि

लुङ्—				लृङ्—		
अदित	अदिषाताम्	अदिषत	प्र०	अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त
अदिथाः	अदिषाथाम्	अदिढ्वम्	म०	अदास्यथाः	अदास्येथाम्	अदास्यध्वम्
अदिषि	अदिष्वहि	अदिष्महि	उ०	अदास्ये	अदास्यावहि	अदास्यामहि

दिवादिगणः (४)

नृत् (नृती) दिवा० पर० से० अक० गात्रविक्षेपे (नाचना) To dance

वर्तमाने लट्				परोक्षे लिट्		
ए० व०	द्वि० व०	ब० व०	पुरुष	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
नृत्यति	नृत्यतः	नृत्यन्ति	प्र०	ननर्त	ननृततुः	ननृतुः
नृत्यसि	नृत्यथः	नृत्यथ	म०	ननर्तिथ	ननृतथुः	ननृत
नृत्यामि	नृत्यावः	नृत्यामः	उ०	ननर्त	ननृतिव	ननृतिम

अनद्यतने लुट्				भविष्यति लृट्		
नर्तिता	नर्तितारौ	नर्तितारः	प्र०	नर्तिष्यति	नर्तिष्यतः	नर्तिष्यन्ति
नर्तितासि	नर्तितास्थः	नर्तितास्थ	म०	नर्तिष्यसि	नर्तिष्यथः	नर्तिष्यथ
नर्तितास्मि	नर्तितास्वः	नर्तितास्मः	उ०	नर्तिष्यामि	नर्तिष्यावः	नर्तिष्यामः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इड्विकल्पपक्षे

नर्त्स्यति	नर्त्स्यतः	नर्त्स्यन्ति	प्र०
नर्त्स्यसि	नर्त्स्यथः	नर्त्स्यथ	म०
नर्त्स्यामि	नर्त्स्यावः	नर्त्स्यामः	उ०

'सेऽसिचि कृत-चृत-छृद-तृद-नृतः'-सूत्र से उक्त धातुओं के आगे सिच्भिन्न सकारादि आर्धधातुक प्रत्यय को 'इट्' का आगम विकल्प से होता है।

विध्यादौ लोट् अनद्यतने भूते लङ्

नृत्यतु-तात्	नृत्यताम्	नृत्यन्तु	प्र०	अनृत्यत्	अनृत्यताम्	अनृत्यन्
नृत्य-तात्	नृत्यतम्	नृत्यत	म०	अनृत्यः	अनृत्यतम्	अनृत्यत
नृत्यानि	नृत्याव	नृत्याम	उ०	अनृत्यम्	अनृत्याव	अनृत्याम

विध्यादौ लिङ् आशिषि लिङ्

नृत्येत्	नृत्येताम्	नृत्येयुः	प्र०	नृत्यात्	नृत्यास्ताम्	नृत्यासुः
नृत्येः	नृत्येतम्	नृत्येत	म०	नृत्याः	नृत्यास्तम्	नृत्यास्त
नृत्येयम्	नृत्येव	नृत्येम	उ०	नृत्यासम्	नृत्यास्व	नृत्यास्म

भूते लुङ् भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ्

अनर्तीत्	अनर्तिष्टाम्	अनर्तिषुः	प्र०	अनर्तिष्यत्	अनर्तिष्यताम्	अनर्तिष्यन्
अनर्तीः	अनर्तिष्टम्	अनर्तिष्ट	म०	अनर्तिष्यः	अनर्तिष्यतम्	अनर्तिष्यत
अनर्तिषम्	अनर्तिष्व	अनर्तिष्म	उ०	अनर्तिष्यम्	अनर्तिष्याव	अनर्तिष्याम

इड्विकल्पपक्षे

अनर्त्स्यत्	अनर्त्स्यताम्	अनर्त्स्यन्
अनर्त्स्यः	अनर्त्स्यतम्	अनर्त्स्यत
अनर्त्स्यम्	अनर्त्स्याव	अनर्त्स्याम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वादिगणः—(५)

शक् (शक्लृ) स्वा० पर० अनिट्, अक० शक्तौ (सकना) to be able, to be Power ful, to endure.

वर्तमाने लट् / परोक्षे लिट्

ए० व०	द्वि० व०	ब० व०	पुरुष	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
शक्नोति	शक्नुतः	शक्नुवन्ति	प्र०	शशाक	शेकतुः	शेकुः
शक्नोषि	शक्नुथः	शक्नुथ	म०	शशक्थ-शेकिथ,	शेकथुः	शेक
शक्नोमि	शक्नुवः	शक्नुमः	उ०	शशाक-शशक,	शेकिव	शेकिम

अनद्यतने लुट् / भविष्यति लृट्

शक्ता	शक्तारौ	शक्तारः	प्र०	शक्ष्यति	शक्ष्यतः	शक्ष्यन्ति
शक्तासि	शक्तास्थः	शक्तास्थ	म०	शक्ष्यसि	शक्ष्यथः	शक्ष्यथ
शक्तास्मि	शक्तास्वः	शक्तास्मः	उ०	शक्ष्यामि	शक्ष्यावः	शक्ष्यामः

विध्यादौ लोट् / अनद्यतने भूते लिङ्

शक्नोतु-तात्	शक्नुताम्,	शक्नुवन्तु	प्र०	अशक्नोत्	अशक्नुताम्	अशक्नुवन्
शक्नुहि-तात्,	शक्नुतम्	शक्नुत	म०	अशक्नोः	अशक्नुतम्	अशक्नुत
शक्नवानि	शक्नवाव	शक्नवाम	उ०	अशक्नुवम्	अशक्नुव	अशक्नुम

विध्यादौ लिङ् / आशिषि लिङ्

शक्नुयात्	शक्नुयाताम	शक्नुयुः	प्र०	शक्यात्	शक्यास्ताम्	शक्यासुः
शक्नुयाः	शक्नुयातम्	शक्नुयात	म०	शक्याः	शक्यास्तम्	शक्यास्त
शक्नुयाम्	शक्नुयाव	शक्नुयाम	उ०	शक्यासम्	शक्यास्व	शक्यास्म

भूते लुङ् / भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ्

अशकत्	अशकताम्	अशकन्	प्र०	अशक्ष्यत्	अशक्ष्यताम्	अशक्ष्यन्
अशकः	अशकतम्	अशकत	म०	अशक्ष्यः	अशक्ष्यतम्	अशक्ष्यत
अशकम्	अशकाव	अशकाम	उ०	अशक्ष्यम्	अशक्ष्याव	अशक्ष्याम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुदादिगणः—(६)

तुद्—तुदा० उभ० अनि० सक० व्यथने (दुःखदेना, चोटमारना, सताना, चुभोना) to strike, to wound.

वर्तमाने लट् (पर० प०) — वर्तमाने लट् (आत्मने०)

ए० व०	द्वि० व०	ब० व०		ए० व०	द्वि व०	ब० व
तुदति	तुदतः	तुदन्ति	प्र०	तुदते	तुदेते	तुदन्ते
तुदसि	तुदथः	तुदथ	म०	तुदसे	तुदेथे	तुदध्वे
तुदामि	तुदावः	तुदामः	उ०	तुदे	तुदावहे	तुदामहे

परोक्षे लिट् — परोक्ष लिट्

तुतोद	तुतुदतुः	तुतुदुः	प्र०	तुतुदे	तुतुदाते	तुतुदिरे
तुतोदिथ	तुतुदथुः	तुतुद	म०	तुतुदिषे	तुतुदाथे	तुतुदिध्वे
तुतोद	तुतुदिव	तुतुदिम	उ०	तुतुदे	तुतुदिवहे	तुतुदिमहे

अनद्यतने लुट् — अनद्यतने लुट्

तोत्ता	तोत्तारौ	तोत्तारः	प्र०	तोत्ता	तोत्तारौ	तोत्तारः
तोत्तासि	तोत्तास्थः	तोत्तास्थ	म०	तोत्तासे	तोत्तासाथे	तोत्ताध्वे
तोत्तास्मि	तोत्तास्वः	तोत्तास्मः	उ०	तोत्ताहे	तोत्तास्वहे	तोत्तास्महे

भविष्यति लृट् — भविष्यति लृट्

तोत्स्यति	तोत्स्यतः	तोत्स्यन्ति	प्र०	तोत्स्यते	तोत्स्येते	तोत्स्यन्ते
तोत्स्यसि	तोत्स्यथः	तोत्स्यथ	म०	तोत्स्यसे	तोत्स्येथे	तोत्स्यध्वे
तोत्स्यामि	तोत्स्यावः	तोत्स्यामः	उ०	तोत्स्ये	तोत्स्यावहे	तोत्स्यामहे

विध्यादौ लोट् — विध्यादौ लोट्

तुदतु—तात्,	तुदताम्	तुदन्तु	प्र०	तुदताम्	तुदेताम्	तुदन्ताम्
तुद—तात्	तुदतम्	तुदत	म०	तुदस्व	तुदेथाम्	तुदध्वम्
तुदानि	तुदाव	तुदाम	उ०	तुदै	तुदावहै	तुदामहै

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनद्यतने भूते लङ्				अनद्यतने भूते लङ्		
अतुदत्	अतुदताम्	अतुदन्	प्र०	अतुदत	अतुदेताम्	अतुदन्त
अतुदः	अतुदतम्	अतुदत	म०	अतुदथाः	अतुदेथाम्	अतुदध्वम्
अतुदम्	अतुदाव	अतुदाम	उ०	अतुदे	अतुदावहि	अतुदामहि

विध्यादौ लिङ्				विध्यादौ लिङ्		
तुदेत्	तुदेताम्	तुदेयुः	प्र०	तुदेत	तुदायाताम्	तुदेरन्
तुदेः	तुदेतम्	तुदेत	म०	तुदेथाः	तुदेयाथान्	तुदेध्वम्
तुदेयम्	तुदेव	तुदेम	उ०	तुदेय	तुदेवहि	तुदेमहि

आशिषि लिङ्				आशिषि लिङ्		
तुद्यात्	तुद्यास्ताम्	तुद्यासुः	प्र०	तुत्सीष्ट	तुत्सीयास्ताम्	तुत्सीरन्
तुद्याः	तुद्यास्तम्	तुद्यास्त	म०	तुत्सीष्ठाः	तुत्सीयास्थाम्	तुत्सीध्वम्
तुद्यासम्	तुद्यास्व	तुद्यास्म	उ०	तुत्सीय	तुत्सीवहि	तुत्सीमहि

भूते लुङ्				भूते लुङ्		
अतौत्सीत्	अतौत्ताम्	अतौत्सुः	प्र०	अतुत्त	अतुत्साताम्	अतुत्सत
अतौत्सीः	अतौत्तम्	अतौत्त	म०	अतुत्थाः	अतुत्साथाम्	अतुद्ध्वम्
अतौत्सम्	अतौत्स्व	अतौत्स्म	उ०	अतुत्सि	अतुत्स्वहि	अतुत्स्महि

भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ्				भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ्		
अतोत्स्यत्	अतोत्स्यताम्	अतोत्स्यन्	प्र०	अतोत्स्यत	अतोत्स्येताम्	अतोत्स्यन्त
अतोत्स्यः	अतोत्स्यतम्	अतोत्स्यत	म०	अतोत्स्यथाः	अतोत्स्येथाम्	अतोत्स्यध्वम्
अतोत्स्यम्	अतोत्स्याव	अतोत्स्याम	उ०	अतोत्स्ये	अतोत्स्यावहि	अतोत्स्यामहि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इष् (इषु) तुदा० पर० से० ('तास्' (लुट्) में इट् का विकल्प होने से ('वेट्') सक० इच्छायाम् (इच्छा करना, चाहना) to wish.

वर्तमाने लट्				परोक्षे लिट्		
ए० व०	द्वि० व०	ब० व०	पुरुष	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
इच्छति	इच्छतः	इच्छन्ति	प्र०	इयेष	ईषतुः	ईषुः
इच्छसि	इच्छथः	इच्छथ	म०	इयेषिथ	ईषथुः	ईष
इच्छामि	इच्छावः	इच्छामः	उ०	इयेष	ईषिव	इषिम

अनद्यतने लुट्

एषिता–एष्टा,	एषितारौ–एष्टारौ,	एषितारः–एष्टारः
एषितासि–एष्टासि,	एषितास्थः–एष्टास्थः,	एषितास्थ–एष्टास्थ
एषितास्मि–एष्टास्मि,	एषितास्वः–एष्टास्वः,	एषितास्मः–एष्टास्मः

भविष्यति लृट्

एषिष्यति	एषिष्यतः	एषिष्यन्ति
एषिष्यसि	एषिष्यथः	एषिष्यथ
एषिष्यामि	एषिष्यावः	एषिष्यामः

विध्यादौ लोट्				अनद्यतने भूते लङ्		
इच्छतु–तात्,	इच्छताम्	इच्छन्तु	प्र०	ऐच्छत्	ऐच्छताम्	ऐच्छन्
इच्छ–तात्,	इच्छतम्,	इच्छत	म०	ऐच्छः	ऐच्छतम्	ऐच्छत
इच्छानि,	इच्छाव	इच्छाम	उ०	ऐच्छम्	ऐच्छाव	ऐच्छाम

विध्यादौ लिङ्				आशिषि लिङ्		
इच्छेत्	इच्छेताम्	इच्छेयुः	प्र०	इष्यात्	इष्यास्ताम्	इष्यासुः
इच्छेः	इच्छेतम्	इच्छेत	म०	इष्याः	इष्यास्तम्	इष्यास्त
इच्छेयम्	इच्छेव	इच्छेम	उ०	इष्यासम्	इष्यास्व	इष्यास्म

भूते लुङ्				भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ्		
ऐषीत्	ऐषिष्टाम्	ऐषिषुः	प्र०	ऐषिष्यत्	ऐषिष्यताम्	ऐषिष्यन्
ऐषीः	ऐषिष्टम्	ऐषिष्ट	म०	ऐषिष्यः	ऐषिष्यतम्	ऐषिष्यत
ऐषिषम्	ऐषिष्व	ऐषिष्म	उ०	ऐषिष्यम्	ऐषिष्याव	ऐषिष्याम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रुधादिगणः–(७)

भुज्—रुधा० उभ० अनि० सक० पालनाभ्यवहारयोः, to protect, to eat, to enjoy, to govern.
(पालने परस्मैपदी)

वर्तमाने लट्				परोक्षे लिट्		
ए० व०	द्वि० व०	ब० व०	पु०	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
भुनक्ति	भुङ्क्तः	भुञ्जन्ति	प्र०	बुभोज	बुभुजतुः	बुभुजुः
भुनक्षि	भुङ्क्थः	भुङ्क्थ	म०	बुभोजिथ	बुभुजथुः	बुभुज
भुनज्मि	भुञ्ज्वः	भुञ्ज्मः	उ०	बुभोज	बुभुजिव	बुभुजिम

अनद्यतने लुट्				भविष्यति लृट्		
भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः	प्र०	भोक्ष्यति	भोक्ष्यतः	भोक्ष्यन्ति
भोक्तासि	भोक्तास्थः	भोक्तास्थ	म०	भोक्ष्यसि	भोक्ष्यथः	भोक्ष्यथ
भोक्तास्मि	भोक्तास्वः	भोक्तास्मः	उ०	भोक्ष्यामि	भोक्ष्यावः	भोक्ष्यामः

विध्यादौ लोट्				अनद्यतने भूते लङ्		
भुनक्तु–भुङ्क्तात्	भुङ्क्ताम्,	भुञ्जन्तु	प्र०	अभुनक्-ग्	अभुङ्क्ताम्,	अभुञ्जन्
भुङ्ग्धि–भुङ्क्तात्,	भुङ्क्तम्	भुङ्क्त	म०	अभुनक्-ग्	अभुङ्क्तम्,	अभुङ्क्त
भुनजानि	भुनजाव	भुनजाम	उ०	अभुनजम्	अभुञ्ज्व	अभुञ्ज्म

विध्यादौ लिङ्				आशिषि लिङ्		
भुञ्ज्यात्	भुञ्ज्याताम्	भुञ्ज्युः	प्र०	भुज्यात्	भुज्यास्ताम्	भुज्यासुः
भुञ्ज्याः	भुञ्ज्यातम्	भुञ्ज्यात	म०	भुज्याः	भुज्यास्तम्	भुज्यास्त
भुञ्ज्याम्	भुञ्ज्याव	भुञ्ज्याम	उ०	भुज्यासम्	भुज्यास्व	भुज्यास्म

भूते लुङ्				भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ्		
अभौक्षीत्	अभौक्ताम्	अभौक्षुः	प्र०	अभोक्ष्यत्	अभोक्ष्यताम्	अभोक्ष्यन्
अभौक्षीः	अभौक्तम्	अभौक्त	म०	अभोक्ष्यः	अभोक्ष्यतम्	अभोक्ष्यत
अभौक्षम्	अभौक्ष्व	अभौक्ष्म	उ०	अभोक्ष्यम्	अभोक्ष्याव	अभोक्ष्याम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भोजनार्थे 'भुज्' धातुः आत्मनेपदी

लटि—भुङ्क्ते। लिटि—बुभुजे। लुटि—भोक्ता। लृटि—भोक्ष्यते। लोटि—भुङ्क्ताम्। लङि—अभुङ्क्त। वि० लि०—भुञ्जीत। आ० लि०—भुक्षीष्ट। लुङि—अभुक्त, अभुक्षाताम्। लृङि—अभोक्ष्यत।

तनादिगणः—(८)

तन् (तनु)—तना० उभ० से० सक० विस्तारे to stretch, to Spread.

वर्तमाने लट् (पर० प०)				परोक्षे लिट्		
ए० व०	द्वि० व०	ब० व०	पु०	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
तनोति	तनुतः	तन्वन्ति	प्र०	ततान	तेनतुः	तेनुः
तनोषि	तनुथः	तनुथ	म०	तेनिथ	तेनथुः	तेन
तनोमि	तनुवः-तन्वः,	तनुमः-तन्मः	उ०	ततान—ततन	तेनिव	तेनिम

अनद्यतने लुट्				भविष्यति लृट्		
तनिता	तनितारौ	तनितारः	प्र०	तनिष्यति	तनिष्यतः	तनिष्यन्ति
तनितासि	तनितास्थः	तनितास्थ	म०	तनिष्यसि	तनिष्यथः	तनिष्यथ
तनितास्मि	तनितास्वः	तनितास्मः	उ०	तनिष्यामि	तनिष्यावः	तनिष्यामः

विध्यादौ लोट्				अनद्यतने भूते लङ्		
तनोतु-तनुतात्,	तनुताम्	तन्वन्तु	प्र०	अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्
तनु-तनुतात्	तनुतम्	तनुत	म०	अतनोः	अतनुतम्	अतनुत
तनवानि	तनवाव	तनवाम	उ०	अतनवम्	अतनुव-अतन्व	अतनुम-अतन्म

विध्यादौ लिङ्				आशिषि लिङ्		
तनुयात्	तनुयाताम्	तनुयुः	प्र०	तन्यात्	तन्यास्ताम्	तन्यासुः
तनुयाः	तनुयातम्	तनुयात	म०	तन्याः	तन्यास्तम्	तन्यास्त
तनुयाम्	तनुयाव	तनुयाम	उ०	तन्यासम्	तन्यास्व	तन्यास्म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूते लुङ्				भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ्		
अतानीत्	अतानिष्टाम्	अतानिषुः	प्र०	अतनिष्यत्	अतनिष्यताम्	अतनिष्यन्
अतानीः	अतानिष्टम्	अतानिष्ट	म०	अतनिष्यः	अतनिष्यतम्	अतनिष्यत
अतानिषम्	अतानिष्व	अतानिष्म	उ०	अतनिष्यम्	अतनिष्याव	अतनिष्याम

अथवा

अतनीत् । अतनीः । अतनिषम्

आत्मनेपदे 'तन्' धातुः

लटि				लिटि		
तनुते	तन्वाते	तन्वते	प्र०	तेने	तेनाते	तेनिरे
तनुषे	तन्वाथे	तनुध्वे	म०	तेनिषे	तेनाथे	तेनिध्वे
तन्वे	तनुवहे-तन्वहे,	तनुमहे-तन्महे	उ०	तेने	तेनिवहे	तेनिमहे

लुटि				लृटि		
तनिता	तनितारौ	तनितारः	प्र०	तनिष्यते	तनिष्येते	तनिष्यन्ते
तनितासे	तनितासाथे	तनिताध्वे	म०	तनिष्यसे	तनिष्येथे	तनिष्यध्वे
तनिताहे	तनितास्वहे	तनितास्महे	उ०	तनिष्ये	तनिष्यावहे	तनिष्यामहे

लोटि				लङि		
तनुताम्	तन्वाताम्	तन्वताम्	प्र०	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत
तनुष्व	तन्वाथाम्	तनुध्वम्	म०	अतनुथाः	अतन्वाथाम्	अतनुध्वम्
तनवै	तनवावहै	तनवामहै	उ०	अतन्वि	अतन्वहि	अतन्महि

वि० लिङि				आ० लिङि		
तन्वीत	तन्वीयाताम्	तन्वीरन्	प्र०	तनिषीष्ट	तनिषीयास्ताम्	तनिषीरन्
तन्वीथाः	तन्वीयाथाम्	तन्वीध्वम्	म०	तनिषीष्ठाः	तनिषीयास्थाम्	तनिषीढ्वम्
तन्वीय	तन्वीवहि	तन्वीमहि	उ०	तनिषीय	तनिषीवहि	तनिषीमहि

लुङि				लृङि		
अतत-अतनिष्ट,	अतनिषाताम्,	अतनिषत	प्र०	अतनिष्यत	अतनिष्येताम्	अतनिष्यन्त
अतथाः-अतनिष्ठाः	अतनिषाथाम्,	अतनिढ्वम्	म०	अतनिष्यथाः	अतनिष्येथाम्	अतनिष्यध्वं
अतनिषि	अतनिष्वहि	अतनिष्महि	उ०	अतनिष्ये	अतनिष्यावहि	अतनिष्यामहि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृ (डुकृञ्) तना० उभ० सेट्० सक० करणे (करना) To do.

वर्तमाने लट् (पर० प०) — **परोक्षे लिट्**

ए० व०	द्वि व०	ब० व०				
करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति	प्र०	चकार	चक्रतुः	चक्रुः
करोषि	कुरुथः	कुरुथ	म०	चकर्थ	चक्रथुः	चक्र
करोमि	कुर्वः	कुर्मः	उ०	चकार-चकर,	चकृव	चकृम

अनद्यतने लुट् — **भविष्यति लृट्**

कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः	प्र०	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति
कर्तासि	कर्तास्थः	कर्तास्थ	म०	करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ
कर्तास्मि	कर्तास्वः	कर्तास्मः	उ०	करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः

विध्यादौ लोट् — **अनद्यतने भूते लङ्**

करोतु-कुरुतात्	कुरुताम्	कुर्वन्तु	प्र०	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
कुरु-कुरुतात्	कुरुतम्	कुरुत	म०	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत
करवाणि	करवाव	करवाम	उ०	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म

विध्यादौ लिङ् — **आशिषि लिङ्**

कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः	प्र०	क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासुः
कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात	म०	क्रियाः	क्रियास्तम्	क्रियास्त
कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम	उ०	क्रियासम्	क्रियास्व	क्रियास्म

भूते लुङ् — **भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ्**

अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः	प्र०	अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	अकरिष्यन्
अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट	म०	अकरिष्यः	अकरिष्यतम्	अकरिष्यत
अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म	उ०	अकरिष्यम्	अकरिष्याव	अकरिष्याम

'कृ' धातुः आत्मनेपदे

लटि — **लृटि**

कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते	प्र०	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे	म०	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे	उ०	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लुटि				लृटि		
कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः	प्र०	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
कर्तासे	कर्तासाथे	कर्ताध्वे	म०	करिष्यसे	करिष्येथे	करिष्यध्वे
कर्ताहे	कर्तास्वहे	कर्तास्महे	उ०	करिष्ये	करिष्यावहे	करिष्यामहे

लोटि				लङि		
कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्	प्र०	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्	म०	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
करवै	करवावहै	करवामहै	उ०	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

वि० लिङि				आ० लिङि		
कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्	प्र०	कृषीष्ट	कृषीयास्ताम्	कृषीरन्
कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्	म०	कृषीष्ठाः	कृषीयास्थाम्	कृषीढ्वम्
कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि	उ०	कृषीय	कृषीवहि	कृषीमहि

लुङि				लृङि		
अकृत	अकृषाताम्	अकृषत	प्र०	अकरिष्यत	अकरिष्येताम्	अकरिष्यन्त
अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्	म०	अकरिष्यथाः	अकरिष्येथाम्	अकरिष्यध्वम्
अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि	उ०	अकरिष्ये	अकरिष्यावहि	अकरिष्यामहि

क्र्यादिगणः—(९)

क्री (डुक्रीञ्) क्र्या० उभ० अनि० सक० द्रव्यविनिमये, (खरीदना) to buy, to purchase.

वर्तमाने लट्				परोक्षे लिट्		
क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति	प्र०	चिक्राय	चिक्रियतुः	चिक्रियुः
क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ	म०	चिक्रयिथ-चिक्रेथ	चिक्रियथुः	चिक्रिय
क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः	उ०	चिक्राय-चिक्रय	चिक्रियिव	चिक्रियिम

अनद्यतने लुट्				भविष्यति लृट्		
क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः	प्र०	क्रेष्यति	क्रेष्यतः	क्रेष्यन्ति
क्रेतासि	क्रेतास्थः	क्रेतास्थ	म०	क्रेष्यसि	क्रेष्यथः	क्रेष्यथ
क्रेतास्मि	क्रेतास्वः	क्रेतास्मः	उ०	क्रेष्यामि	क्रेष्यावः	क्रेष्यामः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विध्यादौ लोट् — **अनद्यतने भूते लङ्**

क्रीणातु क्रीणीतात्	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु	प्र०	अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्
क्रीणीहि-क्रीणीतात्,	क्रीणीतम्	क्रीणीत	म०	अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत
क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम	उ०	अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम

विध्यादौ लिङ् — **आशिषि लिङ्**

क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः	प्र०	क्रीयात्	क्रीयास्ताम्	क्रीयासुः
क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात	म०	क्रीयाः	क्रीयास्तम्	क्रीयास्त
क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम	उ०	क्रीयासम्	क्रीयास्व	क्रीयास्म

भूते लुङ् — **भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ्**

अक्रैषीत्	अक्रैष्टाम्	अक्रैषुः	प्र०	अक्रेष्यत्	अक्रेष्यताम्	अक्रेष्यन्
अक्रैषीः	अक्रैष्टम्	अक्रैष्ट	म०	अक्रेष्यः	अक्रेष्यतम्	अक्रेष्यत
अक्रैषम्	अक्रैष्व	अक्रैष्म	उ०	अक्रेष्यम्	अक्रेष्याव	अक्रेष्याम

'क्री' धातुः आत्मने पदे

लटि — **लिटि**

क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते	प्र०	चिक्रिये	चिक्रियाते	चिक्रियिरे
क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे	म०	चिक्रियिषे	चिक्रियाथे	चिक्रियिढ्वे
क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे	उ०	चिक्रिये	चिक्रियिवहे	चिक्रियिमहे

लुटि — **लृटि**

क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः	प्र०	क्रेष्यते	क्रेष्येते	क्रेष्यन्ते
क्रेतासे	क्रेतासाथे	क्रेताध्वे	म०	क्रेष्यसे	क्रेष्येथे	क्रेष्यध्वे
क्रेताहे	क्रेतास्वहे	क्रेतास्महे	उ०	क्रेष्ये	क्रेष्यावहे	क्रेष्यामहे

लोटि — **लङि**

क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्	प्र०	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्	म०	अक्रीणीथाः	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै	उ०	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विध्यादौ लिङि				आशिषि लिङि		
क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्	प्र०	क्रेषीष्ट	क्रेषीयास्ताम्	क्रेषीरन्
क्रीणीथाः	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्	म०	क्रेषीष्ठाः	क्रेषीयास्थाम्	क्रेषीढ्वम्
क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि	उ०	क्रेषीय	क्रेषीवहि	क्रेषीमहि

लुङि				लृङि		
अक्रेष्ट	अक्रेषाताम्	अक्रेषत	प्र०	अक्रेष्यत	अक्रेष्येताम्	अक्रेष्यन्त
अक्रेष्ठाः	अक्रेषाथाम्	अक्रेढ्वम्	म०	अक्रेष्यथाः	अक्रेष्येथाम्	अक्रेष्यध्वम्
अक्रेषि	अक्रेष्वहि	अक्रेष्महि	उ०	अक्रेष्ये	अक्रेष्यावहि	अक्रेष्यामहि

चुरादिगणः—(१०)

लक्ष—चुरा० उभ० से० सक० दर्शनाङ्कनयोः (देखना, चिह्नितकरना) to notice, to define.

वर्तमाने लट् (पर० प०)				वर्तमाने लट् (आत्मने०)		
ए० क०	द्वि० व०	ब० व०	पु०			
लक्षयति	लक्षयतः	लक्षयन्ति	प्र०	लक्षयते	लक्षयेते	लक्षयन्ते
लक्षयसि	लक्षयथः	लक्षयथ	म०	लक्षयसे	लक्षयेथे	लक्षयध्वे
लक्षयामि	लक्षयावः	लक्षयामः	उ०	लक्षये	लक्षयावहे	लक्षयामहे

परोक्षे लिट्				परोक्षे लिट्		
लक्षयाञ्चकार	लक्षयाञ्चक्रतुः,	लक्षयाञ्चक्रुः	प्र०	ल०चक्रे	ल०चक्राते	ल०चक्रिरे
लक्षयाञ्चकर्थ	लक्षयाञ्चक्रथुः,	लक्षयाञ्चक्र	म०	ल०चकृषे	ल०चक्राथे	ल०चकृढ्वे
लक्षयाञ्चक्र	लक्षयाञ्चकृव	लक्षयाञ्चकृम	उ०	ल०चक्रे	ल०चकृवहे	ल०चकृमहे

अनद्यतने लुट्				अनद्यतने लुट्		
लक्षयिता	लक्षयितारौ	लक्षयितारः	प्र०	लक्षयिता	लक्षयितारौ	लक्षयितारः
लक्षयितासि	लक्षयितास्थः	लक्षयितास्थ	म०	लक्षयितासे	लक्षयितासाथे	लक्षयिताध्वे
लक्षयितास्मि	लक्षयितास्वः	लक्षयितास्मः	उ०	लक्षयिताहे	लक्षयितास्वहे	लक्षयितास्महे

भविष्यति लृट्				भविष्यति लृट्		
लक्षयिष्यति	लक्षयिष्यतः	लक्षयिष्यन्ति	प्र०	लक्षयिष्यते	लक्षयिष्येते	लक्षयिष्यन्ते
लक्षयिष्यसि	लक्षयिष्यथः	लक्षयिष्यथ	म०	लक्षयिष्यसे	लक्षयिष्येथे	लक्षयिष्यध्वे
लक्षयिष्यामि	लक्षयिष्यावः	लक्षयिष्यामः	उ०	लक्षयिष्ये	लक्षयिष्यावहे	लक्षयिष्यामहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विध्यादौ लोट्				विध्यादौ लोट्		
लक्षयतु-तात्,	लक्षयताम्,	लक्षयन्तु	प्र०	लक्षयताम्	लक्षयेताम्	लक्षयन्ताम्
लक्षय-तात्	लक्षयतम	लक्षयत	म०	लक्षयस्व	लक्षयेथाम्	लक्षयध्वम्
लक्षयाणि	लक्षयाव	लक्षयाम	उ०	लक्षयै	लक्षयावहै	लक्षयामहै

अनद्यतने भूते लङ्				अनद्यतने भूते लङ्		
अलक्षयत्	अलक्षयताम्	अलक्षयन्	प्र०	अलक्षयत	अलक्षयेताम्	अलक्षयन्त
अलक्षयः	अलक्षयतम्	अलक्षयत	म०	अलक्षयथाः	अलक्षयेथाम्	अलक्षयध्वम्
अलक्षयम्	अलक्षयाव	अलक्षयाम	उ०	अलक्षये	अलक्षयावहि	अलक्षयामहि

विध्यादौ लिङ्				विध्यादौ लिङ्		
लक्षयेत्	लक्षयेताम्	लक्षयेयुः	प्र०	लक्षयेत	लक्षयेयाताम्	लक्षयेरन्
लक्षयेः	लक्षयेतम्	लक्षयेत	म०	लक्षयेथाः	लक्षयेयाथाम्	लक्षयेध्वम्
लक्षयेयम्	लक्षयेव	लक्षयेम	उ०	लक्षयेय	लक्षयेवहि	लक्षयेमहि

आशिषि लिङ्				आशिषि लिङ्		
लक्ष्यात्	लक्ष्यास्ताम्	लक्ष्यासुः	प्र०	लक्षयिषीष्ट	लक्षयिषीयास्ताम्	लक्षयिषीरन्
लक्ष्याः	लक्ष्यास्तम्	लक्ष्यास्त	म०	लक्षयिषीष्ठाः	लक्षयिषीयास्थाम्	लक्षयिषीढ्वम्
लक्ष्यासम्	लक्ष्यास्व	लक्ष्यास्म	उ०	लक्षयिषीय	लक्षयिषीवहि	लक्षयिषीमहि

भूते लुङ्				भूते लुङ्		
अललक्षत्	अललक्षताम्	अललक्षन्	प्र०	अललक्षत	अललक्षेताम्	अललक्षन्त
अललक्षः	अललक्षतम्	अललक्षत	म०	अललक्षथाः	अललक्षेथाम्	अललक्षध्वम्
अललक्षम्	अललक्षाव	अललक्षाम	उ०	अललक्षे	अललक्षावहि	अललक्षामहि

भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ्

अलक्षयिष्यत	अलक्षयिष्येताम्	अलक्षयिष्यन्त
अलक्षयिष्यथाः	अलक्षयिष्येथाम्	अलक्षयिष्यध्वम्
अलक्षयिष्ये	अलक्षयिष्यावहि	अलक्षयिष्यामहि

भविष्यति क्रियातिपत्तौ लृङ्

अलक्षयिष्यत्	अलक्षयिष्यताम्	अलक्षयिष्यन्	प्र०
अलक्षयिष्यः	अलक्षयिष्यतम्	अलक्षयिष्यत	म०
अलक्षयिष्यम्	अलक्षयिष्याव	अलक्षयिष्याम	उ०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कण्ड्वादि–प्रकरण

महर्षि पाणिनि ने व्याकरण में एक गणपाठ का भी प्रकरण रचा है। इस गणपाठ में 'कण्ड्वादि' नाम का एक गण है। इस गण के अन्तर्गत शब्दों को धातु और प्रातिपादिक दोनों प्रकार का माना जाता है। प्रातिपदिक मानने पर उनके रूप षड्लिङ्ग (प्रथम भाग में वर्णित) के नियमानुसार सातों विभक्तियों में चलाये जाते हैं। किन्तु जब उनको धातु मानते हैं, तब उनसे आगे 'यक्' प्रत्यय स्वार्थ में लगा दिया जाता है।

'कण्डू' धातु (कण्डूञ्) गात्रविघर्षणे = शरीर को रगडना, खुजलाना के अर्थ में है। किन्तु जब 'कण्डू' शब्द प्रातिपदिक होगा तब उसका अर्थ 'खुजलाहट' होगा और वह नित्य स्त्रीलिंग रहेगा तथा 'वधू' शब्द की तरह उसके रूप सातों विभक्तियों में चलेंगे। 'वधू' शब्द के रूप प्रथमभाग में देख लेने चाहिये।

'कण्डूञ्' धातु उभयपदी होने से उसके रूप परस्मैपद तथा आत्मने पद दोनों में चलेंगे। परस्मैपद में 'पठ्' धातु की तरह और आत्मनेपद में 'एध्' धातु की तरह रूप चलेंगे।

लट्	(पर०)	कण्डूयति।	(आत्मने०)	कण्डूयते।
लिट्	(पर०)	कण्डूयाञ्चकार कण्डूयाम्बभूव कण्डूयामास	(,,)	कण्डूयाञ्चक्रे कण्डूयाम्बभूव कण्डूयामास
लुट्	(,,)	कण्डूयिता	(,,)	कण्डूयिता
लृट्	(,,)	कण्डूयिष्यति	(,,)	कण्डूयिष्यते
लोट्	(,,)	कण्डूयतु-तात्	(,,)	कण्डूयताम्
लङ्	(,,)	अकण्डूयत्	(,,)	अकण्डूयत
वि० लिङ्	(,,)	कण्डूयेत्	(,,)	कण्डूयेत
आ० लिङ्	(,,)	कण्डूय्यात्	(,,)	कण्डूयिषीष्ट
लुङ्	(,,)	अकण्डूयीत्	(,,)	अकण्डूयिष्ट
लृङ्	(,,)	अकण्डूयिष्यत्	(,,)	अकण्डूयिष्यत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कण्ड्वादिशब्द	धातु की अवस्था में रूप और अर्थ	प्रतिपदिक की अवस्था में रूप और अर्थ
१—कण्डूञ् (कण्डू)	कण्डूयति–ते=रगड़ता है खुजलाता है।	कण्डूः (स्त्री० वधू के समान) खुजली
२—मन्तु	मन्तूयति=क्रुद्ध करता है, तथा होता है।	मन्तुः (पुं० भानु के समान) अपराध, दोष।
३—खेला	खेलायति = खेलता है।	खेला (स्त्री० रमा के समान) खेल
४—सुख	सुख्यति=सुखी होता है	सुखम् (नपुं० ज्ञान के समान) सुख, आनन्द
५—दुःख	दुःख्यति=दुखी होता है।	दुःखम् (नपुं० ज्ञान के समान) दुःख, कष्ट।
६—सपर	सपर्यति=पूजा करता है।	सपर्या (स्त्री० नदी के समान) पूजा सेवा
७—महीङ् (मही)	महीयते=पूजित होता है।	मही (स्त्री० नदी के समान पृथ्वी)
८—वल्गु	वल्गूयति=पूजा करता है, प्रशंसा करता है।	वल्गु (विशेषण) सुन्दर।
९—हृणीङ (हृणी)	हृणीयते=लज्जित होता है।	हृणी (स्त्री० नदी के समान) लज्जा।
१०—भिषज्	भिषज्यति=चिकित्सा करता है।	भिषक् (पुं० ऋत्विज् के समान) वैद्य।
११—लेट्	लेट्यति=लेटता है।	लेटनम् (नपुं०, ज्ञान के समान) लेटना
१२—लोट्	लोट्यति=लोट लगाता है।	लोटनम् (नपुं०, ज्ञान के समान) लोटना
१३—मेधा	मेधायति=शीघ्र समझता है।	मेधा (स्त्री० रमा के समान) बुद्धि।
१४—उषस्	उषस्यति=प्रातःकाल होता है।	उषा (स्त्री० वेधस् के समान) उषःकाल।
१५—पयस्	पयस्यति (गौः, अजा) गाय, बकरी दूध-देती है।	पयः (नपुं० यशस् के समान) दूध, जल।

—*:*—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृदन्त-शब्द प्रकरणम्

इस पुस्तक के प्रथम भाग में संज्ञा (नाम) के आगे 'सुप्' प्रत्यय (सात विभक्तियों के रूप में) तथा द्वितीय भाग में इस प्रकरण के पूर्व धातुओं के आगे 'तिङ्' प्रत्ययों को (लकार विभक्तियों के रूप में) बता चुके हैं। अब यह बताया जा रहा है कि इनके अतिरिक्त नामों और धातुओं के बाद अन्य प्रत्यय भी आते हैं। इन्हें क्रमशः तद्धित प्रत्यय और कृत्प्रत्यय कहते हैं। तद्धित-प्रत्ययान्त शब्दों को तद्धितान्त और कृत्-प्रत्ययान्त शब्दों को कृदन्त कहते हैं।

वृत्ति—दो अथवा उससे भी अधिक पदों के द्वारा बताये जाने वाले अर्थ को कभी एक पद से ही बताया जा सकता है। जैसे—'वासुदेवस्य अपत्यं पुमान् = वसुदेव की पुरुष सन्तान अर्थात् पुत्र। इतने अर्थ को 'वासुदेवः' इस एक पद से ही बताया जा सकता है। इस लघु मार्ग (सरलमार्ग) को 'वृत्ति' कहते हैं। यह 'वृत्ति' पांच प्रकार की है। [१] कृद्वृत्ति, [२] तद्धित-वृत्ति [३] सनाद्यन्तधातुवृत्ति, [४] एकशेषवृत्ति, और [५] समासवृत्ति। इन पांचों वृत्तियों को एक पद्य में बताया गया है—

"कृत्तद्धितसनाद्यन्तधातुभ्यश्चैकशेषतः।
समासादपि विद्वद्भिः कथिताः पञ्च वृत्तयः।।

कुछ लोग क्लिष्टशब्दरचना (जिसकी व्याख्या करना आवश्यक होता है) को वृत्ति' कहते हैं। वृत्ति' का अर्थ है परार्थाभिधान। कहा भी है—"परार्थाभिधानं वृत्तिः।" अर्थात् दूसरे (प्रत्यय, पदार्थ) के अर्थ को कहना। दोनों की पदावलि में ही भेद हैं किन्तु तात्पर्य एक (समान) है।

१—कृद्वृत्ति—धातुओं के साथ 'कृत्' प्रत्ययों को जोड़कर शब्दरूप तैयार करना धातुओं के साथ 'कृत्' प्रत्यय जोड़ने पर संज्ञा, विशेषण, अव्यय के रूप बनते हैं। जैसे धातु से संज्ञा—'नी' धातु से 'अक' प्रत्यय = नायक, 'कृ' धातु से 'तृच्' प्रत्यय = कर्तृ। यहाँ 'अक' 'तृच्' ये 'कृत्' प्रत्यय हैं और 'नायक' 'कर्तृ' कृदन्त शब्द हैं। 'नायक' और 'कर्तृ' ये संज्ञा शब्द तयार किये गये। इनके रूप अन्य संज्ञाओं की तरह सातों विभक्तियों में होंगे।

धातु से अव्यय—'गम्' धातु से (तुमुन्)=गन्तुम्। यहां 'तुमुन्' 'कृत्' प्रत्यय है और—'गन्तुम्' कृदन्त अव्यय है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'जि' धातु से (क्त्वा) = जित्वा। यहां 'क्त्वा' 'कृत्' प्रत्यय है ('क्त्वा' प्रत्यय का 'त्वा' शेष रहता है), और 'जित्वा' कृदन्त अव्यय है। अव्यय सदा एक रूप रहते हैं।

कहा भी है—सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥

धातु से विशेषण—'क्षिप्' धातु से (क) = क्षिपः। 'क्षिपतीति'- क्षिपः= फेंकनेवाला। यहां 'क' कृत् प्रत्यय है और 'क्षिपः' विशेषण है।

अव्ययों को छोड़कर शेष कृदन्त शब्द संज्ञा, विशेषण और क्रिया का भी कार्य करते हैं। संज्ञा या विशेषण का जब काम करते हैं तब उन कृदन्त शब्दों के रूप तीनों लिंगों और वचनों तथा सातों विभक्तियों में बना लिये जाते हैं। और क्रिया का जब काम करते हैं तब उसके रूप तीनों लिंगों और वचनों तथा प्रथमा विभक्ति में बना लिये जाते हैं। जैसे—कार्यं कृतम्, कार्ये कृते, कार्याणि कृतानि। कविता कृता, कविते कृते, कविताः कृताः, पाठः कृतः, पाठौ कृतौ, पाठाः कृताः। इसी तरह सर्वत्र समझ लेना चाहिये।

पाणिनिमुनि ने उपर्युक्त आशय को एक छोटे से सूत्र के द्वारा बता दिया है।

"धातोः" (३।१।९१) धातु में जिस प्रत्यय को जोड़कर संज्ञा, विशेषण, अथवा अव्यय बनता है, उसे 'कृत्' प्रत्यय कहते हैं।

'कृत्' और 'तिङ्' प्रत्ययों में क्या भेद है ?

इसका उत्तर पाणिनि ने एक सूत्र के द्वारा दिया है। 'कृदतिङ्' (३।१।९३) कृदन्त शब्द, संज्ञा, विशेषण अथवा अव्यय होते हैं। क्रिया नहीं, किन्तु तिङन्त सदा क्रिया ही होते हैं।

कृत् और तद्धित में यह अन्तर है कि तद्धित हमेशा किसी सिद्ध संज्ञा, विशेषण, अव्यय अथवा क्रिया के अनन्तर जोड़कर अन्य संज्ञा, विशेषण, अव्यय, क्रिया आदि बनाने के लिये होता है, किन्तु 'कृत्' धातु में ही जोड़ा जाता है।

कभी कभी कोई कृदन्त भी क्रिया का काम दे जाते हैं। जैसे—स गतः = वह गया, इस वाक्य में 'गतः' शब्द, क्रिया का काम दे रहा है। किन्तु वास्तव में वह विशेषण है, ऐसी जगह (अस्ति) क्रिया छिपी रहती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसी जगह विशेषण के लिङ्ग, वचन और कारक वे ही होते हैं, जो उसके विशेष्य के। यहां पर 'गतः' पद (पुंल्लिङ्ग की प्रथमा, एक वचन का रूप 'सः' के कारण ही संभव हो सका है। 'कृत्' प्रत्ययों के मुख्य तीन भेद हैं—

'कृत्य', 'कृत्' और उणादि।

कृत्य प्रत्यय (विधि कृदन्त)

Potential passive participles.

"कृत्याः" (३।१।९५) कृत्य प्रत्यय सात हैं—

तव्यत्, तव्य, अनीयर्, केलिमर्, यत्, क्यप्, ण्यत्।

किस अर्थ में इनका प्रयोग किया जाता है ? 'तयोरेव कृत्यक्तखलार्थाः'–(३।४।७०) हमेशा भाव और कर्म अर्थ में अर्थात् भाववाच्य और कर्मवाच्य में ही इन प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। कर्तृवाच्य में इनका प्रयोग नहीं किया जाता। "कृत्यल्युटो बहुलम्"–इनका भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयाग होता है। अंगरेजी में जो काम पोटेंशियल पार्टिसिपल–(Potential porticiple) से लिया जाता है, वही काम संस्कृत में कृत्यप्रत्ययान्त शब्द करते हैं। संज्ञाओं के विशेषण का भी काम इनसे लिया जाता है।

जैसे—पक्तव्याः माषाः—वे उड़द, जो पकाने जाने चाहिये, कर्तव्यं कर्म'–वह काम, जिसे करना चाहिये, 'गन्तव्या नगरी'–वह नगरी, जहाँ जाना चाहिये, 'स्नानीयं चूर्णम्'–वह चूर्ण, जिससे स्नान किया जाय, 'दानीयो विप्रः'–वह ब्राह्मण, जो दान देने योग्य हो। इन उदाहरणों से यह समझ में आ जाता है कि हिन्दी में जो अर्थ 'चाहिये' 'योग्य' इत्यादि के द्वारा प्रकट किया जाता है, प्रायः वही अर्थ संस्कृत में कृत्य-प्रत्ययान्त शब्द के द्वारा प्रकट किया जाता है। 'चाहिये' का भाव कर्तृवाच्य में प्रायः–विधिलिङ् से भी सूचित किया जाता है। जैसे–'रामः सीतां पुनः गृह्णीयात्'–राम को चाहिये कि सीता को फिर से ग्रहण करे, अथवा राम को योग्य है कि सीता को फिर ग्रहण करे। 'भृत्यः स्वामिनं' सेवेत सेवक स्वामी की सेवा करे, या सेवक को स्वामी की सेवा करनी चाहिये अथवा करनी योग्य है। इस प्रकार की विधिलिङ् की क्रिया को कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य या भाववाच्य में परिवर्तित करना हो तो कृत्यप्रत्ययान्त शब्दों को प्रयोग में लाना चाहिये। जैसे—रामेण सीता पुनः गृहीतव्या, भृत्येन स्वामी सेवनीयः। पीछे बता चुके हैं कि कृदन्त शब्द क्रिया नहीं होते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्दिष्ट वाक्य प्रयोगों में भी गृहीतव्या और सेवनीयः क्रिया नहीं हैं। इन प्रयोगों वे विशेषण हैं। अगरेजी में इन्हें प्रेडिकेटिव एड्जेक्टिव (predicative adjective) कहते हैं। कृत्यप्रत्ययान्त शब्दों के रूप, संज्ञाओं की तरह तीनों लिंगों में चलते हैं—पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में अकारान्त। और स्त्रीलिंग में आकारान्त।

"तव्यत्तव्यानीयरः – (३।१।९२)

"केलिमर् उपसंख्यानम्–(वा०)

'तव्यत्' (तव्य), तव्य, अनीयर् (अनीय) और केलिमर् (एलिम) ये प्रत्यय प्रायः सभी धातुओं से लगाये जा साकते हैं। तव्यत् और तव्य में कोई विशेष अन्तर नहीं है। 'तव्यत्' के 'त्' से केवल इतना सूचित होता है कि इस प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द 'स्वरित' होते हैं, उसी प्रकार 'अनीयर्' के 'र्' से सूचिद होता है कि अनीयर् में अन्त होने वाले शब्द मध्योदात्त होते हैं। स्वर का ये बारीकियां केवल वैदिक संस्कृत काम आती है, भाषा की संस्कृत में नहीं। इसलिये तव्यत् और तव्य को समान ही समझना चाहिये और अनीयर् को अनीय। केलिमर् के क् और र् का लोप हो जाता है और केवल 'एलिम' को धातु में जोडा जाता है। यह प्रत्यय कतिपय सकर्मक धातुओं में ही जुडा हुआ प्रायः उपलब्ध होता है। इन प्रत्ययों के पूर्व धातु के अन्तिम स्वर को अथवा यदि अन्तिम स्वर न हो तो उपधावाले ह्रस्व का गुण हो जाता है और सन्धि के स्वर साधारण नियम लगते हैं। जो धातुएँ सेट् होती हैं, उनमें प्रत्यय और धातु के बीच में 'इ' आ जाती है। जो धातुएँ अनिट् होती हैं उनमें नहीं और जो वेट् होती हैं उनमें विकल्प से 'इ' आती है।

वाक्य में इन प्रत्ययों का प्रयोग करते समय यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि इनके साथ कर्ता में तृतीया होती है। इन प्रत्ययों का प्रयोग, सकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य में और अकर्मक धातुओं से भाववाच्य में किया जाता है।

कर्मवाच्य में जैसे—किं कर्त्तव्यं मयाऽधुना–मुझे क्या करना चाहिये। तेन धर्मः अनुसरणीयः—उसे धर्म का अनुसरण करना चाहिये। त्वया भारो वहनीयः—तुम्हें भार वहन करना चाहिये। 'कृत्यानां कर्तरि वा' कभी कभी कृत्य प्रत्ययों के साथ कर्ता में षष्ठी भी होती है। जैसे—'त्वया' अथवा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'तव', 'मया' अथवा 'मम' सेव्यो हरिः—तुम्हारे अथवा मेरे द्वारा हरि सेवनीय हैं। 'गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणाम्'—तुम्हे अलका नगरी जाना है, जहां यक्षों के राजा रहते हैं।

भाववाच्य में, जैसे—मया धार्मिकैः सह स्थातव्यम्—मुझे धार्मिकों के साथ रहना चाहिये। भाववाच्य में तव्यप्रत्ययान्त शब्द सदा नपुंसकलिंग और एक वचन में ही रखना चाहिये।

नपुंसक लिंग वाले रूप भवितव्यम् और भाव्यम् का भाव वाच्य में प्रयोग होता है, इसके साथ कर्ता में तृतीया होती है जैसे—'अत्र केनापि कारणेन भवितव्यम्—इसमें अवश्य कोई कारण होना चाहिये। उसी तरह—'अस्य शब्दानुरूपेण पराक्रमेण भावितव्यं अथवा भाव्यम्—अधिक संभव है कि इसके शब्द के अनुकूल ही इसका बल भी होगा। 'आर्यया प्रवहणमारूढया भवितव्यम्—आर्या संभवतः गाडी में बैठी हुई होंगी।

कृत्यप्रत्ययान्तों का कभी कभी संज्ञा शब्द के तुल्य भी प्रयोग होता है। जैसे—'भवितव्यं भवत्येव'-होनहार होकर ही रहती है 'प्रष्टव्यं पृच्छति'—पूछने योग्य बात पूछता है सातों कृत्य प्रत्ययों के प्रयोगार्थ धातुरूप—

(सेट्)	धातु	तव्य	अनीय
	पठ्	पठितव्य	पठनीय
	चर्	चरितव्य	चरणीय
	भक्ष्	भक्षयितव्य	भक्षणीय
	शंस्	शंसितव्य	शंसनीय
	कथ	कथयितव्य	कथनीय
	चुर	चोरयितव्य	चोरणीय
	पूज	पूजयितव्य	पूजनीय
	अस्	भवितव्य	भवनीय
	आस्	आसितव्य	आसनीय
	चिन्त	चिन्तयितव्य	चिन्तनीय
	जन्	जनितव्य	जननीय
	जागृ	जागरितव्य	जागरणीय
	तड	ताडयितव्य	ताडनीय
	तन	तनितव्य	तननीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिव्	देवितव्य	देवनीय	भू	भवितव्य	भवनीय
भ्रम्	भ्रमितव्य	भ्रमणीय	मुद्	मोदितव्य	मोदनीय
मुष्	मोषितव्य	मोषणीय	रक्ष्	रक्षितव्य	रक्षणीय
रुद्	रोदितव्य	रोदनीय	वद्	वदितव्य	वदनीय
वृध्	वर्धितव्य	वर्धनीय	वृत्	वर्तितव्य	वर्तनीय
विद्	वेदितव्य	वेदनीय	शम्	शमितव्य	शमनीय
शी	शयितव्य	शयनीय	सेव्	सेवितव्य	सेवनीय
हस्	हसितव्य	हसनीय	जन्	जनितव्य	जननीय

(अनिट्) धातु—

गम्	गन्तव्य	गमनीय	नी	नेतव्य	नयनीय
चि	चेतव्य	चयनीय	दा	दातव्य	दानीय
भुज्	भोक्तव्य	भोजनीय	अद्	अत्तव्य	अदनीय
सृज्	स्रष्टव्य	सर्जनीय	छिद्	छेत्तव्य	छेदनीय
भिद्	भेत्तव्य	भेदनीय	पच्	पक्तव्य	पचनीय
दृश्	द्रष्टव्य	दर्शनीय	इष्	एष्टव्य	एषणीय
इ	एतव्य	अयनीय	आप्	आप्तव्य	आपनीय
अधि + इ	अध्येतव्य	अध्ययनीय	कृ	कर्तव्य	करणीय
क्री	क्रेतव्य	क्रयणीय	गम्	गन्तव्य	गमनीय
ग्रह्	ग्रहीतव्य	ग्रहणीय	जि	जेतव्य	जयनीय
गै	गातव्य	गानीय	वादि	वादयितव्य	वादनीय
नृत्	नर्तितव्य	नर्तनीय	ज्ञा	ज्ञातव्य	ज्ञानीय
दुह्	दोग्धव्य	दोहनीय	नम्	नन्तव्य	नमनीय
ब्रू	वक्तव्य	वचनीय	मृ	मर्तव्य	मरणीय
पच्	पक्तव्य	पचनीय	नश्	नष्टव्य	नशनीय
पा	पातव्य	पानीय	प्रच्छ	प्रष्टव्य	प्रच्छनीय
लभ्	लब्धव्य	लभनीय	श्रु	श्रोतव्य	श्रवणीय
दृश्	द्रष्टव्य	दर्शनीय	शक्	शक्तव्य	शकनीय
सह्	सोढव्य	सहनीय	स्तु	स्तोतव्य	स्तवनीय
स्पृश्	स्प्रष्टव्य	स्पर्शनीय	स्था	स्थातव्य	स्थानीय
स्मृ	स्मर्तव्य	स्मरणीय	हन्	हन्तव्य	हननीय
हु	होतव्य	हवनीय	भी	भेतव्य	भयनीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एलिम प्रत्यय से बने रूप—

छिद् छिदेलिम गम् गमेलिम भिद् भिदेलिम पठ् पठेलिम
पच् पचेलिम लिख् लिखेलिम

अचोयत् (३।१।९७), पोरदुपधात् (३।१।९८)—कृत्य प्रत्यय यत् (य) केवल उन धातुओं में जोड़ा जाता है, जिनके अन्त में कोई स्वर हो अथवा जिनके अन्त में पवर्ग का कोई वर्ण हो तथा उपधा (अन्तिम वर्ण का पूर्व वर्ण) में अकार हो। तब 'यत्' के पूर्व स्वर को गुण होता है। यदि 'आ' हो तो उसके स्थान पर 'ईद्यति' (६।४।६५) सूत्र से 'ई' होता है और पश्चात् गुण (ए) होता है। 'यत्' प्रत्ययान्त कतिपय धातुओं के रूप—

दा + यत्–द् + ई + य=द् + ए + य=देय गै + यत्–गी + य=गे + य=गेय
छो + यत्–छी + य=छे + य=छेय ची + यत्–चे + य=चेय
नो + यत्–ने + य=नेय जप् + यत्–जप् + य=जप्य
शप् + यत–शप् + य=शप्य लभ् + यत्–लभ् + य=लभ्य
आ + लभ् + यत्=आलम्भ्य उप + लभ् + यत्=उपलम्भ्य

"आङो यि"—उपात् प्रशंसायाम्—(७।१।६५–६६)

यदि 'लभ्' धातु के पूर्व 'आ' उपसर्ग हो अथवा प्रशंसा वाचक 'उप' उपसर्ग हो और आगे यकारादि प्रत्यय हो तो बीच में 'नुम्' (न्=म्) आजाता है।

जैसे—उपलम्भ्यः साधुः—साधु प्रशंसनीय होता है। और वह अर्थ न होनेपर 'उपलभ्य' रूप बनेगा, उसका अर्थ होगा 'उलाहना योग्य'।

कतिपय व्यंजनान्त धातुओं में भी 'यत्' प्रत्यय लगता है, जिनमें प्रधान ये हैं—

"तकिशसिचतियतिजनिभ्यो यद्वाच्यः"—(वा०)
तक् + यत्–तक्यम् शस् + यत्–शस्यम्
चत् + यत्–चत्यम् यत् + यत्–यत्यम् जन् + यत्–जन्यम्

"हनो वा यद्वधश्चवक्तव्यः"—(वा०)

हन् + यत्–वध्यः (यत् के पूर्व हन् का रूप वध् हो जाता है) इसमें विकल्प से 'ण्यत्' लगाकर 'घात्यः' रूप भी होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"शकि सहोश्च"—(३।१।९९)

शक् + यत्–शक्यम्   सह् + यत्–सह्यम्

'गदमदचरयमश्चाऽनुपसर्गे'—३।१।१००

गद् + यत्–गद्यम्   मद् + यत्–मद्यम्

चर् + यत्–चर्यम्   यम् + यत्–यम्यम्

'वह्यं करणम्'—(३।१।१०२)

वह् + यत्=वह्यम् (वह्यं शकटम्=ढोने की गाड़ी) करण=साधन का अर्थ न होनेपर वाह्यम्—(वोढव्यम्) रूप बनता है, 'ण्यत्' प्रत्यय होता है।

'अर्यः स्वामिवैश्ययोः'—(३।१।१०३)

ऋ + यत्=अर्य=स्वामी अथवा वैश्य, इन्हीं अर्थों में 'यत्' प्रत्यय किया जाता है। अन्य अर्थ में अर्थात् ब्राह्मण के लिये प्रयोग होने पर 'आर्यः' रूप बनेगा। 'ण्यत्' प्रत्यय होगा।

'एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्'—(३।१।१०९)

'मृजेर्विभाषा' (३।१।११३)   'भृञोऽसंज्ञायाम्' (३।१।११२)

'विभाषा कृवृषोः' (३।१।१२०)

'क्यप्' (य)—कुछ परिगणित धातुओं से ही लगाया जाता है, और उसके पहिले यदि धातु का अन्तिम स्वर ह्रस्व हो तो धातु और प्रत्यय के मध्य में 'त्' होता है। जैसे—'स्तु'+क्यप्=स्तु+त्+य=स्तुत्य। यहांपर गुण नहीं होता। जिन धातुओं से 'क्यप्' किया जाता है, वे धातु ये हैं—

जाना–'इ'+क्यप् (य)= इत्य–जाने योग्य।

'स्तु'+ „ =स्तुत्य   'शास्'+क्यप् = शिष्य

'वृ'+ „ =वृत्य   'दृ'+ „='आ'+दृत्य–आदर के योग्य

जुष्+ „ =जुष्य–सेवने योग्य

मृज्+ „ =मृज्य–पवित्र करने योग्य भृ+क्यप् = भृत्य

कृ+ „ =कृत्य   वृष्+क्यप् = वृष्य—सींचने योग्य

विशेष—मृज्, भृ, कृ, वृष् धातुओं के साथ 'क्यप्' विकल्प से ही होता है। 'क्यप्' प्रत्यय के न होनेपर 'ण्यत्' प्रत्यय होता है, तब मार्ग्य, भार्य कार्य, वर्ष्य—शब्द बनते हैं। 'ऋहलोर्ण्यत्'—जिन धातुओं का अन्तिम वर्ण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऋकार अथवा व्यञ्जन हो, तो उनके आगे 'ण्यत्' (य) प्रत्यय लगाया जाता है, और उसके पूर्व धातु के स्वर की वृद्धि की जाती है। उपधा में यदि 'अ' हो तो उसके स्थान में वृद्धि (आ) होता है, किन्तु यदि कोई अन्य स्वर हो तो उसे गुण हो जाता है। 'चजोः कुघिण्यतोः' (७।३।५२)—ण्यत् तथा घित् (जिसमें 'घ' की इत्संज्ञा हुई हो) प्रत्यय लगने पर पूर्व के च् और ज् की जगह क् और ग् क्रमशः किये जाते हैं 'न कादेः'—(७।३।५९)—किन्तु धातु का आरंभ यदि कवर्ग से होता हो (जैसे गर्ज), तो यह परिवर्तन नहीं होगा। तात्पर्य यह है—ऋकारान्त धातुओं को छोड़कर अन्य स्वरांत धातुओं में 'यत्' प्रत्यय लगता है और ऋकारांत धातुओं से 'ण्यत्' प्रत्यय किया जाता है। उसी प्रकार 'यत्' और 'क्यप्' लगने वाले व्यंजनान्त धातुओं को छोड़कर अन्य धातुओं से 'ण्यत्' होता है।

कृ+ण्यत्—क्+आर (वृद्धि)+य = कार्य।

पठ्+ण्यत्—प्+आ+ठ्+य = पाठ्य (उपधा के 'अ' को वृद्धि)

वृष्+ण्यत्—व्+अर्+ष्+य = वर्ष्य (उपधा के 'ऋ' को गुण)

पच्+ण्यत्—प+आ+क्+य पाक्य—पकाने योग्य

यहाँ उपधा के 'अ' को वृद्धि और 'च्' को क् हुआ है। मृज्+ण्यत्—म्+आर्+ग्+य = मार्ग्य—पवित्र करने योग्य।

यहाँ उपधा के 'ऋ' को वृद्धि और ज् को ग् हुआ है। किन्तु 'यज-याच-रुच-प्रवचर्चश्च'—(७।३।६६)।

'त्यजेश्च'—(वार्तिक)—च और ज के स्थान में क् और ग् के होने का नियम 'यज्' 'याच्' 'रुच्' 'प्रवच्' 'ऋच्' 'त्यज्' धातुओं में नहीं लगता। जैसे—याज्य (यज्ञ में देने योग्य), 'याच्य'—(मांगने योग्य), रोच्य—(प्रकाश करने योग्य), 'प्रवाच्य'—(ग्रन्थविशेष), 'अर्च्य'—(पूज्य), 'त्याज्य'—(त्यागने योग्य)। 'भोज्यं भक्ष्ये'—(७।३।६९)—'भुज्' के दोनों रूप होते हैं—भोज्य (खाने योग्य), 'भोग्य' (भोग करने योग्य) उसी तरह 'वचोऽशब्द-संज्ञायाम्'—(७।३।६७)—'वच' के भी 'वाच्य' (कहने योग्य), और 'वाक्य' (पदसमूह) ये दो रूप होते हैं।

'ओरावश्यके'—(३।१।१२५)—यदि आवश्यकता का ज्ञान कराना हो, तो उकारान्त अथवा ऊकारान्त धातुओं से भी 'ण्यत्' प्रत्यय होता है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसे —श्रू + ण्यत् = श्राव्य (अवश्य सुनने योग्य)।
पू + ण्यत् = पाव्य (अवश्य पवित्र करने योग्य),।
'यु' + ण्यत् = याव्य (अवश्य मिलाने योग्य)
लू + ण्यत् = लाव्य (अवश्य काटने योग्य)

'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः'-(३।४।७०) इस नियम के अनुसार पहिले बता चुके हैं कि कृत्य प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग भाववाच्य और कर्मवाच्य में ही किया जाता है। किन्तु कुछ कृत्यप्रत्ययान्त शब्दों का कर्तृवाच्य में भी प्रयोग होता है। जैसे—'वसे स्तव्यत् कर्तरि णिच्च—(वार्ति०)

'भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा'-(३।४।६८)
'वस्' + तव्य = वास्तव्यः (रहने वाला) इस अर्थ में 'णिच्' भी होता है, और णिच् होने के कारण वृद्धी होती है, तब वस् का 'वास्' रूप होता है।

भू + यत् = भव्यः (होने वाला)
गै + यत् = गेयः (गाने वाला)
प्रवच् + अनीयर् = प्रवचनीयः (व्याख्यान करने वाला)
उपस्था + अनीयर् = ऊपस्थानीयः (निकट खड़ा होने वाला)
जन् + यत् = जन्यः (पैदा होने वाला)
आप्लु + ण्यत् = आप्लाव्यः (तैरने वाला)
आपत् + ण्यत् = आपात्यः (गिरनेवाला)

'भव्य' से लेकर 'आपात्यः' तक के शब्दों का प्रयोग कर्तृवाच्य में विकल्प से होता है। कृत्य प्रत्ययान्त होने के कारण उनका प्रयोग कर्मवाच्य और भाववाच्य में तो होता ही है। जैसे-कर्तृवाच्य में—गेयः साम्नामयम्-यह साम का गाने वाला है। उसी तरह कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में-भव्योऽयम्, भव्यमनेन। इसी प्रकार अन्य शब्दों के विषय में भी समझना चाहिये।

'कृत्' प्रत्ययों के मुख्य तीन भेदों में से कृत्य प्रत्ययों का निरूपण अभी तक किया गया। अब कृत् प्रत्ययों को बताया जायगा। यद्यपि 'कृत्' कहने से कृत्य, कृत्, और उणादि तीनों प्रकार के प्रत्ययों का ज्ञान होता है, तथापि कृत्य और उणादि प्रत्ययों को पृथक् बताये जाने के कारण उनसे बचे हुए कृत् प्रत्यय ही हैं, यह सूचित करने के लिये उन्हें 'कृत्' कह दिया जाता है। इन कृत् प्रत्ययों को लगाकर कुछ शब्द ऐसे तैयार होते हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिनके रूप चलाये जाते हैं और कुछ शब्दों के नहीं चलाये जाते, उन्हें आगे बतावेंगे।

भूतकाल के कृत् प्रत्यय

अंग्रेजी में जिसे पास्ट पार्टिसिपल (Past Participle) कहते हैं उसे ही भूतकाल का कृत् प्रत्यय कहा जाता है। 'भूते' (३।२।८४) भूतकाल के अर्थ में 'क्तक्तवतू निष्ठा'–(१।१।२६) मुख्यतया दो प्रत्यय बताये गये हैं 'क्त' (त) और 'क्तवतु' (तवत्), इन दोनों प्रत्ययों को 'निष्ठा' कहते हैं। 'निष्ठा' शब्द का यौगिक अर्थ है 'समाप्ति'। 'क्त' और क्तवतु' किसी कार्य की समाप्तिका बोध कराते हैं, इसी कारण उसे निष्ठा (समाप्ति) कहते हैं। जैसे—'तेन भुक्तम्' यहाँ 'भुज्' धातु में 'क्त' प्रत्यय जोड़ देने से यह पता चला कि भोजन का कार्य समाप्त हो गया, इसी तरह 'सः अपराधं कृतवान्' यहाँ 'कृ' धातु से 'क्तवतु' प्रत्यय के जुड़ने से यह स्पष्ट होता है कि उसने अपराध कर डाला, करने का कार्य समाप्त हो गया। तात्पर्य यह है कि 'क्त' और 'क्तवतु' ये समाप्ति बोधक प्रत्यय हैं। ये दोनों प्रत्यय प्रायः सभी धातुओं के अनन्तर भूतकाल अर्थात् समाप्ति का अर्थ बताने के लिये जोड़े जाते हैं। उनके 'क्' और 'उ' का लोप हो जाता है। और 'त' तथा 'तवत्' शेष रह जाता है। इनसे तैयार हुए शब्दों के रूप तीनों लिंगों और सातों विभक्तियों में विशेष्य के अनुसार चलते हैं। यदि विशेष्य पुँल्लिङ्ग हुआ तो पुँल्लिङ्ग, यदि विशेष्य स्त्रीलिङ्ग हुआ तो स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग हुआ तो नपुंसकलिङ्ग। 'क्त' प्रत्ययान्त शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में अकारान्त और स्त्रीलिङ्ग में आकारान्त होते हैं। उसी तरह 'क्तवतु' प्रत्ययान्त शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में तकारान्त (भगवत् के समान) और स्त्रीलिङ्ग में ईकारान्त (नदी के समान) होते हैं।

कुछ धातुओं के क्तान्त और क्तवत्वन्त रूप तीनों लिङ्गों में प्रथमा के एकवचन में अभ्यासार्थ दे रहे हैं—

'क्त'—प्रत्ययान्त

धातु०	पुँ०	न०	स्त्री०
पठ्—	पठितः	पठितम्	पठिता
स्ना—	स्नातः	स्नातम्	स्नाता
पा—	पातः	पातम्	पाता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भू—	भूतः	भूतम्	भूता
कृ—	कृतः	कृतम्	कृता
त्यज्—	त्यक्तः	त्यक्तम्	त्यक्ता
तृप्—	तृप्तः	तृप्तम्	तृप्ता
शक्—	शक्तः	शक्तम्	शक्ता
सिच्—	सिक्तः	सिक्तम्	सिक्ता

क्तवतु—प्रत्ययान्त

पठितवान्	पठितवत्	पठितवती
स्नातवान्	स्नातवत्	स्नातवती
पातवान्	पातवत्	पातवती
भूतवान्	भूतवत्	भूतवती
कृतवान्	कृतवत्	कृतवती
त्यक्तवान्	त्यक्तवत्	त्यक्तवती
तृप्तवान्	तृप्तवत्	तृप्तवती
शक्तवान्	शक्तवत्	शक्तवती
सिक्तवान्	सिक्तवत्	सिक्तवती

'इग्यणः सम्प्रसारणम्' जिन धातुओं में सम्प्रसारण हुआ करता है उनमें निष्ठा प्रत्यय जुड़ने पर भी सम्प्रसारण होता है, अर्थात् यदि पहिले अक्षर य, व, र, ल, हों, तो उनके स्थान में क्रम से इ, उ, ऋ, लृ हो जाते हैं। जैसे—वद् + क्त = उक्त, वद्+क्तवतु उक्तवत्, वस्+क्तवतु = उषितवत्। 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'–(८।२।४२) यदि निष्ठा प्रत्यय ऐसे धातु के आगे आवे जिसके अन्त में र् अथवा द् हो और निष्ठा तथा धातु के बीच में सेट् अथवा वेट् की 'इ' न आवे, तो निष्ठा के 'त्' के स्थान में 'न्' हो जाता है, और उसके पूर्व के 'द्' को भी 'न्' हो जाता है। जैसे—'शॄ' से 'शीर्ण' 'शीर्णवत्' 'जॄ' से 'जीर्ण. 'जीर्णवत्, 'छिद्' से 'छिन्न' छिन्नवत्, 'भिद्' से 'भिन्न' 'भिन्नवत्।' अन्यथा 'त्' को 'न्' नहीं होता। जैसे—चर्+क्त = चर्+इ+क्त=चरित,

'संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः'—(८।२।४३) जिन आकारान्त—(ए, ऐ, ओ का स्थानीय भी 'आ' हो तब भी) धातुओं के प्रारंभ में संयुक्त अक्षर हो और बीच में कोई अन्तःस्थ (य्, र्, ल्, व्) वर्ण हो ऐसे धातु की 'निष्ठा'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(त) को 'न' हो जाता है। जैसे—द्रा=द्राण, ग्लै = ग्लान, स्त्यै = स्त्यान, गै= गान आदि।

अपवाद—'न ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदाम्'–(८।२।५७) ख्या (कहना), ध्यै (ध्यान करना), व्ये (ढकना) ह्वे (स्पर्धा करना, नाम लेकर पुकारना, पूछना) इन धातुओं के 'क्त' को 'न' नहीं होता, जैसे—ख्यात, ध्यात, वीत, हूत आदि। 'कर्तरिकृत्'—३।४।६७ 'क्तवतु' प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग कर्तृ वाच्य में होता है। 'क्तवतु' प्रत्ययान्त शब्द कर्ता का विशेषण हो जाता है। जैसे—गायकः गीतवान्। 'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः'—३।४।७० खल् और कृत्य प्रत्ययों के समान 'क्त' प्रत्यय का प्रयोग भी कर्मवाच्य और भाववाच्य में होता है। वह कर्म का विशेषण हो जाता है। जैसे गायकेन गीतम्। नर्तकी तालात् परिभ्रष्टा। वादकेन शयितम्। 'गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थास-वस जन-रुह-जीर्यतिभ्यश्च (३।४।७२)

गतिअर्थ के धातुओं में और अकर्मक धातुओं में 'क्त' प्रत्यय का कर्तृवाच्य में (कर्ता के अर्थ में) भी प्रयोग किया जाता है। जैसे—गायकः गतः, नर्तकः चलितः, वादकः ग्लानः। श्लिष्, शी, स्था, आस्, वस्, जन्, रुह् और जॄ धातुओं से बने क्तान्त शब्दों का कर्तृवाच्य में प्रयोग होता है। लक्ष्मीम् आश्लिष्टो हरिः (हरिने लक्ष्मी का आलिंगन किया), हरिः शेषम् अधिशयितः (हरि शेषनाग पर सोये) हरिः वैकुण्ठम् अधिष्ठितः, शिवम् उपासितः हरिः, सः हरिदिनम् उपोषितः (उसने एकादशी का उपवास किया) लक्ष्मणः रामम् अनुजातः (लक्ष्मण राम के बाद उत्पन्न हुआ) हरिः गरुडम् आरूढः (हरि गरुडपर बैठा), कनीयान् ज्येष्ठम् अनुजीर्णः (छोटा भाई बडे भाई के बाद वृद्ध हुआ)

'नपुंसके भावे क्तः'—नपुंसकलिङ्ग में 'क्त' प्रत्ययान्त शब्द कहीं कहीं भाववाचक संज्ञाशब्द बन जाते हैं। अर्थात् क्तान्त शब्द वर्बल नाउन (Verbal noun) की तरह भी प्रयोग में आता है। जैसे—जल्पितम् (भाषण) शयितम् (सोना), हसितम् (हँसना), गीतम् (गाना) गतम् (जाना), पठितम् (पठन), लिखितम् (लेखन,), नृत्तम्- (नाचना), वादितं (बजाना) सुप्तम् (स्वापः) भुक्तम् (भोजन)। मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च – (३।२।१८८) मति, बुद्धि, और पूजा अर्थ वाली धातुओं से वर्तमान अर्थ में भी 'क्त' (त) प्रत्यय होता है। जैसे—राज्ञः मतः—(राजा से सम्मानित), सतां पूजितः (सज्जनों से पूजित)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'लिटः कानज्वा'–(३।२।१०६) 'क्वसुश्च'—(३।२।१०७)

लिट् के स्थान में परस्मैपदी धातु से क्वसु (वस्), और आत्मनेपदी धातु से कानच् (आन) प्रत्यय होता है। लिट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में प्रत्यय के पूर्व धातु का जो रूप रहे उसमें ये प्रत्यय जोड़ देने चाहिये। एकाच् अथवा आकारान्त धातु से 'वस्' के पूर्व 'इ' जोड़ देना चाहिये। किन्तु गम्, हन्, दृश्, विश् और विद् के बाद 'वस्' के पूर्व 'इ' विकल्प से लगता है। जन्, खन्, गम्, हन्, धातुओं में जहां 'वस्' के पूर्व 'इ' नहीं लगता वहां लिट् के मध्यम पुरुष एक वचन में तिङ् प्रत्यय से पूर्व धातु का जो रूप हो उससे 'वस्' लगाया जाता है।

जैसे—

इ— ईयिवस्— गयाहुआ ऋ— आरिवस् गयाहुआ
नी— निनीवस्— ले जाया हुआ पच्— पेचिवस् पकाया हुआ

वर्तमानकाल के कृत् प्रत्यय

(Present Participle)

'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे'—(३।२।१२४) 'तौ सत्'—(३।२।१२७)

इस कृत् प्रकरण में वर्तमानकाल को सूचित करने के लिये शतृ (अत्), शानच् (आन) प्रत्यय मुख्य हैं। व्याकरण के विद्वानों ने इन दोनों प्रत्ययों को 'सत्' नाम से कहा है। क्योंकि 'सत्' का अर्थ 'विद्यमान, वर्तमान' है। इन दोनों प्रत्ययों में से 'शतृ' प्रत्यय परस्मैपदी धातु से और शानच्-प्रत्यय आत्मनेपदी धातु से जुड़ते हैं और वे दोनों उस धातु से सूचित वर्तमानकाल की क्रिया का ज्ञान, विशेषण के रूप में कराते हैं। जैसे—सः कुर्वन्=वह करता हुआ (है) अर्थात् वह कर रहा है। गायकः गायन् अस्ति= गायक गाता हुआ (है) अर्थात् गायक गा रहा है। इन वाक्य प्रयोगों से यह स्पष्ट हो जाता है कि क्रिया अभी चल रही है, समाप्त नहीं हुई है। क्रिया के चलते रहने का भाव 'सत्' (शतृ-शानच्) प्रत्ययों से प्रकट हो जाता है। शतृप्रत्ययान्त और शानच् प्रत्ययान्त शब्द बनाने का प्रकार यह है कि किसी भी धातु का वर्तमानकाल के प्रथम पुरुष (अन्य पुरुष) के बहुवचन (भवन्ति) में प्रत्यय (अन्ति) लगने के पूर्व जो रूप (भव्) होता है, तिष्ठ्+अन्ति में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहुवचन का प्रत्यय जोड़ने के पूर्व जो रूप होता है, उसी में सत् (शतृ, शानच्) प्रत्यय जोड़ दिये जाते हैं। यदि धातु के अन्त में "अ हो तो शतृ" (अत्) के पूर्व उसका लोप होता है। जैसे—रक्ष+अत्, गर्ह+अत् यहां रक्ष्+अ+अत्, गर्ह्+अ+अत् धातु के अ का लोप होगा।

'आने मुक्'–(७।२।८२)

यदि शानच् के पूर्व अकारान्त धातु हो तो शानच् (आन) के स्थान पर 'मान' जोड़ दिया जाता है। अन्यथा 'आन' जुड़ता है।

जैसे—

शतृ प्रत्यय	शानच् प्रत्यय
गै—गायन्	शी—शयानः
ध्यै—ध्यायन्	अधि+इ—अधीयानः
श्रु—शृण्वन्	रुध्—रुन्धानः
नृत्—नृत्यन्	कृ—कुर्वाणः
स्था—तिष्ठन्	क्री—क्रीणानः
पा—पिबन्	आ+हन्—आघ्नानः
जि—जयन्	धा—दधानः
भू—भवन्	मुद्—मोदमानः

'ईदासः' (७।२।८३) आस् धातु के आगे शानच् यदि रहे तो उसके शेष रहे आन को ईन होता है।

जैसे—आस्+शानच्—आस्+आन—आस्+ईन=आसीनः।

'विदेः शतुर्वसुः'—(७।१।३६) 'विद्' धातु के आगे जब 'शतृ' प्रत्यय किया जाता है तब उसी के अर्थ में उसके स्थान में 'वसु' आदेश विकल्प से होता है। जैसे—विद्+शतृ = विदन्, विद्+वसु=विद्वस्। इसी का पुँलिङ्ग में 'विद्वान' और स्त्रीलिंग में 'विदुषी' रुप बनता है।

'पूङ्यजोः शानन्'—(३।२।१२८) 'पू' और 'यज्' धातुओं से वर्तमान का ही अर्थ सूचित करने के लिये 'शानन्' प्रत्यय किया जाता है।

जैसे—पू+शानन् = पवमानः। यज्+शानन् = यजमानः।

'ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्'—(३।२।१२९) परस्मैपदी और आत्मनेपदी दोनों प्रकार की धातुओं से स्वभाव, वय, सामर्थ्य को सूचित करने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के लिये 'चानश्' प्रत्यय किया जाता है। जैसे—भोगम्भुञ्जानः—भोग भोगने की आदतवाला। कवचम्बिभ्राणः—कवच धारण करने की अवस्थावाला अर्थात् तरुण। शत्रुं निघ्नानः—शत्रु को मारने का सामर्थ्य रखनेवाला।

भविष्यकाल के कृत् प्रत्यय

वर्तमान काल के जो 'सत्' प्रत्यय हैं, वे ही भविष्यकाल को सूचित करते हैं। भेद इतना ही है कि भविष्य (लृट्) के प्रथम पुरुष के बहुवचन में धातु का जो रुप होता है उससे सत् प्रत्यय जोड़ दिये जाते हैं।

जैसे—भविष्यन्ति के 'भविष्य' में अत् और मान जोड़ कर 'भविष्यत्' और 'भविष्यमाण' रुप बना लिये जाते हैं। सर्वसाधारणों की समझ के लिये भविष्यकाल के 'सत्' प्रत्ययों को 'ष्यत्' और 'ष्यमाण' भी कहते हैं। भविष्यत् अर्थ में जुड़नेवाले शतृ और शानच् प्रत्यय 'होनेवाला' या 'होगा' अर्थ को सूचित करते हैं। जैसे पठिष्यत् = अभी पढ़नेवाला, करिष्यमाणः = अभी किया जानेवाला या अभी करने वाला अर्थ होता है। ये भविष्य अर्थ वाले प्रत्यय उक्त अर्थ के अतिरिक्त इच्छा या 'उद्देश्य' अर्थ को भी सूचित करते हैं। जैसे—'अनुयास्यन् मुनितनयाम्' मुनि की कन्या के पीछे जाने की इच्छा करने वाला। दास्यन् = देने की इच्छा करनेवाला। 'वन्यान् विनेष्यन् इव दुष्टसत्वान्' मानों वन के दुष्ट प्राणियों को विनीत बनाने की इच्छा करता हुआ। गास्यन् —गाने को इच्छा करने वाला। उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणाम्—रघु०

तुमुन् प्रत्यय (Infinitive Mood)

सामान्य उद्देश्य को सूचित करने के लिये या जिसके लिये किसी कार्य को करना हो तो 'तुमुन्' प्रत्यय किया जाता है। अंग्रेजी में इसे इन्फिनिटिव या Gerund जीरण्ड के तुल्य-कक्ष समझा जाता है।

'तुमुन्' के प्रयोग में चतुर्थी का अर्थ निहित रहता है। प्रयोग करने वाला यदि चाहे तो 'तुमुन्' प्रत्ययान्तरूप के स्थान पर धातु के ल्युट् (अन) प्रत्ययान्त शब्द की चतुर्थी-विभक्ति के रूप का भी प्रयोग कर सकता है। जैसे-जलं पातुं गंगातीरम् अवततार (वह पानी पीने के लिये गंगाजी के किनारे उतरा) यहां पर 'पातुम्' के स्थानपर 'पानाय' (जलस्य पानाय) का भी प्रयोग कर सकते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"तुमुन् ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्"–(३।३।१०)।

जिस क्रिया के लिये कोई क्रिया की जाती है, उसकी धातु से 'तुमुन्' और 'ण्वुल्' (अक) जुड़ते हैं तब भविष्यत् अर्थ प्रकट हो जाता है। जैसे—'गायकं द्रष्टुं गच्छति'–गायक को देखने के लिये जाता है। इस वाक्य में दो क्रियायें हैं–देखना और जाना। जाने की क्रिया देखने की क्रिया के निमित्त होती है। 'जाने' का प्रयोजन देखना है, इसलिये 'दृश्' धातु से 'तुमुन्' (तुम्) जोड़कर 'द्रष्टुम्' बनाया गया है।

"समानकर्तृकेषु तुमुन्"—जिस क्रिया के साथ 'तुमुनन्त' शब्द आता है, उस क्रिया का तथा तुमुनन्त क्रिया का कर्ता एक ही होना चाहिये। भिन्न कर्ता होने पर 'तुमुनन्त' शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता। जैसे–'छात्रः गातुं विद्यालयं गच्छति'–इस वाक्य में 'गातुम्' और 'गच्छति' दोनों का कर्ता 'छात्र' ही है। यदि दोनों का कर्ता अलग अलग होता तो 'तुमुनन्त' शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता। जैसे–'तम् एतत् कर्तुम् अहम् इच्छामि'–मैं चाहता हूँ कि वह यह काम करे, यह वाक्य प्रयोग अशुद्ध है।

यदि तुमुनन्त क्रिया सकर्मक धातु से बनी हो तो उसके पूर्व द्वितीयान्त कर्म अवश्य रखना चाहिये। जैसे–'राष्ट्रपतिः गायकं पुरस्कर्तुम् ऐच्छत्' इस वाक्य में (पुरस्+कृ+तुमुन्) 'कृ' धातु सकर्मक है, अतः उसके पूर्व 'गायकम्' इस द्वितीयान्त शब्द का रखना आवश्यक है।

यदि तुमुनन्त क्रिया अकर्मक धातु से बनी हो तो उसके पूर्व कर्म नहीं आता। जैसे–'शिशुः शयितुम् ईहते इस वाक्य में 'शयितुम्' यह तुमुनन्त क्रिया, अकर्मक 'शी' धातु से बनी है, अतः उसके पूर्व कर्म नहीं है।

इस तुमुनन्त क्रिया का काम अंगरेजी में इन्फिनिटिव्' (Infinitive) से लिया जाता है। जैसे—'Ram goes to see hari' वाक्य में to see का अर्थ है 'देखने के लिये'। लेकिन अंगरेजी में कभी-कभी संज्ञा की तरह भी इन्फिनिटिव् का प्रयोग किया जाता है। तब उसे नाउन्इन्फिनिटिव् या सिम्पल् इन्फिनिटिव् कहते हैं। संस्कृत व्याकरण के अनुसार तुमुनन्त क्रिया का प्रयोग नाउन् इन्फिनिटिव् की तरह कभी भी नहीं किया जाता। जैसे–'To go to see krishna is good' टु गो टु सी: कृष्ण इज गुड–कृष्ण को देखने के लिये जाना अच्छा है। इस वाक्य में तीन क्रियायें हैं देखना, जाना और है। इनमें से दो के लिये इन्फिनिटिव् का प्रयोग किया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गया है। एक का अर्थ है 'जाना', दूसरे का 'देखने के लिये'। इनमें से 'देखने के लिये' इस अथ के लिये संस्कृत में तुमुनन्त क्रिया आवेगी, और 'जाना' के लिये 'संज्ञा' का प्रयोग होगा। जैसे-कृष्णं द्रष्टुं गमनं वरम् अस्ति इस वाक्य में 'द्रष्टुम्' तुमुनन्त क्रिया है और 'गमनम्' संज्ञा है। अतः नाउन इनफिनिटिव की तरह तुमुनन्त शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता।

सकना, धृष्ट होना, जानना, व्याकुल होना, लगना, प्रारंभ करना, पाना, कार्यशुरुकरना, सहना, योग्यहोना और होना इन अर्थोंवाली धातुओं के साथ 'तुमुन्' (तुम्) होता है। जैसे-'न शक्नोति शिरोधरां धारयितुम्'-(वह अपनी गर्दन को नहीं संभाल सकता)। 'जानासि कोपं निग्रहीतुम्'-(तुम अपने क्रोध को रोकना जानते हो)। अंगदेन समं योद्धुम् अघटिष्ट'-(वह अंगद के साथ लड़ने लगा)। 'गन्तुं व्यवस्येत् भवान्'-(आप जाने का यत्न कीजिये)। 'वक्तुं प्रक्रमेथाः'-(तुम कहना शुरु करो)। अस्ति, विद्यते, भवति वा भोक्तुम् अन्नम्'—(यहाँ पर खाने के लिये अन्न है)।

"पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु"—(३।४।६६) अलम् आदि शब्दों और पर्याप्त, समर्थ, कुशल अर्थवाले शब्दों के साथ 'तुमन्' होता है। जैसे- पर्याप्तोऽसि प्रजाः पातुम्—(तुम प्रजा की रक्षा करने में समर्थ हो) 'कः समर्थो दैवमन्यथा कर्तुम्'—(भाग्य को कौन बदल सकता है) 'भोक्तुं प्रवीणः कुशलः पटुर्वा'—(खाने में निपुण)। 'कालसमयवेलासु तुमुन्'- 'काम करने का यह समय है' इस अर्थवाले शब्दों के साथ 'तुमुन्' होता है। 'कालः समयो वेला अनेहा वा भोक्तुम्'—(यह खाने का समय है)। 'गन्तुं कालोऽयम् अस्ति' (यह समय जाने के लिये है) यहाँ कर्ता एक न होने पर भी 'तुमुनन्त' शब्द का प्रयोग हुआ है किन्तु यह अपवाद है। यहाँ दो शब्द क्रिया वाचक हैं-'है' और 'जाने के लिये'। 'है' का कर्त्ता 'कालः' और 'जाने के लिये' का कर्ता कोई अन्य है, तब भी 'तुमुनन्त शब्द' का प्रयोग किया गया है। इसी तरह भोक्तुं वेला, अध्येतुं समयः, द्रष्टुं कालः इत्यादि प्रयोग किये जाते हैं।

संस्कृतव्याकरण के अनुसार तुमुनन्त शब्द का कर्मवाच्य में रूप नहीं बदलता, इसलिये तुमुनन्त वाले कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य बनाना हो तो क्रिया का रूप कर्मवाच्य में जैसा होता है वैसा करना चाहिये और कर्ता को तृतीया विभक्ति में रखना चाहिये। तुमुन् प्रत्ययान्त शब्द के रूप में कोई परिवर्तन नहीं होगा। जैसे—सः स्तोत्रं गातुम् इच्छति—तेन स्तोत्रं गातुम् इष्यते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब तुमुन् प्रत्ययान्त शब्द के साथ 'अर्ह्' धातु का (मध्यम पुरुष में) प्रयोग होता है, तब वह 'प्रार्थना' अर्थ को प्रकाशित करता है। 'इदानीं गातुमर्हसि'—(अब गाने की कृपा कीजियेगा)। न चेद् रहस्यं प्रतिवक्तुम् अर्हसि'—(यदि कोई छिपाने की बात न हो तो कृपया उत्तर दीजियेगा)। कहीं कहीं यह तुमुनन्त शब्द 'विनम्र आदेश' अर्थ को प्रकट करता है। जैसे—'कान्तां प्रसादयितुम् अर्हसि'—(आप को चाहिये कि पत्नी को प्रसन्न करें)। 'न तं शोचितुम् अर्हसि' (तुम्हे उसका शोक नहीं करना चाहिये)।

जब तुमुन् प्रत्ययान्त के साथ 'अर्ह्' धातु का प्रथम पुरुष में प्रयोग किया जाता है तब वह 'योग्य' 'समर्थ' अर्थ को प्रकट करता है। जैसे—'द्रोणं हि समरे कोऽन्यो योद्धुम् अर्हति फाल्गुनात्—' (द्रोण से अर्जुन के सिवा कौन दूसरा युद्ध करने योग्य है)।

काम और मनस् शब्द आगे रहने पर तुमुन् (तुम्) प्रत्ययान्त शब्द के अन्तिम 'म्' का लोप होता है और उस समस्त पद (समास किया हुआ पद) का विशेषण के समान प्रयोग किया जाता है। तब उसका अर्थ 'तुंकाम-मनसोरपि' के अनुसार 'इच्छा वाला अथवा करने का इच्छुक' होता है। जैसे—'एतावत् उक्त्वा प्रतियातुकामं शिष्यं महर्षेः' (यह कहकर महर्षि का शिष्य लौटने की इच्छा करने लगा)। 'अयं जनः प्रष्टुमनास्तपोधने'—(हे तपस्विनी! यह मैं आप से कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्वकालिक क्रिया

क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय (Gerunds)

कर्ता के द्वारा किये गए दो कार्यों में से प्रथम कार्य का बोध 'क्त्वा' और 'ल्यप्' प्रत्यय से होता है। जैसे—'इति उक्त्वा तूष्णीं बभूव' (यह कहकर वह चुप हो गया)। 'तान् पृष्ठम् आरोप्य जलाशयं नीत्वा भक्षयति'—(उनको पीठ पर लादकर तालाव के समीप ले जाकर वह उन्हें खा जाता था)।

क्त्वा और ल्यप् प्रत्ययान्त रूप क्रिया का काम करते हुए वाक्य-संयोजन का भी काम करते हैं। जैसे—'प्रवृत्ते प्रदोष-समये चन्द्रापीडः चरणाभ्यामेव राजकुलं गत्वा पितुः समीपे मुहूर्तं स्थित्वा दृष्ट्वा च विलासवतीम् आगत्य स्वभवनं शयनतल मधिशिश्ये'—(सायंकाल का समय होने पर, चन्द्रापीड पैदल ही राजभवन में गया, थोड़ी देर पिता के समीप रहा और विलासवती को देखकर अपने महल में पहुँचकर विस्तर पर सोया)।

कतिपय क्त्वा और ल्यप् प्रत्ययान्त शब्दों का उपसर्ग के समान भी प्रयोग किया जाता है। जैसे—विहाय, मुक्त्वा,-(सिवाय), आदाय (सहित), उद्दिश्य, अधिकृत्य, अनुरुध्य (विषय में) आदि।

"समानकर्तृकयोः पूर्वकाले"—(३।४।२१) "समासेऽनञ्पूर्वेक्त्वोल्यप्" (७।१।३७) पूर्वकालिक क्रिया का बोध कराने के लिये धातु के आगे 'क्त्वा' (त्वा) प्रत्यय जोड़ा जाता है। यदि धातु के पूर्व में कोई उपसर्ग हो अथवा उपसर्गस्थानीय कोई पद हो तो 'क्त्वा' के स्थान में 'ल्यप्' (य) आदेश हो जाता है। किन्तु 'नञ्' के पूर्व होने पर नहीं। जैसे—गम्+क्त्वा = गत्वा, नम्+क्त्वा = नत्वा, गै+क्त्वा = गात्वा, नृत्+क्त्वा = नृत्त्वा, किन्तु अव+गम्+ल्यप्=अवगत्य ही बनेगा, 'अवगत्वा नहीं होगा।

'क्त्वा' के शेष बचे 'त्वा' को धातु से जोड़ दिया जाता है। जसे—'नी'+त्वा = नीत्वा। भूत्वा, कृत्वा, स्नात्वा, धृत्वा।

जिन नकारान्त धातुओं में सेट् या वेट् की 'इ' नहीं जुडती, उन नकारान्त धातुओं के 'न्' का लोप करके 'त्वा' को जोड़ दिया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसे—हन्-हत्वा, मन्-मत्वा, किन्तु 'जन्' से 'जनित्वा' तथा 'खन्' से 'खनित्वा' होता है। धातु का प्रथम अक्षर य, र, ल, व हो तो क्रम से ऋ, लृ, उ हो जाता है। जैसे—यज्+त्वा = इष्ट्वा, प्रच्छ—पृष्ट्वा, वप्—उप्त्वा।

यदि धातु और प्रत्यय के बीच 'इ' रहे तो पूर्व स्वर को गुण हो जाता है। जैसे-शी+त्वा = श्+ए+इ+त्वा = शे+इ + त्वा = शयित्वा। जागृ से जागरित्वा आदि।

"जान्तनशां विभाषा"—(३।४।३२) जान्त धातुओं और नश् धातु के बाद 'क्त्वा' जोड़ देने पर 'न्' का लोप विकल्प से होता है जैसे—भुञ्ज्+क्त्वा = भुङ्क्त्वा, रञ्ज्+क्त्वा = रक्त्वा, रङ्क्त्वा नश+क्त्वा = नष्ट्वा; नंष्ट्वा और नशित्वा भी रूप होता है। "ह्रस्वस्यपिति कृतितुक्—(६।१।७१) ल्यप्' के पूर्व ह्रस्व स्वर हो तो 'य' न जुड़कर 'त्य' को जोड़ते हैं, यानी धातु और ल्यप् के (य) के बीच 'त्' जुड़ता है। निश्चित्य, अवकृत्य विजित्य, आधृत्य, संभृत्य। किन्तु दीर्घस्वरान्त धातु हो तो उससे 'य' ही जुड़ेगा। जैसे—विनीय अनुभूय, आदाय, प्रगाय, संध्याय, आहूय आदि। नकारान्त धातुओं के 'न्' का लोप करके 'त्य' जोड़ा जाता है। जैसे—अवमत्य, वितत्य, निहत्य आदि किन्तु 'खन्' से उत्खन्य उत्खाय, 'जन्' से संजाय। नम्, गम्, यम्, रम् के 'म्' रहने पर अवनम्य, अवगम्य, आयम्य, विरम्य आदि और 'म्' का लोप होने पर अवनत्य, अवगत्य, आयत्य, विरत्य आदि दो दो रूप होते हैं।

'ल्यपि लघुपूर्वात्'—(६।४।५६)—णिजन्त और चुरादिगण की धातु की उपधा में यदि ह्रस्व स्वर हो तो उनमें 'ल्यप्' के पूर्व 'अय्' जोडते हैं। उपधा में यदि ह्रस्व स्वर न हो तो नहीं। जैसे—प्रणम्+अय्+ल्यप् (य ,= प्रणमय्य। किन्तु प्रचोर्+य = प्रचोर्य होगा, 'प्रचोरय्य' नहीं। 'विभाषापः'—(६।१।५७)—'आप्' धातु के बाद ल्यप् जुड़ने पर विकल्प से 'अय्' आदेश होता है। जैसे प्र+आप्+ल्यप् = प्रापय्य, प्राप्य 'अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचांक्त्वा'—(३।४।१८) जब पूर्वकालिक क्रिया (क्त्वान्त तथा ल्यबन्त) 'अलम्' और 'खलु' शब्द के साथ आती है तब वह पूर्वकाल का बोध न कराकर प्रतिषेध को सूचित करती है। जैसे-अलं कृत्वा (बस, मतकरो), पीत्वा खलु (मत पियो) विजित्य खलु (बस, मत जीतो) अवमत्य अलम् (बस, अपमान न करो)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

णमुल् (अम्) प्रत्यय (अव्ययकृदन्त)

(The Adverbial Indeclinable Participle)

'क्त्वा' (त्वा)-(कर या करके) के अर्थ में ही णमुल् (अम्) प्रत्यय लगाकर अव्यय कृदन्त शब्द तैयार किये जाते हैं। अर्थात् किसी क्रिया को बार बार करने का भाव सूचित करना हो तो 'क्त्वा' प्रत्ययान्त शब्द अथवा 'णमुल्' प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग किया जाता है और 'नित्य वीप्सयोः'-(८।१।४) सूत्र के अनुसार उस शब्द को दो बार रक्खा जाता है। जैसे—'बार बार याद करके वह शिव को प्रणाम करता है'—यहाँ पर याद करने की क्रिया बार बार हो रही है, अतः ऐसा कहा जायगा—'सः स्मारं स्मारं प्रणमति शिवम्' अथवा 'सः स्मृत्वा स्मृत्वा प्रणमति शिवम्'—यहाँ याद करने की क्रिया प्रणाम करने की क्रिया से पूर्व है। उसी प्रकार पी पीकर यानी बार बार पीकर 'पायं पायं अथवा पीत्वा पीत्वा—(पा)। खा खा कर (बार बार खाकर)-भोजं भोजं अथवा भुक्त्वा भुक्त्वा—(भुज्)। जा जाकर(बार बार जाकर)—गामं गामं अथवा गत्वा गत्वा-(गम्)। जग जग कर (बार बार जगकर)-जागरं जागरं अथवा जागरित्वा जागरित्वा (जागृ)। पा पा कर (बार बार पाकर)—लाभं लाभं और लम्भं लम्भं अथवा लब्ध्वा लब्ध्वा (लभ्)। सुन सुनकर (बार बार सुनकर) श्रावं श्रावं अथवा श्रुत्वा श्रुत्वा—(श्रु) ये णमुल् (अम्) प्रत्ययान्त रूप साधारणतया समास के अन्त में रखे जाते हैं। जैसे—'स लोष्ठघातं हतः'—(वह ढेले की चोट से मारा गया)। "सा बन्दिग्राहं गृहीता"—(वह बन्दी बनाई गई)। "स मूलघातं न्यवधीदरींश्च"-(उसने अपने शत्रुओं को समूल नष्ट कर दिया)। समास के अन्त में णमुलन्त शब्द को दो बार न पढ़ने पर भी वह द्विरुक्त का भाव सूचित कर देता है। जैसे—

"लतानुपातं कुसुमान्यगृह्णात् स नद्यवस्कन्दमुपास्पृशच्च।
कुतूहलाच्चारुशिलोपवेशं काकुत्स्थ ईषत् स्मयमान आस्त॥"—भट्टि० २-११]

ककुत्स्थकुलोत्पन्न भगवान् राम ने कुछ स्मित करते हुए बार बार लताओं को झुका कर उनके पुष्पों को तोडा, बार बार प्राप्त हुई नदियों को पार करते समय उनके जल का पान किया और कुतूहलवश सुन्दर शिलाओं पर (दृश्य की प्रशंसा करते हुए) बैठे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कतिपय स्थानों पर णमुल् प्रत्ययान्त शब्द, द्विरुक्त का भाव प्रकट नहीं करता। जैसे—अग्रे, प्रथमम्, पूर्वम् इनका प्रयोग उपसर्ग के समान होनेपर धातु से 'त्वा' या 'अम्' लगता है, और इन समासों में द्विरुक्त का अर्थ नहीं होता। यथा–अग्रे भोजम्, प्रथमं भुक्त्वा वा व्रजति। पूर्वं भोजम्, पूर्वं भुक्त्वा वा व्रजति।

"कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये–(३।४।२९) दृश् और विद् धातुओं के साथ का उपपद यदि उन्हीं का कर्म हो तो 'णमुल्' प्रत्यय लगेगा और उस णमुल् प्रत्ययान्त शब्द से साकल्य (सम्पूर्णता) का बोध होगा तथा एक ही बार प्रयोग होगा। जैसे–'कन्यादर्शं वरयति'–जिस कन्या को देखता है, उसी से ब्याह कर लेता है। अर्थात् सभी कन्याओं से ब्याह कर लेता है।

"अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत्"—(३।४।२७) 'कृ' धातु के पूर्व 'अन्यथा, एवं, कथं, इत्थं, शब्द आवें और 'कृ' धातु का अर्थ वाक्य में इष्ट न हो, केवल अव्ययों का अर्थ ही सूचित करना विवक्षित हो तब भी 'णमुल्' का प्रयोग किया जाता है। जैसे—'अन्यथाकारं ब्रूते'–वह दूसरी ही तरह बोलता है। यहां 'कृ' धातु का अर्थ कुछ भी प्रकट नहीं हो रहा है। एवङ्कारम्–इस तरह। कथङ्कारम्–किसी तरह। इत्थङ्कारम्–इस तरह।

"स्वादुमि णमुल्"—(३।४।२६) स्वादु के अर्थ में 'कृ' धातु से 'णमुल्' प्रत्यय लगता है। जैसे—स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते (अस्वादु को स्वादु बनाकर खाता है)। सम्पन्न और लवण शब्द स्वादु के पर्याय होने से 'सम्पन्नङ्कारम् और लवणङ्कारम्' का भी प्रयोग किया जाता है।

"यावति विन्दजीवोः"—(३।४।३०) यावत् के साथ 'विन्द् और जीव्' धातुओं से 'णमुल्' प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे—यावत्+विन्द्+णमुल् = यावद्वेदम्। 'स यावद्वेदं भुङ्क्ते'—वह जब तक पाता है, तब तक खाता है। 'यावज्जीवमधीते'—पूरे जीवनभर वह अध्ययन करता रहेगा।

"निमूलसमूलयोः कषः"–(३।४।३४) जब निमूल और समूल 'कष्' धातु के कर्म हों तो कष् धातु से 'णमुल्' लगाया जाता है। जैसे—'निमूलकाषं कषति, समूलकाषं कषति'—जड़ से गिरा देता है।

"समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः"–(३।४।३६) समूल, अकृत, जीव-शब्द हन्, कृ, ग्रह् धातुओं के कर्म हों तब उनसे 'णमुल्' प्रत्यय लगाया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है। जैसे—समूलघातं हन्ति—जड़समेत उखाड़ रहा है। 'अकृतकारं करोति'—न करने योग्य काम को करता है। 'जीवग्राहं गृह्णाति'—जीवित को ही सुरक्षित रखने के लिये पकड़ता है।

"कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ्"—(३।४।२५) कृ धातु से निन्दा सूचित करने के लिये 'खमुञ्' (अम्) प्रत्यय लगता है।

जैसे—'चौरंकारम् आक्रोशति' वह चोर है चोर है इस प्रकार चिल्लाता है।

"यथातथयोरसूयाप्रतिवचने"—(३।४।२८) क्रोधपूर्वक उत्तर देने के अर्थ में यथा और तथा के साथ 'कारम्' लगता है। कारम् का अपना स्वतंत्र अर्थ कुछ नहीं है। जैसे—यथाकारम् अहं भोक्ष्ये तथाकारं भोक्ष्ये किं तव अनेन'—मैं इस तरह खाऊँगा, मैं उस तरह खाऊँगा, तुझे इससे क्या ?।

"शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः"—(३।४।३५) शुष्क, चूर्ण, रूक्ष पहले होने पर 'पिष्' धातु से 'णमुल्' होता है। जैसे—'शुष्कपेषं-पिनष्टि-सूखा पीसता है। 'चूर्णपेषं पिनष्टि'—बहुत बारीक करके पीसता है। 'रूक्षपेषं पिनष्टि'—रूखा पिसता है। 'करणे हनः'—(३।४।३७) 'स्नेहने पिषः'—(३।४।३८) क्रिया का करण पहले रहने पर हन् और पिष् धातुओं से णमुल् होता है। जैसे—'पादघातं हन्ति'—पैर से चोट मारता है। 'उदपेषं पिनष्टि'—जल के साथ पीसता है।

"अधिकरणे बन्धः"—(३।४।४१)—विशेष प्रकार की छन्दोरचना के बोधक पद पहले रहने पर 'बन्ध्' से 'णमुल्' लगता है जैसे—चक्रबन्धं बध्नाति, क्रौञ्चबन्धं बध्नाति, मुरजबन्धं बध्नाति—मयूरिकाबन्धं बध्नाति, अट्टालिकाबन्धं बध्नाति।

कर्तृवाचक कृत् प्रत्यय

"ण्वुल्तृचौ" (३।१।१३३) किसी भी धातु से सूचित कार्य के करने वाले के अर्थ में (कर्ता के अर्थ में) धातु से 'ण्वुल्' (अक्) और तृच् (तृ) प्रत्यय लगते हैं। जैसे—'कृ' धातु से 'करना' अर्थ सूचित होता है, अतः 'करने वाला' यह भाव प्रकट करने के लिये कृ+ण्वुल्=कृ+अक=कारकः होगा और कृ+तृच् तृ = कर्तृ शब्द तैयार हुआ। कारक और कर्तृ का अर्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने वाला होता है। इसी तरह 'गै' से गायक और गातृ, पठ् से पाठक और पठितृ, 'दा' से दायक और दातृ, 'पच्' से पाचक और पक्तृ, 'हृ' से हारक और हर्तृ, 'धृ' से धारक और धर्तृ, 'हन्' से घातक और हन्तृ, 'दृश्' से दर्शक और द्रष्टृ इत्यादि। ण्वुल् से पूर्व धातु में वृद्धि और तृच् के पूर्व धातु में गुण होता है। ण्वुल् प्रत्यय का प्रयोग क्रियार्थ में भी 'तुमुन्' की तरह किया जाता है। जैसे—कृष्णं दर्शको याति—कृष्ण को देखने के लिये जाता है। खश्—जनम् एजयति=जनमेजयः, विधुं तुदति=विन्धुन्तुदः (राहु), खच्—प्रियं वदति=प्रियंवदा (आर्या), वशंवदः, परन्तपः, वाचं यच्छति = वाचंयमः (मितभाषी) भयङ्करः, मेघङ्करः, विश्वम्भरः, पतिंवरा, शत्रुञ्जयः, अरिन्दमः।

"नन्दिग्रहिपचादिभ्योल्युणिन्यचः"—(३।१।१३४) नन्दि आदि (नन्दि, वाशि, मदि, दूषि, साधि, वर्धि, शोभि, रोचि के णिजन्तरूप) धातुओं से 'ल्यु' (अन), ग्रहि आदि (ग्राही, उत्साही, स्थायी, मन्त्री, अयाची, अवादी विषयी, अपराधी इत्यादि इस गण के मुख्य शब्द हैं) के अनन्तर 'णिनि' (इन्) तथा पच् आदि (पचः, वदः, चलः, पतः, जरः, मरः, क्षमः, सेषः, व्रणः, सर्पः आदि इस गण के मुख्य शब्द हैं) धातुओं से 'अच्' (अ) लगाकर कर्तृ-बोधक शब्द बनाए जाते हैं। जैसे—नन्द् + ल्यु=नन्दनः (नन्दयतीति नन्दनः), भी–विभीषणः, मद्–मदनः, साध्–साधनः, सह्–सहनः, सूद्–सूदनः, अद्–अर्दनः, गृह्णातीति = ग्राही (ग्रह + इन् = ग्राहिन्) पच्+अच् (अ) = पचः, (पचतीति = पचः)। 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः—(३।१।१३५) जिन धातुओं की उपधा (उपान्त्यवर्ण) में इ, उ, ऋ, ऌ में से कोई स्वर हो उनके तथा 'ज्ञा' (जानना) 'प्री' (प्रसन्न करना), 'कॄ' (बिखेरना) धातुओं से कर्ता अर्थ में (कर्तृवाचक) 'क' (अ) प्रत्यय लगता है। जैसे—क्षिप् + क = क्षिपः (क्षिपतीति = क्षिपः—फेंकने वाला। लिखतीति–लिखः (लिख् + कः) लिखने वाला। बुधः, (समझने वाला। कृशः (दुबला)। ज्ञा+क = ज्ञः—जानने वाला। प्रीणातीति–प्रियः (प्री+क) प्रसन्न करने वाला। किरः = बिखरने वाला।

'आतश्चोपसर्गे'—(३।१।१३६)—आकारान्त धातु, तथा ए, ऐ, ओ, औ में अन्त होने वाली जो धातु आकारान्त हो जाती है और उसके पूर्व यदि उपसर्ग हो तो उससे 'क' प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे—प्रजानातीति–प्रज्ञः (प्र + ज्ञा + क), आह्वयतीति आह्वः (आ + ह्वे + क)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'आतोऽनुपसर्गे कः'—(३।२।३) आकारान्त धातु के पूर्व यदि कोई उपसर्ग न हो तो उस धातु से कर्म के योग में 'क' (अ) प्रत्यय लगता है। ('कर्मण्यण्' से 'अण्' प्रत्यय नहीं लगता) जैसे—गां ददातीति = गोदः (गो+दा+क) परन्तु गाः सन्ददाति = गोसन्दायः (गो+सम्+दा+अण्)।

'गस्थकन्'—(३।१।१४६) 'ण्युट् च'—(३।१।१४७) 'गै' धातु से 'थकन्' और 'ण्युट्' प्रत्यय भी होता है। जैसे—गाथकः—गायनः।

'नृतिखनिरञ्जिभ्य एव'—(वा०) नृत्, खन्, रञ्ज् धातु से 'ष्वुन्' होता है। जैसे—नर्तकः। खनकः। रजकः। 'अर्हः'—(३।२।१२) कर्म के योग में 'अर्ह' धातु से अच् (अ) प्रत्यय होता है। पूजामर्हतीति—पूजार्हः ब्राह्मणः (पूजा+अर्ह +अच्)।

अच्—(अ) कर्ता अर्थ में :—चर्—चरः, चुर्—चोरः, भू—भवः, नद्—नदः, जार और श्वन के बाद भृ और पच् से क्रमशः 'अच्' प्रत्यय होता है। जैसे—जारभरा (परपुरुषगामिनी), श्वपचः (चाण्डाल), अंशहरः (अंश+हृ+अच्) (हिस्सेदार), किन्तु भारहारः (भार+हृ+अण्), कवचहरः (युवक), स्वभाव अर्थ में आ+हृ से अच् प्रत्यय होता है। पुष्पाणि आहर्तुं शीलमस्य असौ—पुष्पाहरः। शक्ति, (वज्र, परशु), लांगल (हल), अंकुश, तोमर (भाला), यष्टि (लाठी), घट, घटी और धनुष् पहले होने पर ग्रह धातु से 'अच्' प्रत्यय होता है। शक्तिं गृह्णातीति शक्तिग्रहः, (परशु धारण करने वाला), लांगलग्रहः। सूत्र शब्द पहले रहने पर और धारण करना अर्थ रहने पर 'ग्रह्' धातु से 'अच्' होता है। सूत्रग्रहः (यज्ञोपवीत धारण करनेवाला) अन्यत्र—सूत्रग्राहः (यज्ञोपवीत हाथ में लेनेवाला)। सप्तम्यन्त स्तम्ब और कर्ण शब्द पहले रहनेपर क्रमशः रम् और जप् धातुओं से 'अच्' होता है। स्तम्बेरमः (हाथी), कर्णेजपः (चुगलखोर)। शम् पहले होनेपर किसी भी धातु से अच् हो सकता है। शङ्करः, शम्भवः, शंवदः। अधिकरणवाचक शब्द पहले होनेपर 'शी' धातु से 'अच्' होता है। खे शेते—खशयः, खेशयः (आकाश में रहने वाला), हृच्छयः (हृदय में रहने वाला), पार्श्वशयः, उदरशयः, पृष्ठशयः। उत्तानशयः (ऊपर की ओर मुँह करके पीठ के बल सोनेवाला), अवमूर्धशयः (नीचे की ओर सिर करके सोनेवाला) "कर्मण्यण्"—(३।२।१)—कर्म उपपद रहनेपर धातु से 'अण्' प्रत्यय होता है। अण्—ग्रन्थं करोति = ग्रन्थकारः, वृत्तिकारः, भाष्यकारः, तन्तून् वयति = तन्तुवायः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'ट'—दिवा करोति = दिवाकरः, विभाङ्करोति = विभाकरः, प्रभाकरः, भास्करः, निशाकरः, वनेचरः, पुरःसरः, धूवंसरः ।

'टक्'—क्षीरं पिबति = क्षीरपः, मद्यपः, शत्रुघ्नः, कृतघ्नः ।

'ड'—अध्वानं गच्छति = अध्वगः, सर्वगः, पन्नगः, विहायसा गच्छति= विहगः, न गच्छति = नगः, पङ्के जातम् = पङ्कजम्, सरसि जातम् = सरोजम्, बुद्धेः जातः = बुद्धिजः, आत्मनो जातः = आत्मजः, अनुजः, अग्रजः ।

शील-धर्म-साधुकारिता-वाचक कृत् प्रत्यय

किसी भी धातु के अनन्तर शील, धर्म तथा अच्छी प्रकार से सम्पादन—इनमें से किसी अर्थ को सूचित करने के लिये तृन (तृ) प्रत्यय होता है। जैसे—कृ + तृन् = कर्तृ - कर्ता कटम् (जो चटाई बनाया करता है अथवा चटाई बनाना जिसका धर्म है, अथवा जो चटाई अच्छी तरह बनाता है)।

अलंकृ, निराकृ, प्रजन्, उत्पच्, उत्पत्, उन्मद्, रुच्, अप् + त्रप्, वृत्, वृध्, सह्, चर् धातुओं से—उपर्युक्त अर्थ में 'इष्णुच्' (इष्णु) प्रत्यय लगता है। जैसे—अलङ्करिष्णुः (अलङ्कृत करनेवाला), निराकरिष्णुः (अपमान करने वाला), प्रजनिष्णुः (पैदा करनेवाला), उत्पचिष्णुः (पकाने वाला), उत्पतिष्णुः (ऊपर उठाने वाला), उन्मदिष्णुः (उन्मत्त होने वाला), रोचिष्णुः (अच्छा लगने वाला), अपत्रपिष्णुः (लज्जा करने वाला), वर्तिष्णुः (विद्यमान रहने वाला), वर्धिष्णुः (बढनेवाला), सहिष्णुः (सहनशील), चरिष्णुः (भ्रमणशील)। प्रभविष्णुः (शक्तिशाली), भ्राजिष्णुः (तेजस्वी) क्षयिष्णुः (कमजोर होनेवाला)।

निन्द्, हिंस, क्लिश्, खाद्, विनाश्, परिक्षिप्, परिरट्, परिवाद्, व्ये, भाष्, असूय इन धातुओं से 'वुञ्' (अक) प्रत्यय होता है। जैसे-निन्दकः, हिंसकः, क्लेशकः, खादकः, विनाशकः, परिक्षेपकः, परिरटकः, परिवादकः, व्यायकः, भाषकः, असूयकः। आदेवकः (जुआरी), आक्रोशकः (चिल्लानेवाला)।

जाना और शब्दकरना अर्थवाली धातुओं से 'युच्' (अन) होता है। चल्—चलनः (चलनेवाला), रु—रवणः (शब्द करनेवाला)। अलंकृत-करना और क्रुद्ध होना अर्थवाली धातुओं से भी 'युच्' होता है। भूष्—भूषणः (अलङ्कार का साधन), मण्ड्—मण्डनः, क्रुध्—क्रोधनः, रुष्—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रोषणः (क्रोधी)। जु, सृ, गृध्, ज्वल्, शुच्, लष्, पत्, पद् धातु से भी 'युच्' होता है। जु–जवनः (तीव्र चलने वाला), सृ—सरणः (जानेवाला), गृध्—गर्धनः (लोभी), ज्वल्–ज्वलनः (आग)। कतिपय हलन्त धातुओं से भी 'युच्' होता है। वृत्–वर्तनः, वृध्–वर्धनः। क्रम् और द्रम् के यङन्तरूप से भी 'युच्' होता है। चङ्क्रमणः, दन्द्रमणः (बार बार जानेवाला),

जल्प, भिक्ष्, कुट्ट् (अलग करना, काटना), लुण्ट् (लूटना), वृ (चाहना) धातु से 'षाकन्' (आक) प्रत्यय लगता है। जल्पाकः (बहुत बोलनेवाला), भिक्षाकः (भिखारी), कुट्टाकः (काटनेवाला), लुण्टाकः (लूटनेवाला) वराकः (बेचारा)।

स्पृह्, ग्रह्, पत्, दय्, शी धातुओं से तथा निद्रा, तन्द्रा, श्रद्धा के अनन्तर 'आलुच्' (आलु) प्रत्यय होता है। स्पृहयालुः, (इच्छुक), गृहयालुः (ग्राहक), पतयालुः (गिरनेवाला), दयालुः, शयालुः, निद्रालुः, (अधिक सोनेवाला), तन्द्रालुः (ऊँगनेवाला), श्रद्धालुः (श्रद्धा रखनेवाला)।

सन्नन्त (इच्छावाची) धातुओं से 'उ' प्रत्यय लगाकर संज्ञाशब्द बनते हैं। तथा आ+शंस्, भिक्ष्, से भी 'उ' प्रत्यय लगता है। चिकीर्षुः (करने का इच्छुक), आशंसुः, (इच्छुक, आशायुक्त) भिक्षुः। विदुः (जाननेवाला) इच्छुः (चाहनेवाला)।

वि, प्र और सम् उपसर्ग पहले होने पर 'भू' धातु से 'डु' (उ) प्रत्यय होता है। विभुः (व्यापक), प्रभुः (समर्थ), सम्भुः (उत्पादक)।

लष्, पत्, पद्, स्था, भू, वृष, हन्, कम्, गम्, शृ, धातुओं से कर्ता अर्थ में 'उकञ्' (उक) प्रत्यय होता है। लष्—लाषुकः (चमकनेवाला, इच्छुक), पत्—पातुकः (गिरनेवाला), भू—भावुकः, (होनेवाला, जीवित), हन्—घातुकः (मारनेवाला), कम्–कामुकः (विषयी)।

विद्, भिद्, छिद् से 'कुरच्' (उर) प्रत्यय होता है। विद्–विदुरः (जाननेवाला), भिद्–भिदुरः (टूटने वाला), छिद्–छिदुरः (काटनेवाला)।

जागृ, धातु से तथा यज्, जप् और दंश् के यङन्त अंग से 'ऊक' प्रत्यय होता है। जागृ–जागरूकः (सावधान), यज्–यायजूकः (बार-बार यज्ञ करने वाला), जप्–जंजपूकः (बार-बार जप करने वाला), दंश्—दन्दशूकः (बार बार काटने वाला)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'क्विन्', क्विप्' और 'ण्वि'-इन प्रत्ययों को धातुओं से लगाकर शब्दरूप बनाये जाते हैं। इन प्रत्ययों का कुछ भी शेष नहीं रहता। इन प्रत्ययों को लगाने पर धातु के अन्त में ह्रस्व स्वर होता है उसके बाद 'त्' जुड जाता है। 'क्विन्'-यदि कोई सुबन्त पहले होगा तो 'स्पृश्' धातु से उक्त प्रत्यय होता है। घृतस्पृश् (घी को छूने वाला), मन्त्रस्पृश् (मन्त्र पढ़ने के बाद किसी वस्तु को छूने वाला)। किन्तु यदि सुबन्त जल वाचक होगा तो नहीं। उदकस्पर्शः (जल को छूने वाला), यहाँ 'उदकस्पृश्' नहीं बनेगा। किन्प्रत्ययान्त कतिपय शब्द निपातन (ऐसा इष्ट है) से बनते हैं। यज्—ऋत्विज् (ऋतौ ऋतौ यजते, प्रत्येक ऋतु में यज्ञ करने वाला, यज्ञ में कार्य करने वाला), धृष्—दधृष् (घमण्डी), सृज्—स्रज् (माला), दिश्—दिश् (दिशा), स्निह्—उष्णिह् (एक छन्द का नाम) 'क्विप्'—यह प्रत्यय उपसर्ग पहले हो या न हो, धातु से होता है। सूते असौ सूः या प्रसूः (जन्म) देनेवाली माता), सद्—द्युसद् (द्युलोक में रहने वाली देवता), द्विष्—प्रद्विष् (शक्तिशाली शत्रु), युज्—अश्वयुज् (अश्विनी नक्षत्र), नी-सेनानी (सेनापति), राज्—विराज् (विराट्) चि—अग्निचित् (अग्निहोत्र करने वाला), जि—इन्द्रजित् (इन्द्र को जीतने वाला), स्तु—देवस्तुत् (देवों की स्तुति करने वाला), सु—सोमसुत् (सोम-रस निकालने वाला), कृ—कर्मकृत्, भाषाकृत्, व्याख्याकृत्, काव्यकृत्। कर्म पहले होने पर 'दृश्' 'स्पृश' और 'सृज्' से क्विप् होता है। सर्वदृश (सबको देखने वाला), मर्मस्पृश् (मर्मस्थलों को छूने वाला), विश्वसृज् (संसार का स्रष्टा), 'अद्' से क्रव्याद् (मांसभक्षक, राक्षस), ब्रह्महन् (ब्राह्मण का हन्ता) 'छाद्' से 'क्विप्' होने पर 'छद्' हो जाता है। तनुच्छद् (वस्त्र), 'क्विप्' प्रत्यय आगे रहने पर अनुनासिकान्त धातुओं की उपधा को दीर्घ हो जाता है। शम्—प्रशाम् (शान्त), तन्—प्रतान् (फैलाने वाला)। किन्तु गम्, नम्, यम्, तन् इन धातुओं की उपधा को दीर्घ नहीं होता, अपितु इनके अन्तिम अनुनासिक का लोप हो जाता है और अन्त में 'त्' जुड जाता है। जैसे-अध्वानं गच्छतीति—अध्वगत् (यात्री), परितनोतीति—परीतत् (चारों ओर फैला हुआ) सुनत् (विनम्र) संयत् (संयमी), क्विप् होने पर 'शास्' के 'आ' को 'इ' होता है। मित्रं शास्तीति—मित्रशिष् (मित्र को संमति देने वाला) आशिष (आशीर्वाद), गृ से गिर् (वाणी), भ्रंस्, स्रंस् और ध्वंस् के अनुनासिक का लोप होता है और स् को द् होता है। वाहभ्रत् (घोड़े से गिरने वाला),

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उखास्रत् (वर्तन से नीचे गिरने वाला), पर्णध्वत् (पत्ते से नीचे गिरनेवाला)। 'क्विप्' आगे रहने पर 'दिव्' के 'व्' को 'उ' होता है और अन्य धातुओं के 'व्' को 'ऊ' होता है। अक्षद्युत् (जुआरी), वे—ऊः (जुलाहा), अव्–ऊः (रक्षक)। इस 'ऊ' को पूर्ववर्ती 'अ' के साथ वृद्धि हो जाती है। जन+ऊ=जनौः (मनुष्यों का रक्षक), ज्वर्–जूर् (ज्वरयुक्त), त्वर्–तूर् (तीव्र चलने वाला), क्विप् प्रत्यय होने पर धातु के र् के बाद च् और छ् का लोप होता है। मूर्च्छ्–मूर् (मूर्च्छित), धुर्व्–धूर् (चोट पहुचाने वाला), अक्षधूर् (बोझ)। कुछ शब्दों के अनियमित रूप बनते हैं। वच्–वाच् (वाणी), प्रच्छ्–प्राच्छ् (पूछने वाला) प्रु–कटप्रूः (इच्छानुसार काम करने वाला, एक कीड़ा जुआरी) श्रि–श्रीः (लक्ष्मी), व्रज–परिव्राज् संन्यासी), द्युत्–विद्युत् (बिजली), गम्–जगत् (संसार), ध्यै–धीः-(बुद्धि)।

ण्वि—भज् धातु से यह प्रत्यय होता है और धातु के 'अ' को 'आ' होता है। अंशभाज् (अपना हिस्सा लेने वाला) प्रभाज् (भक्त, पूजक)।

घुरच्—भङ्क्तुं शीलमस्य भङ्गुरः, भासुरः, मेदुरः,।

क्वरप्—एतुं शीलमस्य इत्वरः, नश्वरः, गत्वरः।

र—नम्रः कम्प्रः, स्मेरः, हिंस्रः, दीप्रः।

भावार्थ कृत् प्रत्यय

भाव का अर्थ सूचित करने के लिये धातु से घञ् (अ) प्रत्यय जोडा जाता है। जब कोई धात्वर्थ (धातु का अर्थ) सिद्ध (पूर्ण) हो जाता है, तब उसे 'भाव' कहते हैं। जैसे—पाकः (पक जाना,) लाभः, कामः।

इकारान्त धातुओं से 'अच्' (अ) लगता है। जैसे—चि+अच्=चयः, जयः, नभः, भयम्।

ऋकारान्त, उकारान्त धातुओं से 'अप्' लगता है। कॄ+अप्=करः (बिखेरना), गॄ + अप् = गरः (विष), यु+अप = यवः (मिलाना), लू+अप्=लवः (काटना), स्तु+अप् (स्तवः (प्रशंसा), पू+अप् = पवः (पवित्र करना)।

ग्रह, वृ, दृ, निश्चि, गम्, वश्, रण् से भी 'अप्' प्रत्यय लगता है। जैसे-ग्रहः, वरः, दरः, निश्चयः, गमः, वशः, रणः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यज्, याच्, यत्, विच्छ् (चमकना), प्रच्छ् रक्ष, से भाव अर्थ में 'नङ्' (न) प्रत्यय होता है। जैसे—यज्ञः याच्ञा, यत्नः, विश्नः, प्रश्नः, रक्ष्णः।

उपसर्गसहित घुसंज्ञक धातुओं-(डु) दा (ञ्)—देना, दाण्—देना, दो-खण्डन करना, दे—प्रत्यर्पणकरना, रक्षा करना, धा—धारणकरना, धे—पीना के अनन्तर भाव अर्थ में 'कि' (इ) प्रत्यय लगता है। जैसे–प्रधिः, (प्र+धा+कि–"आतोलोप इटिच"—(६।४।६४) सूत्र से 'आ' का लोप) अन्तर्धिः। अधिकरणवाचक शब्द बनाना हो तो भी घुसंज्ञक धातुओं से कर्म के योग में 'कि' प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे—जलधिः (जलानि धीयन्ते अस्मिन्), नीरधिः क्षीरधिः।

"स्त्रियां क्तिन्"—(३।३।९४)–स्त्रीलिंग भाववाचक शब्द बनाने के लिये धातुओं से 'क्तिन्' (ति) प्रत्यय लगाया जाता है। कृ—कृतिः (कार्य), स्तु—स्तुतिः (प्रशंसा), गम्—गतिः (चाल), रम्—रतिः (आनन्द), नम्—नतिः–(झुकना), स्था—स्थितिः (परिस्थिति), गै—गीतिः (गाना) पा—पीतिः (पीना), पच्–पक्तिः (पकाना), यज–इष्टिः (याग)। इसी तरह धृतिः, मतिः, चितिः आदि।

श्रु, त्यज्, इष्, स्तु धातुओं से करण (साधन) अर्थ में क्तिन् (ति) होता है। श्रुतिः (कान),।

सम्+पद् और वि+पद् से 'क्तिन्' और 'क्विप्' दोनों होते हैं। सम्पत्तिः–सम्पद् (धन, समृद्धि) विपत्तिः–विपद् (आपत्ति)। आपद्, परिषद् आदि। प्रतिपद् दीर्घ ॠकारान्त धातुओं से और 'लू' आदि के अनन्तर 'ति' के स्थान में 'नि' हो जाता है। कॄ से कीर्णिः, (बिखेरना), लू से लूनिः, गीर्णिः, धूनिः आदि। कुछ रूप निपातन से होते हैं–जैसे—सो (षो)–सातिः (अन्त), हन्–हेतिः (शस्त्र), कृत्–कीर्तिः (यश)।

'गुरोश्चहलः'—(३।३।१०३) हलन्त धातु में कोई गुरु अक्षर (संयुक्त व्यञ्जन अथवा दीर्घ स्वर) हो तो 'क्तिन्' न लगकर 'अ' लगता है। जैसे—ईह से ईहा, ऊह् से ऊहा। 'अ प्रत्ययात्'—(३।३।१०२)–जिन धातुओं में कोई प्रत्यय (सन्, यङ् आदि) पहले से ही लगा हो उनमें स्त्रीलिंग के भाव वाचक शब्द बनाने के लिये 'अ' प्रत्यय लगाया जाता है। 'कृ' से सन् प्रत्यय लगाकर चिकीर्ष् धातु से भाववाचक 'अ' प्रत्यय जोड़ने पर 'चिकीर्ष' शब्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनता है, तब स्त्रीलिङ्ग बोधक 'टाप्' (आ) प्रत्यय लगाकर 'चिकीर्षा' (करने की इच्छा) शब्द बनाया जाता है। उसी प्रकार जिगमिषा, बुभुक्षा, पिपासा, पुत्रकाम्या आदि।

चिन्त्, पूज्, कथ्, कुम्ब्, चर्च् धातुओं से तथा सोपसर्ग आकारान्त धातुओं से 'अङ्' (अ) प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिङ्ग भाववाचक शब्द बनाये जाते हैं। जैसे—चिन्ता, पूजा, कथा, कुम्बा, चर्चा, प्रदा, उपदा, श्रद्धा, अन्तर्धा।

णिजन्त (प्रेरणार्थक) धातुओं से तथा आस्, श्रन्थ्, घट्ट, वन्द्, विद् इच्छार्थक इष् धातु से भाव अर्थ में स्त्रीलिङ्गबोधक प्रत्यय 'युच्' (अन्) लगता है। कारणा—(कृ+णिच्+युच्+टाप्), हारणा, धारणा, आसना (आस्+युच्+टाप्)। श्रन्थना, घट्टना, वन्दना, वेदना। घट्—घटना, अनु+इष्—अन्वेषणा। "नपुंसके भावे क्तः"—"ल्युट् च"—(३।३।११४-१५) नपुंसकलिंग भाववाचक शब्द बनाने के लिये कृत् प्रत्यय 'क्त' (निष्ठा) अथवा ल्युट् (अन) प्रत्यय, धातुओं से लगाया जाता है। हस्—हसितम्—हसनम्, गम्—गतम्—गमनम्, कृ—कृतम्—करणम्, हृ—हृतम्—हरणम्, सह्—सोढम्—सहनम् शी—शयितम्—शयनम्, पा—पीतम्—पानम्, भुज्—भुक्तम्—भोजनम्, साध्—सोधितम्—साधनम्। ल्युट् प्रत्यय करण तथा अधिकरण अर्थ में भी होता है। व्रश्च्—व्रश्चनः (काटने का साधन कुल्हाडी), दुह्—गोदोहनम। यहां अधिकरण अर्थ में है। आरु—शृ—शरारुः (घातक), वन्द्—वन्दारुः (स्तुतिकर्ता)।

इक् (इ), इञ् (इ), इण् (इ) ये प्रत्यय क्रमशः—(१) कृष्—कृषिः (कृषक), गृ—गिरिः (पर्वत)। (२) वप्—वापिः (वावडी), वासिः (घर)। (३) अज्—आजिः (युद्ध), आतिः। "पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण"—(३।३।११८) पुंल्लिङ्ग संज्ञा शब्द बनाने के लिये प्रायः धातुओं से 'घ' प्रत्यय लगाया जाता है। आ+कृ+घ=आकरः (खान), आखनः (फावडा), आपणः (बाजार), निकषः (कसौटी), गोचरः (चरगाह), सञ्चरः (मार्ग), वहः (स्कन्ध), व्रजः (गोष्ठ), व्यजः (पंखा) निगमः (वेद) आदि। किन्तु हलन्त धातुओं से 'घ' न लगकर 'घञ्' लगता है। जैसे—रम् से रामः, अपामार्गः आदि।

'इनि' (इन्) प्रत्यय प्र+जु, जि, दृ, क्षि, वि+क्री, वम्, आ+व्यय् अभि+अम्, परि+भू, प्र+सू, से होता है। प्रजविन् (शीघ्रगामी), जयिन् (विजयी), दरिन् (सुस्त), क्षयिन् (क्षय करने वाला), कर्म के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहले होनेपर वि+क्री से निन्दा अर्थ में 'इनि' होता है। तैलविक्रयी, सोमविक्रयी।

'घिनुण्' प्रत्यय त्यज्, रञ्ज्, भज्, दुष्, द्विष, द्रुह्, दुह्, युज्, आ+यम्, आ+यस्, आं+क्रीड्, आ+मुष्, परि+सृ, दिव, क्षिप्, रट्, वद्, दह्, मुह्, सम्+सृज्, पृच्, ज्वर्, वि+विच, चर्, प्र+लप्, सृ, मन्थ्, वद्, वस्, अति और अप पूर्वक चर्, अभि+हन्, अनु+रुध्, धातुओं से कर्ता अर्थ में यह प्रत्यय होता है। त्यज्-त्यागिन् (त्यागी), रागिन् (प्रेमी), भागिन् (हिस्सेदार), दोषिन् (दोष देने वाला), द्वेषिन्, द्रोहिन् आदि। यह प्रत्यय 'शम्' आदि धातुओं से भी होता है, किन्तु उनमें गुण, वृद्धि आदि नहीं होती। शम्-शमिन् (शान्त), मद्-मदिन् अन्यत्र उत्+मद्-उन्मादिन् प्र÷मद्-प्रमादिन् बनता है।

खलर्थ कृत् प्रत्यय

"ईषदुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्—(३।३।१२६)—कठिन (दुःखात्मक) और सरल (सुखात्मक) का भाव सूचित करने के लिये धातुओं से 'खल्' (अ) प्रत्यय लगाते हैं। इस भाव को सूचित करने के लिये 'सु' और 'ईषत्' शब्द (सुखार्थ) तथा दुर् (दुःखार्थ) धातु के पूर्व जुडे रहते हैं। जैसे—सुखेन कर्तुं योग्यः सुकरः (सु+कृ+खल्) सुकरः कटो भवता—चटाई आप से आसानी से बन सकती है। ईषत्करः—ईषत्करः कटो भवता चटाई आप से अनायास ही बन सकती है। दुःखेन कर्तुं योग्यः—दुष्करः (दुष्कृ+खल्)-दुष्करः कटो भवता—चटाई को आप मुश्किल से बना सकते हैं। 'आतो युच्'-(३।३।१२८)—आकारान्त धातुओं से 'खल्' प्रत्यय न लगाकर) 'युच्' प्रत्यय लगाते हैं। जैसे—सुखेन पातुं योग्यः—सुपानः, ईषत्पानः, दुष्पानः। 'भाषायां शासि युधिदृशिधृषिमृषिभ्यो युज्वाच्यः'—(वा०)—जैसे—दुःशासनः, दुर्योधनः, दुर्वहः, सुवहः, ईषद्वहः। 'खल्' और खलर्थ प्रत्यय कर्म का बोध कराते हैं, कर्ता का नहीं, अतः वे कर्म के विशेषण हो सकते हैं, कर्ता के नहीं।

उणादि प्रत्यय

उणादि प्रत्यय का प्रकरण 'उण्' प्रत्यय से प्रारंभ होता है। इस प्रकरण में प्रत्ययों का भण्डार पडा है। इन प्रत्ययों की सहायता से किसी भी शब्द की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निष्पत्ति सरलता से की जा सकती है। जैसे—नी + रक्=नीरम्, इष् + तकन् इष्टका, सू + नु=सूनुः, क्षु + मन्=क्षौमम्, हु + मन्=होमः, तृ + थक्=तीर्थम्, अव् + मन्=ओम्।

कृदन्तप्रकरणसमाप्त।

तद्धित प्रकरण

संज्ञा, सर्वनाम, विशेषणों से 'सुबन्त' प्रत्ययों के समान कुछ अन्य प्रत्यय भी आते हैं, जो विभक्ति-प्रत्ययों से भिन्न हैं। उन प्रत्ययों को तद्धित—प्रत्यय कहते हैं। तद्धित-प्रत्यय लगे हुए शब्दों को तद्धितान्त कहते हैं। इन तद्धित प्रत्ययों को नौ विभागों में बाटा गया है-(१) अपत्यार्थक (२) देवतार्थक (३) समूहार्थक (४) अध्ययनार्थक (५) शैषिक (६) विकारावयवार्थक (७) अनेकार्थक (८) मतुबर्थक (९) स्वार्थिक।

तद्धित-प्रत्ययों से बने शब्द प्रायः संज्ञा, विशेषण और अव्यय होते हैं।

जैसे—संज्ञा शब्द—लघु से लाघव लघुता। गुरु से गौरव गुरुता। मृदु से मार्दव, मृदुता।

विशेषण शब्द—दशरथ से दाशरथिः, रघु से राघवः, मनु से मानवः।

अव्यय शब्द—इदम् से इत्थम्, किम् से कथम्, तद् से तथा इत्यादि।

जिन प्रत्ययों में ण्, ञ्, क् का लोप हुआ हो, जैसे 'अण्' 'अञ्' 'ठक्' इत्यादि प्रत्ययों के लगने पर शब्दों के प्रथम स्वर में वृद्धि (आ, ऐ, औ, आर्) होती है उदाहरण—रघोः अपत्यं=राघवः, दितेः अपत्यं = दैत्यः, वर्षासु भवः = वार्षिकः इत्यादि। स्वर अथवा 'य' से आरंभ होने वाले प्रत्ययों के पूर्व शब्दों के अन्तिम स्वर में विकार हो जाता है-अ, आ, इ, ई का तो लोप ही हो जाता है। उ और ऊ के स्थान में गुण (ओ) होता है। तथा ओ और औ के स्थान में अव् और आव् क्रम से होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसे--(अकारान्त) कृष्ण+अण् = कार्ष्ण (कृष्ण के अ का लोप), (आकारान्त) वर्षा+ठक् (इक) = वार्षिक (वर्षा के आ का लोप), (इकारान्त) गणपति + अण् = गाणपतम् (गणपति की इ का लोप) (ईकारान्त) गर्भिणी+ अण् = गार्भिणम् (गार्भिणी की ई का लोप), (उकारान्त) शिशु+अण्= शैशवम् (शिशु के उ के स्थान में गुण ओ), (ऊकारान्त) वधू+अण्=वाधवम् (वधू के ऊ के स्थान में गुण ओ) (ओकारान्त) गो+यत् (य)+टाप् (आ) = ग्+अव्+या = गव्या, (औकारान्त) नौ+ठक् (इक) = न्+ आव् + इक् = नाविकः ।

व्यंजन से आरंभ होने वाले प्रत्ययों से पूर्व शब्द के अन्तिम 'न्' का प्रायः लोप हो जाता है । जैसे---राजन्+वुञ् (अक) = राज् + अक=राजकम् ।

स्वर अथवा य् से आरंभ होने वाले प्रत्ययों के पूर्व शब्द के अन्तिम 'न्' के साथ पूर्ववर्ती स्वर का भी कभी कभी लोप हो जाता है जैसे---आत्मन्+छ (ईय) आत्म्+ईय = आत्मीयः । प्रत्यय के अन्त में स्थित हल् अक्षर केवल वृद्धि, गुण आदि की सूचना देने के लिये होता है । वह शब्द के साथ नहीं जुड़ता । जैसे---अण् का 'ण' वृद्धि की सूचना देता है । शब्द के साथ केवल 'अ' जोडा जायगा । 'ठक्' प्रत्यय के 'ठ' के स्थान में 'इक्' होता है 'युवोरनाकौ'--- (७-१-१) ल्युट् (वुञ् (वु) प्रत्ययों के स्थान में क्रमशः 'अन' और 'अक' होते हैं "आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्"---प्रत्यय के आदि में स्थित फ, ढ, ख, छ, घ के स्थान में क्रमशः आयन , एय् , ईन, ईय् , इय् होते हैं ।

अपत्यार्थ प्रत्यय

"तस्यापत्यम्"---(४।१।९२) अपत्य शब्द का अर्थ है-सन्तान 'पुत्र अथवा पुत्री' । इस प्रकरण में उन प्रत्ययों का विचार होगा, जिन्हें संज्ञाओं से जोड़ने पर किसी पुरुष या स्त्री सन्तान का बोध हो सकेगा । जैसे-उपगोः अपत्यं पुमान् औपगवः (उपगु का पुत्र), वसुदेवस्य अपत्यं पुमान् = वासुदेवः[१] पर्वतस्य अपत्यं स्त्री = पार्वती । 'अपत्यंपौत्रप्रभृतिगोत्रम्'---(४।१।१६२) इन प्रत्ययों में गोत्र शब्द का व्यवहार पौत्र आदि अपत्य के अर्थ में आया है । गोत्र शब्द का अर्थ है-वंश, उसमें पैदा होने वाले को वंशज या गोत्रज

---

१. 'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च'---सूत्र से अपत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय किया जाता है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहते हैं वंशज अर्थ में जैसें—उत्सस्य गोत्रापत्यं पुमान् औत्सः (उत्स का वंशज) उत्सस्य गोत्रापत्यं स्त्री औत्सी (उत्स की वंशज स्त्री सन्तान)।

'अत इञ्'–(४।१।९५)–अपत्य अर्थ को सूचित करने के लिये आकारान्त प्रातिपदिक (सार्थक शब्द) से 'इञ्' प्रत्यय जोड़ा जाता है। जैसे—दशरथ+इञ् = दाशरथिः (दशरथ का पुत्र), दक्षस्य अपत्यं पुमान् दाक्षिः–दक्ष+इञ्। "स्त्रीभ्यो ढक्"–(४।१।१२०) सन्तान का सूचित करने के लिये स्त्री प्रत्ययान्त प्रतिपादिक से 'ढक्' (एय्) प्रत्यय जोड़ना चाहिये। जैसे–विनता+ढक् (एय्) = वैनतेय (विनता का पुत्र)। भगिनी+ढक् (एय्) = भागिनेयः (भाञ्जा)।

"द्व्यचः"—(४।१।१२१)–दो स्वरवाले स्त्रीप्रत्ययान्त प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में 'ढक्' प्रत्यय जाडा जाता है। जैसे—दत्ता+ढक् (एय्) दात्तेयः। "इतश्चानिञः"—(४।१।१२२) इकारान्त दो स्वर वाले प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय जुड़ता है। जैसे—अत्रि+ढक् (एय्)=आत्रेयः (अत्रि का पुत्र)।

"अश्वपत्यादिभ्यश्च"–(४।१।८४) अपत्य अर्थ में अश्वपति आदि (अश्वपति, शतपति, धनपति, गणपति, राष्ट्रपति, कुलपति, गृहपति, पशुपति, धान्यपति, धन्वपति, सभापति, प्राणपति, क्षेत्रपति) प्रातिपदिकों से 'अण्' प्रत्यय जुडता है। अश्वपति+अण्=आश्वपतम्। कुलपति+अण्=कौलपतम्। गृहपति अण्=गार्हपतम्। (अश्वपति का पुत्र आदि)।

"राजश्वशुराद् यत्"–(४।१।१३७) 'राज्ञोजातावेवेति वाच्यम्'—(वार्तिक)–राजन् शब्द से जाति के अर्थ में ही और श्वशुर शब्द से अपत्य अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—राजन्+यत्–राजन्यः (क्षत्रियकुलोत्पन्न) श्वशुर+यत्–श्वशुर्यः (शालक)।

समास किये गये शब्दों से तद्धित प्रत्यय जोड़ने पर कभी उत्तर पद के प्रथम स्वर की वृद्धि होती है और कभी दोनों पदों के प्रथम स्वर की वृद्धि होती है। जैसे पूर्ववार्षिकः (पिछले वर्ष का) सुहृद् से सौहार्दम्। सुभग से सौभाग्य।

यदि किसी शब्द के प्रथम स्वर से पूर्व उपसर्ग का य् अथवा व् हो तो उसे क्रमशः इय् अथवा उव् किया जाता है तदनन्तर प्रथम स्वर को वृद्धि होती है। जैसे—व्याकरण+अ–वियाकरण+अ–वैयाकरणः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मत्वर्थीय प्रत्यय

हिन्दी में गाड़ीवान, रिक्शेवाला आदि शब्दों में 'वान्' 'वाला' आदि प्रत्ययों को जोड़कर जो अर्थ प्रकट किया जाता है, उसी को संस्कृत में जिन प्रत्ययों से प्रकट किया जाता है, उन्हें मत्वर्थीय (मतुप् प्रत्यय के अर्थवाले) प्रत्यय कहते हैं।

"तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्"—(५।२।९४)

['भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने।
सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः' ॥—वार्तिक]

किसी वस्तु का होना किसी अन्य वस्तु में सूचित करने के लिये 'मतुप्' (मत्) प्रत्यय किया जाता है। जैसे—धनम् अस्य अस्ति इति धनवान्—धन + मतुप्।

जब किसी वस्तु के बाहुल्य, निन्दा, प्रशंसा, नित्ययोग, अधिकता अथवा सम्बन्ध को बताना हो तो मत्वर्थीय प्रत्यय लगाया जाता है। धनवान्, विद्यावान्, रूपवान्, ककुदावर्तिनीकन्या (कुबड़ी लड़की—मत्वर्थीय 'इनि' प्रत्यय) क्षीरी तरुः (जिसमें नित्य दूध रहता हो ऐसा वृक्ष)। विशेषकर 'मतुप्' प्रत्यय गुणवाचक शब्दों (रूप, रस, गन्ध स्पर्श आदि) के साथ जोड़ा जाता है। जैसे—गुणवान्, रूपवान्, गन्धवान्।

"मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः"—(८।२।९)

"झयः"—(८।२।१०)—अगर 'मतुप्' प्रत्यय के पहिले 'म्, अ, तथा पांचों वर्गों के प्रथम चार वर्णों में अन्त होनेवाले शब्द हों अथवा जिनकी उपधा (शब्द के अन्तिम अक्षर से पूर्व का अक्षर 'उपधा' कहा जाता है) 'म्, अ, आ' हो तो 'मतुप्' के 'म्' के स्थान में 'व्' होता है। जैसे—विद्यावान्, यशस्वान् विद्युत्वान्, लक्ष्मीवान्, तडित्वान् इत्यादि। कतिपय (यव आदि) शब्दों में उक्त नियम नहीं लगता। जैसे—यवमान्।

"अत इनिठनौ"—(५।२।११५) अकारान्त शब्दों से इनि—(इन्) और ठन् (इक) होते हैं। जैसे—दण्डी (दण्ड+इनि), दण्डिकः (दण्ड+ठन्)।

"तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्"—(५।२।३६)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तारका, पुष्प, सूत्र, कण्टक, कुसुम, पुलक, दीक्षा, प्रतिबिम्ब आदि कतिपय परिगणित शब्दों से 'यह प्रकट हो गया है जिसमें' इस अर्थ को बताने के लिये 'इतच्' (इत्) प्रत्यय जोड़ा जाता है। जैसे—तारका + इतच्= तारकित (तारे प्रकट हुए हैं जिसमें)। पुष्प + इतच्=पुष्पित, सूत्र + इतच्= सूत्रित, इ०।

भावार्थ तथा कर्मार्थ

'तस्य भावस्त्वतलौ'—(५।१।११९)-भाववाचकसंज्ञा बनाने के लिये शब्द सें 'त्व' अथवा 'तल्' (ता) जोड़ दिया जाता है। 'त्व' प्रत्ययवाले शब्द सदा नपुंसकलिंग और 'तल्' प्रत्ययवाले शब्द सदा स्त्रीलिंग रहते हैं। जैंसे—गो + त्व=गोत्वम्, देव + तल्=देवता, स्त्रीता, पुँस्ता, समता,

'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा'—(५।१।१२२) 'र ऋतो हलादेर्लघोः'—(६।४।१६१)

पृथु, मृदु, महत्, पटु, तनु, लघु, स्वादु, आदि कतिपय परिगणित शब्दों सें भाव का अर्थ (भाव वाचक) बोधन करने के लिये 'इमनिच्' (इमन्) प्रत्यय भी विकल्प से जोड़ा जाता है। 'इमनिच्' प्रत्यय वाले शब्द का यदि व्यंजन से आरंभ हो और उसके अनन्तर 'ऋ' (मृदु, पृथु, दृढ आदि) आवें तो उस 'ऋ' के स्थान में 'र' हो जाता है। इमनिच् प्रत्ययान्तवाले सभी शब्द सदा पुंल्लिङ्ग रहते हैं।

जैसें—पृथु+इमनिच्=प्रथिमन् (प्रथिमा, पुंल्लिङ्ग 'महिमन्' शब्द के समान सातों विभक्तियों में रूप होंगे) अथवा 'पृथुत्वम्–पृथुता'। महत्+ इमनिच्=महिमन् (महिमा), पटिमन्, तनिमन्, लघिमन् स्वादिमन्।

"वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च"—(५।१।१२३) वर्णवाची शब्दों (नील, शुक्ल, आदि) के आगे तथा दृढ आदि (दृढ, वृढ, परिवृढ, कृश, वक्र आदि) शब्दों के आगे 'इमनिच्' अथवा 'ष्यञ्' (य) भाव का अर्थ बोधन करने के लिये जोडे जाते हैं। ष्यञ् प्रत्ययान्त शब्द सदा नपुंसकलिङ्ग होते हैं।

जैंसे—शुक्लस्य भावः=शुक्लिमा,–शुक्ल + इमनिच्, शौक्ल्यम्–शुक्ल + ष्यञ्, शुक्लत्वम्–शुक्ल+त्व, शुक्लता–शुक्ल+तल्। इसी प्रकार मधुरिमा, माधुर्य, मधुरत्व, मधुरता। द्रढिमा, दार्ढ्य, दृढत्व, दृढता। "गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणिच"—(५।१।१२४) गुणवाचक शब्दों तथा ब्राह्मण, निपुण, कुशल,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधिपति, चोर, धूर्त, अलस, राजन्, विषम, मलिन, मूढ आदि कतिपय परिगणित शब्दों के आगे कर्म अथवा भाव अर्थ बताने के लिये 'ष्यञ्' (य) प्रत्यय जोडा जाता है। जैसे—ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा=ब्राह्मण्यम्—ब्राह्मण + ष्यञ्। नैपुण्यम्—निपुण + ष्यञ्, कौशल्यम्। आधिपत्यम्। चौर्यम्। धौर्त्यम्। आलस्यम्। राज्ञो भावः कर्म वा=राज्यम्—राजन् + ष्यञ्। वैषम्यम्। मालिन्यम्। मौढ्यम्।

'इगन्ताच्च लघुपूर्वात्'—(५।१।१३१) इ, उ, ऋ, ऌ में अन्त होने वाले शब्दों के आगे (यदि पूर्व वर्ण लघु अक्षर हो जैसे—शुचि, मुनि, ऋषि, लघु, आदि) भाव या कर्म अर्थ में 'अञ्' (अ) जोडा जाता है।

जैसे—शुचेर्भावः कर्म वा शौचम्—शुचि + अञ्। मौनम्। लाघवम्। आर्षम्। 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः'—(५।१।११५) किसी के तुल्य क्रिया (काम) करने का अर्थ बताना हो तो जिसके समान क्रिया की जाती है, उस शब्द के आगे 'वति' (वत्) प्रत्यय जोडा जाता है। जैसे—ब्राह्मणेन तुल्यम् अधीते=ब्राह्मणवत् अधीते। किन्तु पुत्रेण तुल्यः स्थूलः ही होगा। पुत्रवत् स्थूलः नहीं होगा।

"तत्र तस्येव"—(५।१।११६) सप्तमी और षष्ठी के तुल्य अर्थ में भी 'वति' (वत्) प्रत्यय होता है। जैसे—इन्द्रप्रस्थे इव प्रयागे दुर्गाः=इन्द्रप्रस्थवत् प्रयागे दुर्गाः (जैसा किला इन्द्रप्रस्थ में है वैसा ही प्रयाग में है) चैत्रस्य इव मैत्रस्य गावः=चैत्रवन्मैत्रस्य गावः (जैसी गाएँ चैत्रकी हैं, वैसी ही मैत्र की हैं) "इवे प्रतिकृतौ"—(५।३।९६) किसी के तुल्य किसी की मूर्ति अथवा चित्र हो अथवा किसी के स्थान पर कोई रख लिया जाय तो उस शब्द के आगे 'कन्' (क) प्रत्यय जोडा जाता है। जैसे—अश्व इव प्रतिकृतिः = अश्वकः (घोडे के समान मूर्ति अथवा चित्र है जिसका)। पुत्रकः (पुत्र के स्थान पर किसी वृक्ष अथवा पक्षी को जब पुत्र माना जाय)।

समूहार्थ

"तस्य समूहः"—(४।२।३७) "भिक्षादिभ्योऽण्"—(४।२।३८)—किसी वस्तु के समूह का अर्थ सूचित करने के लिये उस वस्तुवाचक शब्द से 'अण्' (अ) प्रत्यय जोड़ा जाता है।

जैसे—काकानां समूहः = काकम्। बकानां समूहः = बाकम्। वृकानां समूहः=वार्कम्—(कौओं का समूह, बगुलों का समूह, भेडियों का समूह)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसी तरह—मायूरम्, कापोतम्। "ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्"—(४।२।४३) "गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्"—'वा०' ग्राम, जन, वन्धु, गज, सहाय, इन शब्दों से समूह अर्थ का ज्ञान कराने के लिये 'तल्' (ता) जोड़ दिया जाता है। जैसे—ग्रामता, जनता, बन्धुता, गजता, सहायता।

सम्बन्धार्थ और विकारार्थ

"तस्येदम्"—(४।३।१२०)—'यह इसका है' इस अर्थ को सूचित करने के लिये, जिसका सम्बन्ध बताना हो, उसके आगे 'अण्' प्रत्यय जोडा जाता है। जैसे—उपगोः इदम् (उपगु+अण्)=औपगवम्। देवस्य अयम्=दैवः। ग्रीष्म+अण्=ग्रैष्मम्। निशा+अण्=नैशम्। (सम्बद्ध वस्तु के लिंग के अनुसार इसका लिंग परिवर्तित होता है)।

"हलसीराठ्ठक्"—(४।३।१२४)—'सम्बन्ध' अर्थ बताने के लिये 'हल' और 'सीर' शब्द से 'ठक्' (इक) लगाया जाता है। जैसे—हालिकम्, सैरिकम्।

"तस्य विकारः"—(४।३।१३४)—जिस वस्तु से बनी हुई (विकार-स्वरूप) कोई दूसरी वस्तु दिखानी हो तो उसके आगे 'अण्' प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे—भस्मनो विकारः = भास्मनः (भस्म से बना हुआ), मार्तिकः= मृत्तिकायाः विकारः (मिट्टी से बना हुआ) "अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः"—(४।३।१३५) प्राणिवाचक, ओषधिवाचक, तथा वृक्षवाचक शब्दों के आगे वही 'अण्' प्रत्यय विकार अर्थ के साथ 'अवयव' अर्थ को भी बताता है। जैसे—मयूरस्य विकारः अवयवो वा = मायूरः। मर्कटस्य विकारः अवयवो वा= मार्कटः। पिप्पलस्य विकारः अवयवो वा = पैप्पलः। "ओरञ्" (४।३।१३९)—अवयव का अर्थ बताना हो तो उ, ऊ में अन्त होनेवाले शब्दों के आगे 'अञ्' (अ) प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे—देवदारु+अञ्=दैवदारवम्।

विकार अथवा अवयव का अर्थ सूचित करना हो तो विकल्प से 'मयट्' प्रत्यय भी लगाया जाता है, लेकिन खाने या पहनने की वस्तु के आगे नही जोड़ा जाता। जैसे—अश्मनः विकारः अवयवो वा = आश्मनम्—अश्ममयम् सौवर्णम्-सुवर्णमयम्। भास्मनम्—भस्ममयम्। किन्तु 'माद्गः सूपः' (मूंग की दाल) यहां 'अण्' ही होगा 'मुद्गमयः सूपः' नहीं होगा। कार्पासम् आच्छादनम् (रुई का कोट) के लिये 'कार्पासमयम् आच्छादनम्' का प्रयोग नहीं होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिमाणार्थ और संख्यार्थ

जिन प्रत्ययों के लगने से परिमाण (कितना) का ज्ञान होता है, उन्हें 'परिमाणार्थ' प्रत्यय कहते हैं। "यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्'–(५।२।३९)

"किमिदंभ्यां वोघः"–(५।२।४०) यत्, तत्, एतत् के आगे 'वतुप्' प्रत्यय जोड़ा जाता है, और 'वतुप्' के 'व' के स्थान में 'घ' हो जाता है, पश्चात् वह 'घ' 'इय्' में परिवर्तित हो जाता है। जैसे—किम् परिमाणम् अस्य इति = 'कियत्', इदम् परिमाणम् अस्य इति = 'इयत्'। यहां पर 'किवत्', 'इवत्' नहीं होगा। परिमाण के अर्थ में इन शब्दों का प्रयोग केवल एकवचन में ही होगा। जैसे—'कियान् अध्वा अधुना अवशिष्टः' ? (कितना मार्ग अभी बाकी है) 'तावानेव यावान् भवता लङ्घितः' (उतना ही, जितना आप ने तय किया)।

किन्तु संख्या को जब इन शब्दों से सूचित किया जाता है तब विशेष्य के वचन के अनुसार एकवचन, द्विवचन, बहुवचन भी होता है। जैसे—कियन्तः पुरुषाः आदि।

प्रमाण, परिमाण और संख्या के सन्देह को हटाकर जहां निश्चय बताना हो वहां 'मात्रच्' प्रत्यय लगाते हैं। जैसे—पञ्चमात्रम् (पांच ही)। आढकमात्रम्। कुंचिमात्रम्। पुष्कलमात्रम्।

'अष्टमुष्टिर्भवेत् कुञ्चिः, कुञ्चयोऽष्टौ तु पुष्कलम्।
पुष्कलानि च चत्वारि आढकः परिकीर्तितः॥

परिमाण बताने के लिये पुरुष, और हस्तिन् के आगे 'अण्' प्रत्यय जोड़ा जाता है।

जैसे—पौरुषम् (सरोवरे जलम्) इस सरोवर में आदमी के डूबने भर जल है। हास्तिनम् = हाथी भर जल। "किमः संख्यापरिमाणे डति च"—(५।२।४१) किम् शब्द से 'डति' (अति) लगाते हैं, जिससे संख्या और परिमाण का भी बोध होता है। जैसे—किम्+डति = कति (कितने)।

"संख्याया अवयवे तयप्"–(५।२।४२) "द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा"–(५।२।४३)

अवयव में वर्तमान संख्या के वाचक शब्द से षष्ठी के अर्थ में 'तयप्' प्रत्यय होता है। 'द्वि' और 'त्रि' से आगे 'तयप्' के स्थान में 'अयच्' आदेश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विकल्प से होता है। किन्तु 'उभ' शब्द से आगे 'तयप्' को 'अयच्' आदेश नित्य होता है। जैसे—पञ्च अवयवा अस्य = पञ्चतयं दारु। (ऐसी लकड़ी जिसके पांच अवयव हों)। द्वयम्—द्वितयम्। त्रयम्–त्रितयम्। उभयम्।

हितार्थ

"तस्मै हितम्"–(५।१।५) जिसके हित की कोई वस्तु हो, उसके अनन्तर 'छ' (ईय्) प्रत्यय जोड़ा जाता है। जैसे—वत्सेभ्यः हितं दुग्धं = वत्सीयं दुग्धम् (बछड़ों के लिये दूध)। शङ्कव्यं दारु (शंकु = खूंटी के लिये लकड़ी)।

"शरीरावयवाद् यत्"–(५।१।६), "उगवादिभ्योयत्"–(५।१।९) शरीर के अवयववाचक चतुर्थ्यन्त शब्द से तथा उकारान्त शब्द और गो, हविस्, नाभि, श्वन् (कुत्ता). असुर, वेद, बीज आदि कतिपय परिगणित शब्दों से हित अर्थ में 'यत्' प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे—दन्तेभ्यः हितं = दन्त्यम्–दन्त+यत्। कर्णाभ्यां हितं = कर्ण्यम्–कर्ण+यत्। गोभ्यः हितं = गव्यम्–गो+यत्। शुने हितं = शून्यम्–शुन्यम्। यहां 'शुनः सम्प्रसारणं वा च दीर्घत्वम्' वार्तिक से 'श्वन्' को शून् अथवा शुन् होता है। असुरेभ्यो हितम्–असुर्यम्। वेदाय हितं = वेद्यम्। बीजाय हितं = बीज्यम्।

क्रियाविशेषणार्थ

हिन्दी में दिशावाची, कालवाची आदि क्रियाविशेषणों से जो उद्देश्य सिद्ध किया जाता है, उसी को संस्कृत में कतिपय तद्धित प्रत्ययों के लगाने से पूर्ण कर लिया जाता है।

"पञ्चम्यास्तसिल्"—(५।३।७), "पर्यभिभ्याञ्च"—(५।३।९),

"सर्वोभयार्थाभ्यामेव" (वार्त्ति०) पंचमी के अर्थ में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषणवाचक शब्दों से तथा 'परि' (सर्वार्थक) और 'अभि' (उभयार्थक) उपसर्गों से 'तसिल्' (तस्) जोड़ दिया जाता है।

जैसे—त्वत् सकाशात् इति–त्वत्तः (युष्मद्+तसिल्)। मत् सकाशात् इति मत्तः (अस्मत्+तसिल्) युष्मत् सकाशात् इति–युष्मत्तः। अस्मत्तः। एतस्मात् इति–अतः (एतद्+तसिल्)। यस्मात् इति यतः–(यत्+तसिल्)। ततः, मध्यतः, परस्मात् इति–परतः। कस्मात् इति–कुतः (किम् + तसिल्)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वस्मात् इति–सर्वतः (सर्व + तसिल्)। अस्मात् इति–इतः अमुष्मात् इति–अमुतः। उभयस्मात् इति उभयतः। परि+तसिल्–परितः। अभि+ तसिल्–अभितः।

"सप्तम्यास्त्रल्"—(५।३।१०) सर्वनाम तथा विशेषण सें सप्तमी के अर्थ में 'त्रल्' प्रत्यय लगाया जाता है।

जैसे—तस्मिन् इति = तत्र। यत्र। बहुत्र। सर्वत्र। एकत्र।

'इदमोहः'—(५।३।११)–किन्तु इदम् से त्रल् प्रत्यय नहीं लगाया जाता, बल्कि 'ह' लगाया जाता है, तब अस्मिन् इति–'इह' होता है। "सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा–(५।३।१५)–जब, कब आदि अर्थ बताने के लिये सर्व, एक, अन्य, किम्, यद्, तद् शब्दों से 'दा' प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे—सर्व+दा = सर्वदा (सर्वस्मिन् काले)। एक+दा = एकदा (एकस्मिन् काले)। अन्यदा, कदा, यदा, तदा।

कब, जब आदि अर्थ बताने के लिये किम्, यत्, तत्, इदम् आदि शब्दों से 'दानीम्' प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे—किम्+दानीम् = कदानीम्। यदानीम्। तदानीम्। इदानीम्।

"प्रकारवचने थाल्"–(५।३।२३)–प्रकार अर्थ में सर्वनाम शब्दों से 'थाल्' (था) प्रत्यय जोड़ा जाता है। जैसे—तेन प्रकारेण तथा। यथा, सर्वथा, उभयथा, अन्यथा,।

'इदमस्थमुः'—(५।३।२४), 'किमश्च'–(५।३।२५) इदम्, एतद्, किम् से 'थमु' (थम्) प्रत्यय लगता है। केन प्रकारेण = कथम्। अनेन प्रकारेण = इत्थम्।

'इदमोर्हिल्'–(५।३।१६) सप्तम्यन्त इदम् शब्द से 'र्हिल्' प्रत्यय 'काल' अर्थ में विकल्प से होता है। अस्मिन् काले = एतर्हि।

"अधुना"–(५।३।१७) कालवाचक सप्तम्यन्त इदम् शब्द से स्वार्थ में 'अधुना' प्रत्यय होता है। जैसे—अस्मिन् काले = अधुना। यहाँ पर 'इदम्' शब्द के स्थान में 'इदम इश्' सूत्र से "इश्" आदेश और 'यस्येतिच' सूत्र से अवशिष्ट 'इ' का लोप होता है, केवल प्रत्यय ही बच जाता है। "किमोऽत्"—(५।३।१२)–'क्वाति–(७।२।१०५) सप्तम्यन्त किम् शब्द से 'अत्' प्रत्यय विकल्प से होता है। और किम् को 'क्व' आदेश हो जाता है कस्मिन् इति 'क्व', कुत्र।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्"—(५।४।१७) दो बार, तीन बार आदि की तरह 'बार' अर्थ में संख्यावाचक शब्दों से 'कृत्वसुच्' (कृत्वस्) प्रत्यय लगाते हैं।

जैसे—पञ्चकृत्वः भुङ्क्ते (पाँच बार खाता है), षट्कृत्वः, सप्तकृत्वः आदि।

"द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्"—(५।४।१८) 'बार' अर्थ में ही द्वि, त्रि, चतुर् शब्द से 'सुच्' (स) प्रत्यय लगता है।

जैसे—द्विः=दो बार (द्वि+सुच्)। त्रिः=तीन बार। चतुः=चार बार।

"एकस्य सकृच्च"-(५।४।१९) 'बार' अर्थ में ही 'एक' शब्द से 'सुच्' प्रत्यय लगता है और 'एक' के स्थान में 'सकृत्' आदेश हो जाता है। जैसे—एक+सुच् = सकृत्।

'बहु' शब्द से 'कृत्वसुच्' और 'धा' दोनों प्रत्यय लगते हैं। जैसे—बहुकृत्वः—बहुधा = बहुतबार।

शैषिक

"शेषे"—(४।२।९२) सूत्र के अनुसार इस प्रकरण में उन प्रत्ययों को बताया जायगा। जो 'शेष' अर्थ में किये जाते हैं। यहाँ पर 'शेष' उसे कहा गया है, जिन (जात, भव, आगत, ग्रहण (गृह्यते) पिष्ट) अर्थों का बोध अपत्यार्थक प्रत्यय, चातुरर्थिक प्रत्यय, रक्ताद्यर्थक प्रत्ययों से नहीं हो पाता, उन-तद्धित अर्थों को पाणिनि ने 'शेष' शब्द से कहा है। शेष तद्धित अर्थों के लिये 'अण्' आदि प्रत्यय लगाये जाते हैं।

जैसे—चक्षुषा गृह्यते (रूपम्) = चाक्षुषम् (चक्षुष्+अण्) श्रवणेन श्रूयते (शब्दः) = श्रावणः (श्रवण+अण्) अश्वैः उह्यते (रथः) = आश्वः (अश्व+अण)। चतुर्भिः उह्यते = (शकटम्) = चातुरम्। चतुर्दश्यां दृश्यते (रक्षः) = चातुर्दशम्। "ग्रामाद्यखञौ"—(४।२।९४) 'ग्राम' शब्द से जात आदि अर्थों में 'य' और 'खञ्' (ईन्) प्रत्यय लगते हैं जैसे—ग्राम्यः, ग्रामीणः।

"द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्"—(४।२।१०१) द्यु, प्राच्, अपाच्, उदच्, प्रतीच् शब्दों से 'यत्' प्रत्यय लगता है। जैसे—(दिव्+यत्)=दिव्यम् प्राच्यम्, अपाच्यम्, उदीच्यम्, प्रतीच्यम्। 'अव्ययात्त्यप्' (४।२।१०४)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'अमेहक्वतसित्रेभ्य एव'—(वा०) 'त्यबनेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्'—(वा०)- अमा, इह, क्व, तसिप्रत्ययान्त त्रल् प्रत्ययान्त शब्दों तथा 'नि' से ध्रुव अर्थ में 'त्यप्' (त्य) लगता है। जैसे—अमात्यः, इहत्यः, क्वत्यः, ततस्त्यः, यतस्त्यः, कुत्रत्यः तत्रत्यः, अत्रत्यः, नित्यः।

"नद्यादिभ्यो ढक्"—(४।२।९७) नदी आदि शब्दों से जातादि अर्थों में 'ढक्' प्रत्यय होता है। जैसे—नादेयम्, माहेयम्, वाराणसेयम्।

"दक्षिणापश्चात् पुरसस्त्यक्"—(४।२।९८) दक्षिणा, पश्चात्, पुरस् शब्दों से 'त्यक्' प्रत्यय होता है। जैसे—दाक्षिणात्यः, पाश्चात्यः, पौरस्त्यः।

"राष्ट्रावारपाराद् घखौ"—(४।२।९३) 'अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्'—(वा०)-राष्ट्र शब्द से 'घ' (इय), और अवारपार शब्द से तथा उसके—विगृहीत और विपरीत रहने पर भी 'ख' (ईन्) प्रत्यय होता है। जैसे—राष्ट्रियः, अवारपारीणः, अवारीणः, पारीणः, पारावारीणः।

'दूरादेत्यः'—(वा०) दूर शब्द से 'एत्य' प्रत्यय लगता है। जैसे—दूरेत्यः।

"ऐषमोह्यः श्वसोऽन्यतरस्याम्"—(४।२।१०५) ऐषमस्, ह्यस्, श्वस् से 'त्यप्' प्रत्यय विकल्प से होता है। और 'त्यप्' प्रत्य के अभाव में "सायं चिरं प्राह्णे प्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च"—(४।३।२३) सायम्, चिरम्, प्राह्णे, प्रगे, और कालवाची अव्यों से 'ट्यु और ट्युल्' प्रत्यय तथा 'तुट्' का आगम भी होता है। जैसे—ऐषमस्त्यम्—ऐषमस्तनम्, (इस वर्ष का) ह्यस्त्यम्—ह्यस्तनम् (कलका) श्वस्त्यम्—श्वस्तनम् (आगे आने वाले कल का) "वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम्"—(१।१।७३) 'त्यदादीनि च' (१।१।७४) 'वृद्धाच्छः', (४।२।११४)—जिस शब्द के स्वरों में प्रथम स्वर वृद्धि वाला (आ, ऐ, औ) हो, उन शब्दों को और त्यद् आदि (त्यद्, तद्, यद् एतद्, इदम्, अदस्, एक द्वि युष्मद्, भवत्, किम्) शब्दों को 'वृद्ध' कहा जाता है। इन वृद्ध शब्दों से 'छ' (ईय्) प्रत्यय जोड़ा जाता है।

जैसे—शाला + छ (ईय्) = शालीयः, मालीयः, त्यदीयः, तदीयः, यदीयः, एतदीयः, इदमीयः, अदसीयः, एकीयः, द्वीयः, युष्मदीयः, भवदीयः, किमीयः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च" "तस्मिन्नणिच युष्माकास्माकौ"--(४।३।१–२) "तवकममकावेकवचने"--(४।३।३) "प्रत्ययोत्तरपदयोश्च"—(७।२।९८)---युष्मद्--अस्मद् शब्दों से 'खञ्' विकल्प से होता है। इसके न होने पर 'अण् होगा। खञ् प्रत्यय और अण् प्रत्यय के आगे रहने पर युष्मद्–अस्मद् शब्द को युष्माक और अस्माक आदेश होते हैं। एकार्थवाची युष्मद्–अस्मद् शब्द को खञ् और अण् प्रत्यय आगे रहने पर 'तवक' और 'ममक' आदेश होते हैं। प्रत्यय तथा उत्तरपद आगे रहने पर एकार्थवाची युष्मद्–अस्मद् शब्द के मपर्यन्त भाग को 'त्व' 'म' आदेश होते हैं। जैसे--युष्मद्--युष्माक+अण् = यौष्माक, + खञ् = यौष्माकीणः = तुम्हारा। तवक + अण् = तावक, + खञ् = तावकीनः = तेरा। युष्मद् + छ = युष्मदीयः। अस्मद्—अस्माक+अण् = आस्माक, + खञ् = आस्माकीनः = हमारा। ममक + अण् = मामक, + खञ्=मामकीन = मेरा, अस्मद् + छ = अस्मदीयः।

"कालाट्ठञ्"—(४।३।११)—कालवाची शब्दों से ठञ् प्रत्यय होता है। जैसे--मास+ठञ् (इक्) = मासिकः, सांवत्सरिकः, सायंप्रातिकः, पौनः पुनिकः आदि।

"सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्"—(४।३।१६) सन्धिवेला, सन्ध्या, अमावास्या, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पौर्णमासी, प्रतिपद् तथा ऋतुवाचक शब्द (ग्रीष्म, शरद् आदि) और नक्षत्रवाचक शब्दों से 'अण्' प्रत्यय होता है।

जैसे—सान्धिवेलम्, सान्ध्यम्, आमावास्यम्, त्रायोदशम्, चातुर्दशम्, पौर्णमासम्, प्रातिपदम्, ग्रैष्मम्, वार्षिकम्—वर्षा + ठक्, प्रावृषेण्यम्–प्रावृष्+एण्य, शारदम्, हैमन्तम्, शैशिरम्, वासन्तम्, पौषम् आदि।

"सायं चिरं प्राह्णे प्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च" (४।३।२३) समय वाचक क्रियाविशेषण शब्दों से होना अर्थ में 'ट्यु, ट्युल्' प्रत्यय होते हैं। सायं+त्+ट्युल् (अन) सायन्तनम्, चिरन्तनम्, प्राह्णेतनम्, प्रगेतनम्, दोषातनम्, दिवातनम्, इदानीन्तनम् तदानीन्तम् ह्यस्तनम्, चिरन्तनम्। 'प्र' से भी होता है–प्रतनः (पुराना), नवको नू होता है—नूतनः।

"द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ"--(५।३।५७)-दो में से किसी एक का अतिशय (विशेषता) प्रदर्शित करने के लिये 'तरप्' और 'ईयसुन्' प्रत्यय लगाये जाते हैं। जैसे—लघु से लघीयस्, लघुतर (दोनों में से एक के लिये)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"अतिशायने तमबिष्ठनौ"—(५।३।३५) दो से अधिकों में से एक का अतिशय बताना हो तो तमप् और 'इष्ठन्' प्रत्यय जोड़े जाते हैं। जैसे—लघुतमः, लघिष्ठः।

नीचे दिये हुए शब्दों से ईयस् और इष्ठन् प्रत्यय लगाने पर बनने वाले शब्दरूपों का कोष्ठगत शब्द अवशेष रहता है। सभी शब्दों के तर और तम वाले भी रूप हो सकेंगे।

शब्द	ईयस्		इष्ठ
प्रशस्य	(श्र)	श्रेयान्,	श्रेष्ठ
वृद्ध,	प्रशस्य (ज्य)	ज्यायान्,	ज्येष्ठः
अन्तिक	(नेद)	नेदीयान्,	नेदिष्ठः
बाढ	(साध)	साधीयान्,	साधिष्ठः
स्थूल	(स्थू)	स्थवीयान्,	स्थविष्ठः
दूर	(दू)	दवीयान्,	दविष्ठः
प्रिय	(प्र)	प्रेयान,	प्रेष्ठः
स्थिर	(स्थ)	स्थेयान्,	स्थेष्ठः
उरु	(वर्)	वरीयान्,	वरिष्ठः
गुरु	(गर्)	गरीयान्,	गरिष्ठः
दीर्घ	(द्राघ्)	द्राघीयान्,	द्राघिष्ठः
बहु	(भू)	भूयान्,	भूयिष्ठः
युवन्	(कन्)	कनीयान्,	कनिष्ठः
पटु	(पट्)	पटीयान,	पटिष्ठः
लघु	(लघ्)	लघीयान्,	लघिष्ठः
महत्	(मह)	महीयान्,	महिष्ठः
मृदु	(म्रद्)	म्रदीयान्,	म्रदिष्ठः
बलिन्	(बल्)	बलीयान्	बलिष्ठः

"किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे"—(५।४।११)–किम् शब्द तथा एत् प्रत्ययान्त (प्राह्णे, प्रगे आदि) शब्दों से, अव्ययों से और तिङन्त से तमप् + आमु=तमाम् लगाया जाता है। जैसे—किन्तमाम्, प्राह्णेतमाम्, उच्चैस्तमाम्, (खूब ऊँचा) पचतितमाम्, (खूब अच्छी तरह पकाता है), नीचैस्तमाम्, गच्छतितमाम्, दहतितमाम् आदि। किन्तु द्रव्यसम्बन्धी प्रकर्ष बताना हो तो 'आमु' नहीं लगता। जैसे—उच्चैस्तमः तरुः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः"—(५।३।१७)-कुछ कमी दिखाने के लिये 'कल्पप्' (कल्प), देश्य, देशीयर् (देशीय) प्रत्यय जोडे जाते हैं। जैसे—विद्वत्कल्पः, विद्वद्देश्यः, विद्वद्देशीयः, कुछ कम विद्वत्तावाला पुरुष। दशवर्षकल्पः, दशवर्षदेश्यः, दशवर्षदेशीय (कुछ न्यून दस वर्ष का)। पठतिकल्पम्—कुछ कम पढता है।

"अनुकम्पायाम्"—(५।३।७६)-अनुकम्पा प्रदर्शित करने के लिये 'कन्' (क) प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे—पुत्रकः (बेचारा लड़का), भिक्षुकः (बेचारा भिखारी), शिष्यकः (बेचारा शिष्य)। "कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः"—(५।४।५०)-'अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्' (वा०), "अस्य च्वौ"—(७।४।३२), "च्वौच" –(७।४।२६)। जब किसी वस्तु में इतना परिवर्तन हो जाय (इतनी बदल जाय) कि काली न हो तो काली हो जाय मीठी न हो तो मीठी हो जाय अर्थात् जो पहले नहीं थी, वह हो जाय—यह बताना हो तो "च्वि" प्रत्यय लगाया जाता है। यह प्रत्यय केवल 'कृ' धातु, 'भू' धातु और 'अस्' धातु के योग में आता है। 'च्वि' का लोप हो जाता है, और पूर्व पद का 'अ' अथवा 'आ' 'ईकार' में बदल जाता है, और यदि अन्य स्वर पूर्व में हो तो वह दीर्घ हो जाता है। जैसे—अकृष्णः कृष्णः क्रियते=कृष्ण+च्वि+क्रियते=कृष्ण् ई+क्रियते=कृष्णीक्रियते। अब्रह्मा ब्रह्मा भवति=ब्रह्मीभवति (जो ब्रह्मा नहीं है वह ब्रह्मा होता है), अगङ्गा गङ्गा स्यात्=गङ्गीस्यात् (जो गंगा नहीं है वह गंगा हो जाय), शुचीभवति, पटूकरोति आदि।

"विभाषा साति कार्त्स्न्ये"—(५।४।५२)-जब किस वस्तु का दूसरी वस्तु में बदल जाना प्रदर्शित करना हो तो 'च्वि' के अतिरिक्त 'साति' (सात्) प्रत्यय भी लगाया जाता है।

जैसे—सम्पूर्णम् इन्धनम् अग्निः भवति='इन्धनम्' अग्निसात् भवति, 'अग्नीभवति' वा। (ईंधन अग्नि हो जाता है)। 'अग्निः भस्मसात् भवति' 'भस्मी भवति' वा।

प्रकीर्णक

चिर, परुत् (पिछला साल), परारि (पिछले से पिछला अर्थात् परला साल), प्र और नव शब्दों से "त्न" प्रत्यय होता है। चिरत्नम्, परुत्नम्, परारित्नम्, प्रत्नम्, नूत्नम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसिद्ध या विदित अर्थ में 'चणप्' (चण), 'चुञ्चुप' (चुञ्चु) प्रत्यय होते हैं। जैसे—विद्यया वित्तः—विद्याचणः (विद्या के लिये प्रसिद्ध), 'अस्त्रचञ्चुः' (अस्त्रविद्या में निपुणता के लिये प्रसिद्ध)।

कटच् (कट) प्रत्यय पशुवाचक शब्दों से समूह अर्थ में तथा सम् , प्र वि, नि और उत् उपसर्गों से विभिन्न अर्थों में होता है। जैसे—अवि-कटम् (भेड़ों का झुण्ड) आदि। संकट (सँकरा, भीडयुक्त, विपत्ति आदि), प्रकटम् (व्यक्त), विकटम् (विशाल, भयंकर), निकटम् (समीप), उत्कटम् (बडा, विशाल, शक्तिशाली)।

वलच् (वल)—दन्तावलः (हाथी), शिखावलः (मोर), रजस्वला, कृषीवलः (किसान), परिषद्वलः (राजा), ऊर्जस्वलः (बलवान्)।

विनि (विन्)—अस् अन्त वाले शब्दों और माया, मेधा, स्रज् शब्दों से यह प्रत्यय होता है। मायाविन् (मायावी, जादूगर), मेधाविन् (बुद्धिमान) स्रग्विन् (मालाधारी), तेजस्विन् (तेजस्वी) आमय शब्द से भी 'विन्' प्रत्यय होता है और 'आमय' के अन्तिम 'अ' को दीर्घ हो जाता है। आमयाविन् (रोगी)।

तद्धितप्रकरण समाप्त।

'समास' विचार

संस्कृत-भाषा का गठन अंग्रेजी अथवा हिन्दी भाषा की तरह व्यस्त न होकर समस्त है। संस्कृतभाषा के अपने गठन की इस विशिष्टता के कारण ही 'समास' प्रयोग की सहज सुविधा इसमें प्राप्त है। संस्कृतभाषा के स्वरूप-निर्माण और अर्थबोधन में 'समास' का महत्वपूर्ण हाथ है। भाषा की इस सहजात सुविधा के कम अथवा अधिक प्रयोग के आधार पर ही संस्कृत साहित्य में 'रीति' के नाम से शैलियों का पृथक्करण हुआ है। इसके अतिरिक्त प्रयत्नलाघव की अनादि मानवीप्रवृत्ति ने भी संस्कृतभाषा के इस विशिष्ट रूप के विकास में योग दिया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'समास' शब्द में 'समसनं समासः' [सम्+अस्+घञ्] इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'सम्' अर्थात् समीप या इकट्ठा; 'अस्' अर्थात् फेंकना। अर्थात् 'समास' का शाब्दिक अर्थ है समीप फेंकना अथवा दो या दो से अधिक शब्दों को इस तरह जोड़कर रखना जिससे उनके आकार में तो सूक्ष्मता आ जाय किन्तु अर्थ की पूर्णता में किसी प्रकार की कमी न रह जाय। दो से अधिक शब्द का उदाहरण जैसे—'शास्त्र-बोध-विधुराः'—'शास्त्रस्य बोधः इति शास्त्रबोधः',-'शास्त्रबोधात् विधुराः इति शास्त्र-बोध-विधुराः' (= शास्त्र ज्ञान से रहित)।

प्रकारान्तर से संक्षिप्तीकरण ही 'समास' है। समास में यह संक्षेपण तीन चीजों का होता है—विभक्ति, लिङ्ग और वचन। समास करने पर अनेक विभक्तियों अनेक लिङ्गों और अनेक वचनों का संक्षेप एक साथ ही हो जाता है और अन्तिम पद के अनुसार लिङ्ग और पदों की संख्या के अनुसार वचन हो जाता है। जैसे—

१. विभक्ति का उदाहरण—सुराणां भारती इति सुरभारती।

२. लिङ्ग का उदाहरण—गायिका च गायकश्च इति गायिकागायकौ।
स्त्री च पुरुषश्च इति स्त्रीपुरुषौ।

३. वचन का उदाहरण—सप्तर्षयश्च इन्द्रश्च कुमारौ च इति सप्तर्षीन्द्रकुमाराः।

समस्त शब्द के घटक पदों में अर्थबोध हेतु विभक्ति लगाने की इस प्रक्रिया को ही 'विग्रह' कहते हैं। यानी सामासिक शब्दों को तोड़कर उसके बनानेवाले शब्दों को अलग करना तथा मूल सम्बन्ध सूचक शब्द या प्रत्यय आदि जोड़कर उनका आपसी सम्बन्ध दिखलाना 'विग्रह' कहलाता है। जैसे—रमायाः पतिः।

समास का सम्बन्ध वस्तुतः सुबन्त शब्दों से ही है। कृदन्त और अव्ययों का अन्तर्भाव तो सुबन्तों में ही हो जाता है। यद्यपि 'विभक्ति' संज्ञा तो 'तिङ्' की भी है, किन्तु सुबन्त रूपों में ही 'समास' होता है। तिङन्त रूपों से समास का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। यदि कोई कहे कि 'कुम्भं करोति इति कुम्भकारः' इस समस्त पद में क्रिया 'करोति' के साथ सुबन्तपद 'कुम्भम्' का समास कैसे किया गया? जब कि तिङन्त विभक्ति का समास से कोई सम्बन्ध नहीं, किन्तु यह, शंका उचित नहीं; क्योंकि 'करोति इति कारः' इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृदन्तपद के साथ ही 'कुम्भम्' इस सुबन्त पद का समास हुआ है न कि 'करोति' तिङन्तपद के साथ।

शब्दों के जुड़ने में कुछ निश्चित सूक्ष्म नियम काम करते हैं, स्वच्छन्दता का साम्राज्य वहाँ नहीं है। सामान्य मानवीय धरातल पर भी जब दो व्यक्ति मिलते हैं, तो परस्पर प्रभावित होने की चार ही प्राकृतिक स्थितियाँ होती हैं।

१—दो या दो से अधिक मिलने वाले व्यक्तियों में जब प्रथम व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली हो।

२—जब मिलनेवाले दो व्यक्तियों में से द्वितीय व्यक्ति प्रथम की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली हो।

३—जब मिलनेवाले दो व्यक्तियों में से दोनों का व्यक्तित्व इतना अधिक प्रभावशाली हो कि वह एक दूसरे से पृथक् स्वतन्त्र सत्ता रखते हों।

४—जब दो व्यक्ति परस्पर किसी अन्य प्रभावशाली व्यक्ति के कारण एक स्थान पर एकत्र हो गये हों और जिनका अपना प्रभाव न हो, वे अन्य किसी व्यक्ति के प्रभाव को ही व्यक्त करते हों।

इसी नैसर्गिक रहस्य को ध्यान में रखकर संस्कृत-व्याकरण के विद्वानों ने भी मूलभूत चार ही समास कहे हैं; क्योंकि समास में भी कम से कम दो पद अवश्य होते हैं। प्रथम पद को 'पूर्वपद' और द्वितीय को 'उत्तरपद' कहते हैं। इनमें कभी 'पूर्वपद' का और कभी 'उत्तरपद' का अर्थ प्रधान रहता है। कभी दोनों पद समान प्रधान-अर्थ वाले होते हैं, कभी दोनों पदों में से किसी भी पद का अर्थ प्रधान नहीं होता वरन् एक अन्य अर्थ ही प्रधान होता है। इसी अर्थ की प्रधानता और अप्रधानता के कारण समास के चार भेद हैं—

(द्विविधः) १—पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावः—जिस समास में 'पूर्वपद' के अर्थ की प्रधानता रहती है उसे अव्ययीभाव समास कहते हैं।

(अष्टविधः) २—उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः—जिसमें 'उत्तरपद' के अर्थ की प्रधानता रहती है उसे तत्पुरुष समास कहते हैं।

(द्विविधः) ३—उभयपदार्थप्रधानोद्वन्द्वः—जिस समास में दोनों पदों के अर्थ प्रधान हों उसे द्वन्द्वसमास कहते हैं।

(सप्तविधः) ४—अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः—जब दोनों में से एक भी प्रधान नहीं रहता। बल्कि दोनों मिलकर एक तीसरे शब्द के विशेषण बनते हैं तब उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी आशय को पद्य के द्वारा विद्वान् लोगों ने बताया है--

"षोढा समासाः संक्षेपात् अष्टाविंशतिधा पुनः ।
नित्यानित्यत्वयोगेन लुगलुक्त्वेन च द्विधा ॥
तत्राष्टधा तत्पुरुषः सप्तधा कर्मधारयः ।
सप्तधा च बहुव्रीहिः द्विगुराभाषितो द्विधा ॥
द्वन्द्वोऽपि द्विविधो ज्ञेयोऽव्ययीभावो द्विधा मतः ।
तेषां पुनः समासानां प्राधान्यं स्याच्चतुर्विधम् ॥

अव्ययी भाव समास दो प्रकार का होता है :—

(१) १—अव्यय पूर्वपद अव्ययी भाव, २—नाम पूर्वपद अव्ययी भाव ।

(२) तत्पुरुष समास—आठ प्रकार का होता है—

१—प्रथमा तत्पुरुष, २—द्वितीया तत्पुरुष, ३—तृतीया तत्पुरुष, ४-चतुर्थी तत्पुष, ५—पञ्चमी तत्पुरुष, ६—षष्ठी तत्पुरुष, ७—सप्तमी तत्पुरुष, ८—नञ् तत्पुरुष ।

कर्मधारय समास भी तत्पुरुष समास का ही एक प्रकार (भेद) है । वह सात प्रकार का होता है—

१. विशेषण-पूर्व-पद कर्मधारय, २. विशेष्यपूर्वपद कर्मधारय, ३. विशेषणोभयपद कर्मधारय, ४. उपमानोत्तरपद कर्मधारय, ५. उपमान पूर्वपद कर्म धारय, ६—संम्भावना-पूर्वपद कर्म धा०, ७—अवधारण पूर्वपद कर्म धा० ।

द्विगुसमास भी कर्मधारय समास का ही एक प्रकार (भेद) हैं वह दो प्रकार का होता है—

१. एकवद्भावी द्विगु, २ अनेकवद्भावी द्विगु ।

'लुक्' समास भी तत्पुरुष समास के ही अन्तर्गत है । जैसे—कृष्णं श्रितः = कृष्णश्रितः, यहाँ पर कृष्ण से लगी हुई द्वितीया विभक्ति का लोप हुआ है ।

'अलुक्' समास तत्पुरुष के भी अन्तर्ग रहता है जैसे—१ जनुषा अन्धः = जनुषाऽन्धः (जन्मान्ध), यहाँ जनुष् शब्द से लगी तृतीया विभक्ति का लोप नहीं हुआ है । 'जनुषा' यह तृतीया विभक्ति का एक वचन है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. वाचः युक्तिः वाचो युक्तिः, यहाँ वाच् शव्द से लगी षष्ठी विभक्ति का लोप नहीं हुआ है। 'वाचः' यह षष्ठी, पञ्चमी का एक वचन प्रथमा, द्वितीया का बहुवचन भी है।

३. अन्तिकात् आगतः = अन्तिकादागतः, यहाँ अन्तिक शव्द से लगी पञ्चमी विभक्ति का लोप नहीं हुआ है। 'अन्तिकात्' यह पञ्चमी विभक्ति का एक वचन है।

४. जीमूतस्य इव=जीमूतस्यैव, यहाँ षष्ठी विभक्ति का लोप नहीं हुआ है।

उपपद समास भी तत्पुरुष का ही एक प्रकार है। इसमें भी कहीं कहीं विभक्ति का लोप नहीं होता। जैसे—हृदि स्पृशति इति 'हृदि स्पृक्', यहाँ 'हृदि' सप्तमी विभक्ति है, जिसका लोप नहीं हुआ है।

तत्पुरुष समास के ही अन्तर्गत 'नित्य समास' है। जैसे—चन्द्रेण सदृशः इति चन्द्रसन्निभः, यहाँ पर 'सन्निभ' के साथ विग्रह नहीं किया गया है। सन्निभ का अर्थ 'सदृश' शव्द से प्रकट किया गया है।

तत्पुरुष समास के ही अन्तर्गत 'अनित्य समास' भी है। जैसे—राज्ञः पुरुषः = राज पुरुषः, यहाँ विग्रह वाक्य में भी राज और पुरुष का उपयोग किया गया है। मध्यमपदलोपीसमास, मयूरव्यंसकादिसमास, प्रादिसमास, गतिसमास भी तत्पुरुषसमास के ही अन्तर्गत हैं।

(३) द्वन्द्व समास दो प्रकार का होता है—

१ (क) द्विपद इतरेतर योग द्वन्द्व, (ख) बहुपद इतरेतरयोग द्वन्द्व।

२ (क) द्विपद समाहार द्वन्द्व, (ख) बहुपद समाहार द्वन्द्व।

(४) बहुव्रीहि समास सात प्रकार का होता है—

१—द्विपद बहु०, २—बहुपद बहु, ३—संख्योभयपद बहु०, ४—संख्योत्तरपद बहु० ५—सहपूर्वपद बहु०, ६—दिगन्तराललक्षण बहु० ७—व्यतिहारलक्षण बहु०। बहुव्रीहि समास में भी कहीं कहीं विभक्ति का लोप नहीं होता है अर्थात् अलुक् होता है।

जैसे—कण्ठे कालः = कण्ठे कालः, यहाँ सप्तमी का लोप नहीं हुआ है।

अव्ययीभाव समास

'अव्ययीभाव' का अर्थ है जो अव्यय न था उसका अव्यय हो जाना। अर्थात् दोनों शव्द मिलकर अव्यय बन जाते हैं या अव्यय का काम करते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। महाभाष्यकार कहते हैं–'अनव्ययम् अव्ययं भवतीति अव्ययीभावः'। इस समास में प्रथम पद अव्यय रहता है और दूसरा पद 'नाम' होता है किन्तु समास होने पर ये दोनों पद मिलकर अव्यय ही हो जाते हैं। अव्यय के समान अव्ययीभाव समास से बने पद के भी रूप नहीं चलते हैं। अन्तिम शब्द के अनुसार, नपुंसकलिङ्ग एक वचन का जो रूप होता है, वही अव्ययीभाव समाससंयुक्त शब्द का हो जाता है। अव्ययीभाव—समास में पूर्वपद के अर्थ की प्रधानता रहती है और समस्त पद क्रियाविशेषण और अव्यय होता है। जैसे—यथारागम्। यहाँ दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं–यथा और राग। 'यथा' अव्यय शब्द यहाँ प्रधान है, दोनों मिलकर अव्यय हो गये हैं। 'यथारागम्' के रूप नहीं चलेंगे। 'राग' शब्द पुँल्लिङ्ग होते हुए भी नपुंसकलिङ्ग के एक वचन का रूप उसने धारण किया है। 'यथारागम्' इस समस्त पद का विग्रह इस प्रकार होगा–रागम् अनतिक्रम्य इति यथारागम्। इसी प्रकार स्वरम् अनतिक्रम्य इति यथास्वरम्। तालम् अनतिक्रम्य इति यथातालम्। अहनि अहनि=प्रत्यहम्, शक्तिमनतिक्रम्य=यथाशक्ति, वाडवेषु इति=अधिवाडवम् (वाडवाग्नि में), भद्राणां-समृद्धिः=सम्भद्रम्, पापानाम् अभावः=निष्पापम्, लोचनयोः समीपे=उपलोचनम्—ये सब 'अव्ययपूर्वपद अव्ययीभाव' के उदाहरण हैं।

सूपस्य लेशः=सूपप्रति। शाकस्य लेशः=शाकप्रति—ये नामपूर्वपद अव्ययीभाव के उदाहरण हैं। 'विग्रह' का एक अर्थ शरीर भी होता है। अतः समास के कलेवर को प्रस्तुत करना ही 'विग्रह' है। अर्थात् समसार्थबोधकवाक्य को विग्रहवाक्य कहते हैं।

अव्ययीभाव समास करते समय कतिपय नियमों पर ध्यान देना आवश्यक है। "ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य" (१।२।४७) द्वितीय पद (संज्ञापद) का अन्तिम वर्ण यदि दीर्घ हो तो उसे ह्रस्व करना चाहिये। अन्तिम वर्ण के 'एकार' 'ऐकार' के स्थान में 'इकार', तथा ओकार अथवा औकार के स्थान में 'उकार' कर देना चाहिये। यथा—

१—उप+वीणा	(वीणायाः समीपे)	उपवीणम्।
२—उप+रागिणी	(रागिण्याः समीपे)	उपरागिणि।
३—उप+भ्रू	(भ्रुवाः समीपे)	उपभ्रु।
४—उप+गो	(गोः समीपे)	उपगु
५—उप+नौ	(नावः समीपे)	उपनु।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनश्च—(५।४।१०८) 'अन्' अन्तवाले अव्ययीभाव समास में 'टच्' (तद्धित) प्रत्यय लगाया जाता है, पश्चात् 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से 'टि' (अन्) का लोप किया जाता है। उसके बाद 'टच्' का बचा हुआ 'अ' आगे जोड़ दिया जाता है।

जैसे—उपराजम् = (उप + राजन्) राज्ञः समीपम् इति।

उप+राजन्+टच् (अ) अन् (टि) का लोप।
उप+राज्+अ = उपराज +सु, नपुं० = उपराजम्।
इसी प्रकार अधि+आत्मन्+टच् (अ) अन् का लोप।
अधि+आत्म्+अ = अध्यात्मम्।

"अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथाऽऽनुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु" (२।१।६)

सूत्र में निर्दिष्ट 'विभक्ति-आदि'-अर्थों में अव्यय का प्रयोग रहने पर जो समास होता है उसे अव्ययीभाव कहते हैं।

१—सप्तमी विभक्ति के अर्थ में 'अधि' अव्यय का प्रयोग—
हरौ इति अधिहरि। पिण्डे इति अधिपिण्डम्। आत्मनि इति अध्यात्मम्।

२—'उप' अव्यय का प्रयोग 'समीप' अर्थ में—वाद्यस्य समीपे इति उपवाद्यम्। गायकस्य समीपे इति उपगायकम्।

३—'सु' अव्यय का प्रयोग समृद्धि अर्थ में—संगीतज्ञानां समृद्धिः इति सु-संगीतज्ञम्।

४—'दुर्' अव्यय का प्रयोग व्यृद्धि अर्थ में—
(व्यृद्धि=नाश, दरिद्रता) 'स्वरस्य व्यृद्धिः इति दुःस्वरम् (स्वर का नाश)

५—'निर्' अव्यय का प्रयोग—अर्थाभाव (अर्थ = पदार्थ) अर्थ में—
'गीतस्य अभावः' = निर्गीतम्।

६—'अति' अव्यय का प्रयोग अत्यय—(नाश) के अर्थ में—गीतस्य अत्ययः इति अतिगीतम् (गीत की समाप्ति में)

७—'अति' अव्यय का प्रयोग असम्प्रति(अनौचित्य) अर्थ में—अतिगीतम्= गीतं सम्प्रति न युज्यते इति अतिगीतम् (गीत के अनुपयुक्त काल में)

८—'इति' अव्यय का प्रयोग शब्दप्रादुर्भाव अर्थ में—नादस्य प्रकाशः इति नादम्। (नाद शब्द का उच्चारण)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९—'अनु' अव्यय का प्रयोग पश्चात् अर्थ में—तालस्य पश्चात् इति अनुतालम्।

[विशेष—लोक जीवन में 'यथा' अव्यय का प्रयोग तो योग्यता, वीप्सा, सादृश्य, और अनतिक्रमण (मर्यादा) अर्थों में है किन्तु भाषा-प्रयोग की सूक्ष्मता के कारण लोक में प्रयुक्त अव्ययीभाव समास के उदाहरणों में योग्यता, वीप्सा, सादृश्य अर्थों को 'अनु', 'प्रति' और 'सह' अव्यय सूचित करते हैं। जैसे-महानुभाव (महान् के सदृश भाव वाला) यहाँ अनु सादृश्य अर्थ में है।

विशेष—'यथा' अव्यय का समास में साक्षात् प्रयोग सादृश्य भिन्न यानो 'असादृश्य' अर्थ में ही होता है, नहीं तो 'यथा हरिः तथा हरः' में भी समास करना होगा।

१०— 'यथा' (अव्यय) के अर्थ में—प्रयुक्त अव्यय

(क) 'अनु' अव्यय का प्रयोग योग्यता अर्थ में—गीतस्य योग्यम् इति अनुगीतम्।

(ख) 'प्रति' अव्यय का प्रयाग वोप्सा अर्थ में—रागं रागं प्रति इति प्रतिरागम्।

(ग) 'सह' (स) अव्यय का प्रयोग सादृश्य अर्थ में—हरेः सादृश्यम् इति सहरि। गीतस्य सादृश्यम् इति सगीतम्।

नोट—'सह' अव्यय को 'स' आदेश हो जाता है।

(घ) यथा अव्यय का प्रयोग अनतिक्रमण (मर्यादा) अर्थ में—

क्रमम् अनतिक्रम्य इति यथाक्रमम्। (क्रमानुसार)

११—'अनु' अव्यय का प्रयोग आनुपूर्व्य (क्रम)-अर्थ में—

तालस्य आनुपूर्व्येण इति अनुतालम् (ताल के अनुसार)

१२—'सह' (एक साथ होने के अर्थ में) अव्यय का प्रयाग यौगपद्य अर्थ में—

नृत्येन युगपत् इति सनृत्यम् (नृत्य के साथ ही)

[यदि काल अर्थ न हो तो अव्ययी भाव समास में 'अव्ययीभावे चाकाले' (६।३।८१) सूत्र से 'सह' अव्यय को 'स' आदेश काल से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतिरिक्त सभी अर्थों में हो जाता है। केवल काल अर्थ में नहीं होता]
इसीलिये सह + सायाह्नम् = सहसायाह्नम् ही होगा।

१३—'सह' अव्यय का प्रयोग सादृश्य अर्थ में—नम्बर १० के अन्तर्गत दिया गया है।

१४—'सह' अव्यय का प्रयोग सम्पत्ति अर्थ में-क्षत्राणां सम्पत्तिः इति सक्षत्रम्।

[विशेष—योग्यता के अनुसार सम्पत्ति को सम्पत्ति कहते हैं-योग्यता से अधिक भगवत्-प्रसाद से प्राप्त हो तो उसे समृद्धि या ऋद्धि कहते हैं।

१५—'सह' अव्यय का प्रयोग साकल्य (सब) अर्थ में-तृणमपि अपरित्यज्य इति सतृणम् (सबकुछ)

१६—'सह' अव्यय का प्रयोग अन्त (तक के) अर्थ में-तार स्वर पर्यन्तम् इति सतारस्वरम् (तारस्वरतक)

यावदवधारणे—(२।१।१८) अवधारण (निश्चय) अर्थ में 'यावत्' के साथ अव्ययीभाव समास होता है यथा—यावन्तः श्लोकाः तावन्तः अच्युतप्रणामाः इति यावच्छ्लोकम्।

मर्यादा और अभिविधि (व्याप्ति) के अर्थ में आङ् अव्यय के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास होता है। यथा—ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्तम् इति आब्रह्मरन्ध्रम्। जब समास न हो तब पञ्चमी विभक्ति लगानी चाहिये। यथा—आमन्द्रात्। समास होने पर आमन्द्रम् रूप होगा। आबालम्, आबालेभ्यः (बालकों तक), आङ्गुष्ठम, आङ्गुष्ठात् (अङ्गुष्ठपर्यन्त), आवामनेत्रात्, आवामनेत्रम्—अभिविधि अर्थ में 'आङ्' का प्रयोग—आसकलात् ब्रह्म, आसकलं ब्रह्म। आजिह्वायाः, आजिह्वम्।

तत्पुरुष—समास

जिस समास में पहला शब्द दूसरे शब्द का विशेषण हो अथवा विशेषण का कार्य करे उसे तत्पुरुष समास कहते हैं। विशेष्य के प्रधान होने से ही तत्पुरुष की परिभाषा "प्रायेण उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः" की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गई है। जैसे—संगीतरत्नाकरः—संगीतरत्नानाम् आकरः। यहाँ 'संगीतरत्नानाम्' पद एक प्रकार से 'आकरः' का विशेषण है अथवा मन्द्रस्वरः—मन्द्रः स्वरः। यहाँ 'मन्द्रः' शब्द 'स्वरः' का विशेषण है। 'तत्पुरुष' पद का विग्रह (अर्थ) दो प्रकार से हो सकता है। पहला 'तस्य-पुरुषः इति तत्पुरुषः',—और दूसरा 'सः पुरुषः' इति तत्पुरुषः। इसीलिये तत्पुरुष समास के दो मुख्य भेद होते हैं (१) व्यधिकरण अर्थात् समास होने वाले दो पदों की विभक्तियां जहाँ भिन्न-भिन्न हों। (२) समानाधिकरण अर्थात् जिसमें प्रथम शब्द की विभक्ति और दूसरे पद की विभक्ति एक-सी ही हो। ऊपर दिये गये उदाहरणों में 'संगीतरत्नाकरः' यह व्यधिकरण—तत्पुरुष का उदाहरण है। 'मन्द्रस्वरः' समानाधिकरण का उदाहरण है।

संस्कृत के विद्वानों ने तत्पुरुष-समास के छह विभाग किये हैं। (१) तत्पुरुष सामान्य जिसमें बीच की विभक्तियां का लोप होता है। (२) नञ्—तत्पुरुष। (३) कर्मधारय—तत्पुरुष (इसी में द्विगु—समास का भी संग्रह किया गया है)। (४) प्रादि—तत्पुरुष (५) गति—तत्पुरुष। (६) उपपद—समास—यह उपपद, संज्ञा, विशेषण या क्रियाविशेषण शब्द होते हैं।

व्यधिकरण-तत्पुरुष-समास के सात भेद होते हैं। प्रथमा तत्पुरुष, द्वितीया तत्पुरुष, तृतीया तत्पुरुष, चतुर्थी तत्पुरुष, पञ्चमी तत्पुरुष, षष्ठी तत्पुरुष और सप्तमी तत्पुरुष।

समास का पहला पद जिस विभक्ति में होगा उसी के नाम पर समास का नाम होगा। यदि समास का पहला पद द्वितीया विभक्ति में हो तो वह द्वितीया—तत्पुरुष होगा। प्रथम पद यदि प्रथमा विभक्ति में रहे तब उसे व्यधिकरण तत्पुरुष नहीं कहा जा सकता। दोनों पद एक ही विभक्ति में होने से समानाधिकरण तत्पुरुष कहलायेगा।

व्यधिकरण तत्पुरुष। यथा—

१. प्रथमा तत्पुरुष—पूर्वः कायस्य इति = पूर्वकायः, उत्तरः कायस्य इति = उत्तरकायः।

२. द्वितीया तत्पुरुष—

'द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः' २।१।२४ जब द्वितीया विभक्ति श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त और आपन्न शब्दों के साथ आती है तब द्वितीया तत्पुरुष समास होता है। जैसे—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. नादं श्रितः = नादश्रितः (नाद पर आश्रित)।

२. तारसप्तकम् अतीतः=तारसप्तकातीतः (तारसप्तक के पार गया हुआ)।

३. लयं पतितः = लयपतितः (लय को प्राप्त हुआ)।

४. संवादं गतः = संवादगतः (संवाद को प्राप्त हुआ (स्वरः))।

५. निषादम् अत्यस्तः = निषादात्यस्तः (निषाद के पार पहुँचा हुआ)।

६. माधुर्यं प्राप्तः = माधुर्यप्राप्तः (माधुर्य पाया हुआ)।

७. सरसताम् आपन्नः = सरसतापन्नः (सरसता पाया हुआ)।

ऊपर के उदाहरण में दिये गये शब्दों में 'प्राप्त' और आपन्न शब्दों के साथ द्वितीयान्त पद का समास होने पर उनका पूर्व में भी प्रयोग किया जा सकता है। जैसे—संवादं प्राप्तः = प्राप्तसंवादः, अथवा संवादप्राप्तः। आपन्न-रसः अथवा रसापन्नः। अन्नं बुभुक्षुः = अन्नबुभुक्षुः, मुहूर्तं सुखम् = मुहूर्तसुखम्।

२. तृतीया–तत्पुरुष—

समास का पहला पद जब तृतीया विभक्ति में हो और दूसरा प्रथमा विभक्ति में हो तब तृतीया–तत्पुरुष-समास होता है। यह समास अधिकतर निम्नलिखित परिस्थितियों में होता है—

१—कर्तृकरणेकृताबहुलम्—(२।१।३२) जब तृतीयान्त शब्द कर्ता या करणकारक हो और उसके साथ का शब्द कृदन्त हो। जैसे—वादकेन रक्षितः= वादकरक्षितः। यहाँ पर वादकेन तृतीयान्त पद है और वह कर्त्ता के रूप में है और रक्षितः कृदन्त है, जो-रक्ष + क्त से बना है। 'स्वरैः रञ्जितः=स्वररञ्जितः'। यहाँ 'स्वरैः' तृतीयान्त पद है और वह करण कारक है तथा 'रञ्जितः' क्त प्रत्यान्त कृदन्त है, जो रञ्ज् + णिच् + क्त से बना है।

२. पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः—(२।१।३१) जब तृतीयान्त शब्द के साथ पूर्व, सदृश, सम, ऊन शब्दों में से किसी शब्द अथवा इनके समानार्थक शब्द के रहने पर तथा कलह (लड़ाई) निपुण (चतुर) मिश्र (मिला हुआ) श्लक्ष्ण (चिकना) इन शब्दों में से किसी शब्द के आने पर यह समास होता है। जैसे—गान्धारेण पूर्वः = गान्धारपूर्वः। भूपालीरागेण सदृशः = भूपालीरागसदृशः (देशकार रागः)। आसावरी रागेण समः = आसावरीरागसमः (जौनपुरीरागः)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्णैः स्वरैः ऊनः = पूर्णस्वरोनः (षाडवः)
षष्ठ-स्वरेण विकलः = षष्ठस्वरविकलः (औडुवः)
वाचा कलहः = वाक्कलहः
गीतेन निपुणः = गीतनिपुणः, विद्यया निपुणः = विद्यानिपुणः।
नृत्येन कुशलः = नृत्यकुशलः
तालेन मिश्रः = तालमिश्रः (रागः)
स्वरेण युक्तः = स्वरयुक्तः
घर्षणेन श्लक्ष्णम् = घर्षणश्लक्ष्णम्
मासेन अवरः = मासावरः (मासभर छोटा)

३. अन्नेन व्यञ्जनम्—(२।१।३४) संस्कार करने वाली वस्तु के प्रतिपादक तृतीयान्त शब्द का, अन्नवाचक शब्द के साथ तृतीयातत्पुरुष समास होता है। 'दध्ना ओदनः दध्योदनः' (=दही से सुसंस्कृत भात); 'गुडेन मिश्रा धानाः = गुडधानाः' (=गुड मिले हुए भुने धान)।

४. कभी कभी 'स्वयं' शब्द तृतीयान्त शब्द के अर्थ को बताता है और उसके साथ कृत्प्रत्ययान्त का समास भी तृतीयातत्पुरुष कहा जाता है। 'स्वयं कृतः'—स्वयंकृतः (=स्वयं के द्वारा किया गया)।

३. चतुर्थी तत्पुरुष—

चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः (२।१।३६) चतुर्थी विभक्ति वाले शब्द का–अर्थ, बलि, हित, सुख, रक्षित शब्दों के साथ चतुर्थीतत्पुरुष समास होता है।

तत्पुरुष समास में जब पहला शब्द चतुर्थी विभक्ति में हो तब उसे चतुर्थी–तत्पुरुष समास कहते हैं। 'भूतेभ्यो बलिः = भूतबलिः। ब्राह्मणाय हितम् = ब्राह्मणहितम्। गायकाय रक्षितम् = गायकरक्षितम्। मनुष्याय सुखम्= मनुष्यसुखम्। जब कोई वस्तुवाचक शब्द चतुर्थी में हो और जिससे वस्तु बनी हो वह उसके बाद आये; तब भी यह समास होता है। जैसे—'यूपाय दारु' = यूपदारु; 'वीणायै काष्ठम् = वीणाकाष्ठम्।'

'अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्'—इस वार्तिक के अनुसार 'द्विजाय अयमिति द्विजार्थः' (सूपः) प्रयोग बना। इसमें 'अर्थ' शब्द के साथ जो समास होता है वह चतुर्थी तत्पुरुष होता हुआ भी नित्य समास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहा जाता है, क्योंकि इसका अपने पद के साथ विग्रह नहीं किया जाता और उस समस्त-पद का लिङ्ग विशेष्य के लिङ्ग के अनुसार होता है।

४. पञ्चमी तत्पुरुष—

जब प्रथम शब्द पञ्चमी विभक्ति में रहे तब उस समास को पंचमी-तत्पुरुष कहते हैं।

१. पञ्चमी भयेन (२।१।३७) इस सूत्र और 'भयभीतभीतिभीभिरिति वाच्यम्' इस (वार्तिक) के अनुसार पञ्चम्यन्त शब्द जब भय, भीत और भीति, भी के साथ आता है तब यह समास होता है। जैसे चौराद् भयम् = चौरभयम्। परीक्षकाद् भीतः = परीक्षकभीतः। वादकाद् भीतिः = वादकभीतिः अपयशसः भीः अपयशोभीः।

२. स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन—(२।१।३९) पञ्चम्यन्त स्तोक (थोड़ा) अन्तिक (समीप) दूर तथा इन्हीं अर्थों के वाचक शब्द और कृच्छ्र शब्द (कठिनाई) का क्तान्त शब्द के साथ समास होता है, किन्तु पञ्चमी का लोप नहीं होता है। जैसे 'स्तोकात् मुक्तः' = स्तोकान्मुक्तः, स्वल्पात् मुक्तः= स्वल्पान्मुक्तः। अन्तिकात् आगतः = अन्तिकादागतः (= समीप से आया हुआ) समीपात् आगतः = समीपादागतः। दूरात् आगतः = दूरादागतः। विप्रकृष्टात् आगतः—विप्रकृष्टादागतः। कृच्छ्रात् आगतः = कृच्छ्रादागतः। कष्टात् आगतः = कष्टादागतः।

अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः—(२।१।३८) अपेत (रहित) अपोढ (रहित) मुक्त (खुला हुआ) पतित (गिरा हुआ) अपत्रस्त (डरा हुआ) इन शब्दों के साथ पञ्चम्यन्तशब्द का समास होता है। जैसे—सुखात् अपेतः = सुखापेतः, किन्तु इन पदों में पञ्चमी का लोप होता है। कल्पनायाः अपोढः = कल्पनापोढः (विचार हीन) चक्रात्-मुक्तः = चक्रमुक्तः (चक्र से छूटा हुआ) स्वर्गात् पतितः-स्वर्गपतितः (स्वर्ग से गिरा हुआ) तरंगेभ्यः अपत्रस्तः = तरंगापत्रस्तः (तरंगों से डरा हुआ)।

५. षष्ठी तत्पुरुष—

षष्ठी—(२।२।८)—जिसमें प्रथम शब्द षष्ठी विभक्ति में हो उस समास को षष्ठी तत्पुरुष समास कहते हैं। जैसे—राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः (राजकर्मचारी),सर्वेषां महान्=सर्वमहान्, वृक्षस्यमूलम्=वृक्षमूलम्, कवीनां वरः=

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कविवरः, पण्डितानां प्रवरः = पण्डितप्रवरः, देवनां पूजकः = देवपूजकः, देवानां पूजकः ब्राह्मणः = देवब्राह्मणः (मध्यम पदलोपी तत्पुरुष समास) ।

तृजकाभ्यां कर्तरि (२।२।१५) जब तृच् और अक ये कृत् प्रत्यय कर्ता के अर्थ में होंगे तो उन शब्दों के साथ षष्ठ्यन्त शब्द का समास नहीं होता है । जैसे—गीतानां 'स्रष्टा' यह ऐसे ही रहेगा, 'गीतस्रष्टा' नहीं होगा । 'घटस्य कर्त्ता' ही रहेगा 'घटकर्ता' नहीं होगा । किन्तु 'इक्षूणां भक्षणम्' इति 'इक्षुभक्षिका' यहाँ समास होगा क्योंकि यहाँ पर कर्ता के अर्थ में 'अक' प्रत्यय नहीं है ।

याजकादिभिश्च—(२।२।९) याजक (= यज्ञ कराने वाला), पूजक (= पूजाकराने वाला), परिचारक (= सेवाकराने वाला) परिवेषक (परोसने वाला), स्नातक (गुरुकुल से लौटकर गृहस्थ धर्म में दीक्षित हुआ), अध्यापक (= पढ़ाने वाला) आदि शब्दों के साथ षष्ठी का समास होता है । सोमस्य याजकः = सोमयाजकः (= सोम सम्बन्धी यज्ञ कराने वाला), देवस्य पूजकः = देवपूजकः । राज्ञः परिचारकः = राजपरिचारकः, अग्नेः होता अग्निहोता (अग्नि का आवाहन करने वाला), भुवः भर्ता = भूभर्ता । किन्तु वज्रस्य भर्ता का वज्रभर्ता नहीं बनेगा; क्योंकि यहाँ पर कर्ता अर्थ में 'तृच्' प्रत्यय है । यहाँ समास नहीं हुआ है ।

न निर्धारणे (२।२।१०)—निर्धारण अर्थात् बहुतों में से एक को छाँटने के अर्थ में हुई षष्ठी का समास नहीं होता । यथा 'नराणाम् द्विजः श्रेष्ठः' यहाँ पर 'नर' और 'द्विज' का समास नहीं हुआ है । 'गुणात्तरेण तरलोपश्चेति वक्तव्यम्' इस वार्तिक के अनुसार तरप् प्रत्ययान्त गुणवाचक शब्दों के साथ षष्ठी का समास होता है और तरप् प्रत्यय का लोप होता है । जैसे—सर्वेषां श्वेततरः = सर्वश्वेतः । सर्वेषां महत्तरः—सर्वमहान् ।

पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन (२।२।११), क्तेन च पूजायाम, (२।२।१२)' अधिकरणवाचिना च—(२।२।१३), इन सूत्रों के अनुसार षष्ठ्यन्त शब्द का संख्येय शब्दों के साथ, गुणवाचक शब्दों के साथ, तृप्ति अर्थ वाले शब्दों के साथ, शतृ और शानच् (सत्) प्रत्ययान्त शब्दों के साथ और कृदन्त अव्ययों के साथ, तव्य प्रत्ययान्त शब्दों के साथ और समानाधिकरण शब्दों के साथ षष्ठी तत्पुरुष समास नहीं होता, जैसे—सतां

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षष्ठः। ब्राह्मणस्य शुक्लाः दन्ताः। फलानां सुहितः (तृप्तः)। द्विजस्य कुर्वन् कुर्वाणो वा। ब्राह्मणस्य कृत्वा। नरस्य कर्तव्यम्। तानसेनस्य गायकस्य, तक्षकस्य सर्पस्य। इन प्रयोगों में समास नहीं हुआ।

आदरार्थक 'क्त' प्रत्ययान्त शब्द और अधिकरणवाचक 'क्त' प्रत्ययान्त शब्द के साथ षष्ठी का समास नहीं होता। जैसे—सतां मतः, इदम् एषाम् आसितम् (आसन)। आसितम् में अधिकरणवाचक' 'क्त' प्रत्यय है। अतः राजपूजितः, राजमतः इत्यादि समासों को तृतीयातत्पुरुषसमास समझना चाहिये।

६. सप्तमीतत्पुरुषसमास—सप्तमी शौण्डैः (२।१।१०) सिद्ध-शुष्कपक्वबन्धैश्च (२।१।४१) सप्तम्यन्त शब्द का शौण्ड (चतुर) धूर्त, कितव (शठ), प्रवीण, संवीत (संयुक्त), अन्तर अधि, पटु, पण्डित, कुशल, चपल, निपुण, सिद्ध, शुष्क, पक्व और बन्ध शब्दों के साथ सप्तमीतत्पुरुष समास होता है। जैसे—अक्षेषु शौण्डः = अक्षशौण्डः। ईश्वरे अधीनः इति ईश्वराधीनः (ईश्वर पर निर्भर); गंगायमुनयोः अन्तरम् इति गंगायमुनान्तरम्। इसीप्रकार वाचि पटुः=वाक्पटुः। शास्त्रे पण्डितः=शास्त्र पण्डितः। गाने कुशलः= गानकुशलः। क्रीडायां चपलः = क्रीडाचपलः। वाद्य निपुणः = वाद्यनिपुणः वाचि सिद्धः = वाक्सिद्धः। आतपे शुष्कः = आतपशुष्कः। स्थाल्यां पक्वः = स्थालीपक्वः। चक्रे बन्धः = चक्रबन्धः (एक विशेष प्रकार की पद्यरचना) आदि प्रयोग बनते हैं।

ध्वाङ्क्षेण क्षेपे—२।१।४२ और पात्रे समितादयश्च २।१।४८ इन दोनों सूत्रों के अनुसार निम्नोक्त प्रयोग क्रमशः बनते हैं। काकवाचक शब्दों के साथ निन्दा अर्थ में सप्तम्यन्त का समास होता है। जैसे—तीर्थे ध्वाङ्क्षः इव तीर्थध्वाङ्क्षः। (तीर्थकाक इत्यर्थः) श्राद्धे काकः इव = श्राद्धकाकः।

पात्रे समितादिगण में इसी प्रकार के भाववाले बहुत से सप्तमी समास किये हुए शब्द उपलब्ध होते हैं। जैसे—कूपे मण्डूक इव कूपमण्डूकः।

क्तेनाहोरात्रावयवाः—(२।१।४५); तत्र (२।१।४६) दिन अथवा रात्रि के विभागसूचक सप्तमी विभक्ति वाले सप्तम्यन्त शब्दों का 'क्त' प्रत्ययान्त शब्दों के साथ समास होता है। सप्तमी के अर्थ में विद्यमान 'तत्र' का भी 'क्त' प्रत्ययान्त के साथ समास होता है। उसी तरह निन्दा अर्थ में भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सप्तम्यन्त का 'क्त' प्रत्ययान्त के साथ समास होता है। जैसे—पूर्वाह्ने कृतम् = पूर्वाह्ण-कृतम्। अपररात्रे कृतम् = अपररात्र—कृतम्। किन्तु यदि दिन का अवयव न हो तो समास नहीं होगा अतः 'अह्नि दृष्टम्' में समास नहीं हुआ। 'तत्रभुक्तम्' यहां सप्तम्यन्त तत्र का क्त प्रत्ययान्त भुक्त के साथ समास हुआ।

समानाधिकरण—तत्पुरुष—समास

तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः (१।२।४२) जिन दो वस्तुओं का एक ही आधार हो वहाँ समानाधिकरण तत्पुरुष होता है जिसे कर्मधारय कहते हैं। कर्मधारय तत्पुरुष के दोनों शब्द विग्रह के समय प्रथमा विभक्ति में ही होते हैं। जैसे—शुद्धः स्वरः = शुद्धस्वरः, यहां स्वर का शुद्धत्व उसके साथ सदा ही रहेगा। ऐसे विशेषण—विशेष्य स्वरूप दो शब्दों का समास जिनका अधिकरण समान हो वह कर्मधारय तत्पुरुष कहलाता है। उस कर्मधारय समास के घटक दोनों पदों का अन्वय क्रिया से सीधा होता है। क्रिया दोनों शब्दों को धारण करती है, इसीलिये 'कर्मधारय' नाम पड़ा हैं।

'कुशलनर्तकः नृत्यति' यहाँ नर्तन क्रिया को जब नर्तक करता है तब उसकी कुशलता उसके साथ ही रहती हैं किन्तु देवदत्तपुत्रः नृत्यति। इसमें नर्तन क्रिया का सम्बन्ध उसके पुत्र से ही है, पिता से नहीं।

कर्मधारय समास में साधारणतया पहला शब्द संज्ञा या विशेषण होता है जो दूसरे पद की विशेषता बताता है। विशेषण के प्रयोगभेद के कारण कर्मधारय समास के अनेक भेद हैं—विशेषणं विशेष्येण बहुलम् (२।१।५७) प्रथम पद विशेषण और द्वितीय पद (शब्द) विशेष्य हो तब उसे विशेषण पूर्वपद-कर्मधारय समास कहते हैं। जैसे—रक्तञ्च तत् उत्पलञ्च=रक्तोत्पलम्। स्निग्धश्च मधुरश्च = स्निग्धमधुरः (स्वरः)।

२. कुगतिप्रादयः (२।२।१८) कु, गति और प्रादि का सुबन्त के साथ नित्य समास होता है; जैसे—

कुत्सितः गायकः कुगायकः। कहीं कहीं 'कु' को स्वर आगे आने पर 'कद्' आदेश हो जाता है। जैसे—कुत्सितम् अन्नम् = कदन्नम्। कदन्नम्। कहीं कहीं 'कु' का रूपान्तर 'का' हो जाता है। जैसे—कुत्सितः पुरुषः = कापुरुषः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. उपमानपूर्वपद कर्मधारय–(उपमानानि सामान्यवचनैः) (२।१।५५) उपमान शब्दों का सामान्य-गुणवाचक शब्दों के साथ कर्मधारय समास होता है। जैसे—

घनः इव श्यामः घनश्यामः। यहाँ घन उपमान और श्यामत्व सामान्य गुण है। इसी तरह चन्द्रः इव आह्लादकः=चन्द्राह्लादकः। इसमें चन्द्र उपमान है और आह्लादकत्व सामान्य गुण है। घनः इव मन्द्रः=घनमन्द्रः (स्वरः)। तडित् इव उज्ज्वलः = तडिदुज्ज्वलः। कोकिलस्य इव रुतम् = कोकिलरुतम्। इस प्रकार के समास में उपमान पूर्व (पहले) आता है। इसीलिए इसे उपमान पूर्वपद कहते हैं।

उपमानोत्तरपद कर्मधारय

उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे (२।१।५६) जब उपमेय और उपमान एक साथ आयें तब यह समास होता है। इसमें सामान्य गुण या धर्म-बोधक शब्द का उल्लेख नहीं रहता है। जैसे—मुखं कमलमिव- मुखकमलम् (मुख कमल के समान), पुरुषो व्याघ्रः इव इति पुरुषव्याघ्रः (व्याघ्र के समान वीर पुरुष)। इस प्रकार के समास में उपमान शब्द प्रथम न होकर द्वितीय रहता है। मुखकमलम्, पुरुषव्याघ्रः आदि। कर्मधारय समास का दो प्रकार से विग्रह किया जा सकता है। मुखकमलम्—मुखमेव कमलम्। मुखं कमलमिव। पुरुषव्याघ्रः—पुरुष एव व्याघ्रः। पुरुषः व्याघ्रः इव। इसी प्रकार कण्ठकोकिलः। मर्दलघनम्। पटहघनम्।

पहले को रूपक समास कहेंगे क्योंकि एक पर दूसरे का आरोप किया गया है और दूसरे को उपमित समास कहेंगे क्योंकि उसमें उपमा है।

उपमानपूर्वपद और उपमानउत्तरपद दोनों समासों में यह अन्तर है कि पहले में सामान्य गुण का स्पष्ट रूप से उल्लेख होता है परन्तु दूसरे में सामान्य गुण का उल्लेख नहीं रहता। यदि दूसरे में सामान्य गुण का उल्लेख किया जाय तो समास ही नहीं होगा। जैसे—पुरुषः व्याघ्रः इव शूरः यहाँ समास नहीं हुआ।

४. विशेषणोभयपद कर्मधारय—

समान अधिकरण वाले दो विशेषणों के समास को विशेषणोभयपद कर्मधारय कहते हैं। जैसे—कृष्णश्च श्वेतश्च = कृष्णश्वेतः-(अश्वः)। 'क्त'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रत्ययान्त विशेषणरूप में रहने वाले शब्दों का भी यह समास होता है। जैसे- पूर्वं स्नातश्च पश्चात् अनुलिप्तश्च–स्नातानुलिप्तः। परस्पर दो विरोधी विशेषणों का भी यह समास होता है।

जैसे–चरञ्च अचरञ्च–चराचरम् (जगत्), कृतञ्च अकृतञ्च—कृताकृतम् (कर्म)।

द्विगु समास

संख्यापूर्वोद्विगुः (२-१-३२) 'कर्मधारय समास में जब पहला शब्द संख्यावाची हो और दूसरा शब्द संज्ञा हो' तब द्विगु समास होता है। 'द्विगु' इस नाम में ही यह आशय निहित है। द्विगु शब्द में द्वि = दो और गु (गो = गाय) = गाय। यहाँ पहला पद संख्यावाचक है और दूसरा संज्ञा है।

द्विगु समास निम्न अवस्थाओं में होता है—समस्त पद से कोई तद्धित प्रत्यय जब करना हो। जैसे—षण्णां मातॄणाम् अपत्यं पुमान् = षाण्मातुरः (६ माताओं का पुत्र कार्तिकेय) यहाँ षण् + मातृ = षण्मातृ+अण् (तद्धित प्रत्यय) = षाण्मातुरः।

२. जहाँ पर समस्त पद पुनः दूसरे समस्त पद का पूर्वपद बन जाता है। जैसे—पञ्च गावः धनं यस्य सः = पञ्चगवधनः-यहां 'पञ्चगव' शब्द को यदि पुनः 'धन' के साथ न आना होता तो 'पञ्चगव' यह द्विगु समास न हो पाता।

३. समाहार (समूह) अर्थ में द्विगु समास होता है और समस्तपद 'द्विगुरेकवचम्' (२।४।१) 'स नपुंसकम्' (२।४।१७) एक वचन नपुंसकलिङ्ग हो होता है जैसे—त्रयाणाम् भुवनानां समाहारः इति त्रिभुवनम्। चतुर्णां युगानां समाहारः इति चतुर्युगम्। पञ्चानां गवां समाहारः इति पञ्चगवम्।

अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः। "पात्रान्तस्य न" (वार्तिक) अकारान्त उत्तरपदवाला द्विगु स्त्रीलिङ्ग होता है और आबन्त (दीर्घ 'आ' वाला) उत्तरपदवाला द्विगु विकल्प से स्त्रीलिङ्ग होता है किन्तु "पात्रादिगण" में पठित शब्द वाले द्विगु में स्त्रीलिङ्ग नहीं होता। पञ्चानां वटानां समाहारः इति पञ्चवटी। त्रयाणां लोकानां समाहारः इति त्रिलोकी। पञ्चानां खट्वानां समाहारः इति पञ्चखट्वम्, पञ्चखट्वी। पञ्चानां पात्राणां समाहारः = पञ्चपात्रम्। चतुर्णां युगानां समाहारः=चतुर्युगम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्पुरुष समास के दो भेदों (व्यधिकरण और समानाधिकरण) को अभी तक बताया गया। कुछ तत्पुरुष ऐसे भी हैं जिनकी अपनी कुछ विशिष्टताओं के कारण इन दोनों में से किसी के भी अन्तर्गत उन्हें नहीं रक्खा जा सकता। वे सात प्रकार के हैं—

१. नञ् तत्पुरुष, (२) प्रादि तत्पुरुष, (३) गति तत्पुरुष (४) उपपद तत्पुरुष (५) अलुक् तत्पुरुष, (६) मध्यम पद लोपी तत्पुरुष, (७) मयूरव्यंसकादि तत्पुरुष समास हैं।

१. नञ् तत्पुरुष—तत्पुरुष में जब पहला शब्द 'नञ्' (न) रहे तब यह समास होता है। यदि नञ् (न) व्यञ्जन के पूर्व आवे तो 'अ' में और स्वर के पूर्व आवे तो 'अन्' में बदला जाता है। जैसे—

न + अक्षरम् = अनक्षरम्। न + तालः = अतालः।

न + अनुनासिकः = अननुनासिका। न + आहतः = अनाहतः

न + रतिः = अरतिः। न + मर्षः = अमर्षः। न + सम्पूर्णः = असम्पूर्णः।

निर्दिष्ट उदाहरणों से ज्ञात होता है कि 'न' शब्द भी विशेषण का काम करता है।

२. प्रादितत्पुरुषसमास—तत्पुरुष समास में जब पहला 'प्र' आदि उपसर्गों में से कोई हो तब प्रादि तत्पुरुष समास होता है। 'प्र' आदि उपसर्गों से भी विशेषणों का अर्थ सूचित होने से यह भी एक प्रकार का कर्मधारय समास ही हैं। जैसे-प्रगतः आचार्यः प्राचार्यः (मुख्य आचार्य) प्रगतः पितामहः प्रपितामहः (दादा के पिता)। संगतः अध्वानम् = समध्वः (रास्ते का साथी) अतिक्रान्तः रथं रथिनम् वाअतिरथः (अनुपम महारथी) परिग्लानः अध्ययनाय पर्यध्ययनः (पढ़ाई से तंग आया हुआ), किन्तु कर्मप्रवचनीय (कर्म कारक) उपसर्गों के साथ समास नहीं होता। जैसे—वृक्षं प्रति।

३ गति तत्पुरुषसमास—नीचे लिखे हुए शब्दों का कतिपय कृत् प्रत्ययों में अन्त होने वाले 'ल्यप्' प्रत्ययान्त शब्दों के साथ समास होता है तब उसे गति तत्पुरुष समास कहते हैं। ऊर्यादिच्विडाचश्च (१।४।६१) ऊरी, उररी, वौषट, वषट्, स्वाहा, स्वधा, प्रादुः, आविस् और श्रुत् इन निपातों तथा कारिका (कार्य) शब्द का क्त्वा प्रत्ययान्त के साथ समास होता है। जैसे ऊरी कृत्वा इति ऊरीकृत्य, उररी कृत्वा इति उररीकृत्य (स्वीकार करके) वषट्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृत्वा इति वषट्कृत्य (वषट् शब्द कहकर) प्रादुः भूत्वा इति प्रादुर्भूय, कारिकां कृत्वा इति कारिकाकृत्य। भूषणेऽलम् (१।४।६४) 'भूषण' अर्थ वाले अलम् की भी गति संज्ञा होती है। अलं कृत्वा इति अलंकृत्य (भूषित करके) आदरानादरयोः सदसती (१।४।६३) आदर और अनादर अर्थ में सत् और असत् क्रमशः गतिसंज्ञक होते हैं। सत् कृत्वा इति सत्कृत्य (आदर करके) पुरोऽव्ययम् (१।४।६७) अस्तं च (१।४।६८) तिरोऽन्तर्धौ (१।४।७१) 'पुरः' नित्य गति कहलाता है। समास में पुरस्कृत्य रूप बनेगा। अस्तम् 'मान्त' अव्यय है यह गति संज्ञक है। समास में अस्तंगत्य रूप होगा।

तिरः शब्द अन्तर्धान के अर्थ में नित्य गतिसंज्ञक है। तिरः भूत्वा इति तिरोभूय।

किन्तु तिरः 'कृ' के साथ विकल्प से गति होता है, तिरस्कृत्य या तिरःकृत्य।

(४) उपपद तत्पुरुष समास—'तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्' (३।१।९२) तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द जब संज्ञा या अव्यय हो जिसके न रहने से समास में द्वितीय शब्द अपने रूप में न रह सकता हो तब उसे उपपद तत्पुरुष कहते हैं। इस समास में द्वितीय शब्द का रूप कृदन्त का होना चाहिये क्रिया का नहीं। जैसे—कुम्भं करोति इति=कुम्भकारः। यहाँ पर कुम्भ और कार दो शब्द हैं, उनमें 'कुम्भ' उपपद है 'कार' कृदन्त का रूप है क्रिया का नहीं। यदि पहला उपपद शब्द न हो तो 'कारः' पद की स्थिति असम्भव हो जायगी। यथा साम गायतीति सामगः यहाँ 'साम' उपपद और 'गः' कृदन्त शब्द है। इसी प्रकार धनं ददाति इति धनदः। गां ददाति इति गोदः। कभी कभी उपपद समास का उत्तर पद 'णमुल' (अम्) प्रत्ययान्त होता है। जैसे स्वादुंकारं भुङ्क्ते यहाँ स्वादुं कृत्वा इति स्वादुङ्कारम् (भोजन को स्वादिष्ट बनाकर खाता है)।

(५) अलुक्–तत्पुरुष–समास—समास में प्रथम शब्द की विभक्ति का लोप होता है यह कहा जा चुका है जैसे—सुरभारती, किन्तु कुछ ऐसे समास हैं जिनमें विभक्ति के प्रत्यय का लोप नहीं होता, उनको अलुक् समास कहते हैं। 'अलुक्' के उदाहरण संस्कृत वाङ्मय में ही प्राप्त होते हैं जिन में विभक्तिप्रत्यय का लोप नहीं होता है। जैसे–"ओजः सहोम्भस्तमसस्तृतीयायाः" "अञ्जस उपसंख्यानम्" (६।३।३) कुछ स्थलों पर तृतीया तत्पुरुष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समास करने पर बीच की तृतीया विभक्ति (प्रत्यय) का लोप नहीं होता है। अञ्जसा कृतम् (सरलता से किया)। मनसा गुप्ता, ओजसा कृतम् (शक्ति से किया)।

"पुंसानुजो जनुषान्ध—इति च" (वार्तिक) "मनसश्च संज्ञायाम्" (६।३।४) आत्मनश्च (६।३।६)।

'आत्मनश्च' इस से आत्मन् की तृतीया का अलुक् होता है यदि बाद में कोई संख्येय शब्द हो—यथा—आत्मना पञ्चमः=आत्मनापञ्चमः।

'पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः'—(वा०) से 'क्त' प्रत्ययान्त के साथ स्तोक (थोड़ा) अन्तिक (समीप) दूर (दूर) इन्हीं अर्थ वाले अन्य शब्द तथा कृच्छ्र (कठिनाई) शब्दों की पञ्चमी का अलुक् (लोप नहीं) होता है।

अल्पान्मुक्तः। अन्तिकादागतः। अभ्याशादागतः। दूरादागतः। विप्रकृष्टादागतः।, कृच्छ्रादागतः। 'षष्ठ्या आक्रोशे' (६।३।२१)।

उसीप्रकार षष्ठीविभक्ति का इन स्थलों पर अलुक् होता है—

१. निन्दा अर्थ में—देवानांप्रियः (मूर्ख) अन्यत्र देवप्रियः, शेप पुच्छ, लांगूल शब्दों के आगे रहने पर श्वन् शब्द की षष्ठी का अलुक् होता है। जैसे—शुनः शेपः। शुनः पुच्छम्। शुनो-लाङ्गूलः।

वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्तिदण्डहरेषु (वार्तिक) वाच्, दिश्, और पश्यत् के बाद क्रमशः युक्ति दण्ड और हर शब्द होंगे तो षष्ठी का अलुक् होगा।

(१) वाचोयुक्तिः (चतुरतायुक्त वाणी) (२) दिशोदण्डः (आकाश में तारों का दण्डे के तुल्य दृष्टिगत होना) (३) पश्यतोहरः (देखते देखते चुराने वाला)।

सप्तमीविभक्ति का इनस्थलों पर अलुक् होता है। 'कर्णेजपः' (चुगलखोर), 'सरसिजम्' (कमल), 'मनसिजः' (कामदेव), 'वनेचरः' (भील)

(६) मध्यम–पद–लोपी तत्पुरुष समास—जिस समास के बीच के शब्द का लोप हो जाय उसे मध्यमपदलोपी समास कहते हैं। जैसे—शाकप्रियः पार्थिवः–शाकपार्थिवः। देवपूजकः ब्राह्मणः–देवब्राह्मणः। इन उदाहरणों में प्रिय और पूजक शब्द जो बीच में आये हैं किन्तु समास में उनका लोप होने से वे नहीं रहे।

(७) मयूरव्यंसकादितत्पुरुष समास—कुछ ऐसे तत्पुरुष समास हैं जिनमें नियमों का उल्लङ्घन हुआ दृष्टिगत होता है ऐसे समासों को पाणिनि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ने मयूरव्यंसकादि में देकर पृथक् कर दिया है—जैसे व्यंसकः मयूरः (चालाक मोर) मयूरव्यंसकः। यहाँ व्यंसक शब्द पहले होना चाहिये था और मयूर बाद में। उसी तरह अन्यः राजा = राजान्तरम्। अन्यो ग्रामः ग्रामान्तरम्। उदक् च अवाक् च इति = उच्चावचम् (ऊँचानीचा) निश्चितं च प्रचितं च इति निश्चप्रचम् (बिल्कुल निश्चित) चिदेव इति चिन्मात्रम्।

जिनका अपने पदों के साथ समास नहीं होता या जिनका अपने पदों के साथ विग्रह नहीं होता उन्हें वैयाकरणों ने नित्य समास कहा है और मयूर व्यंसकादि के अन्दर डाल दिया है। जैसे जोमूतस्येव, राजान्तरम्, द्विजार्थः।

द्वन्द्व समास

चार्थे द्वन्द्वः (२।२।२९) द्वन्द्व का अर्थ है जोड़ा (युगल)। 'च' के अर्थ में (इतरेतर योग और समाहार में) वर्तमान दो या उससे अधिक सुबन्तों का जहाँ समास हो उसे द्वन्द्व समास कहते हैं। अर्थात् जिस समास में सभी पद प्रधान हों और उनके बीच का संयोजक अव्यय (च) लुप्त रहे उसे द्वन्द्व समास कहते हैं। इसीलिये द्वन्द्व को परिभाषा करते हुए संस्कृत के वैय्याकरणों ने "उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः" कहा है। समास के घटक दोनों पदार्थों की जहाँ प्रधानता रहती है उसको द्वन्द्व समास कहते हैं और उन पदार्थों का विग्रह करते समय 'च' (और) अव्यय के द्वारा उन्हें सम्बद्ध किया जाता है या जोड़ा जाता है।

द्वन्द्व समास तीन प्रकार का है—(१) इतरेतर द्वन्द्व (२) समाहार द्वन्द्व (३) एकशेष द्वन्द्व।

वस्तुतः एकशेष को द्वन्द्व समास का अवान्तर भेद मानना उचित नहीं है। क्योंकि द्वन्द्व समास का अन्तिम स्वर उदात्त होता है किन्तु एकशेष का अन्तिम स्वर उदात्त नहीं होता। इससे यह स्पष्ट है कि एकशेष को समास में गणना नहीं है वह तो एक पृथक् वृत्ति ही है। एकशेष में एक ही सुबन्त शेष रहता है तथापि विद्वान् लोग सुविधा की दृष्टि से इस एकशेष को, द्वन्द्व समास के अन्तर्गत रखते हैं। इस वृत्ति में कुछ साम्य उपलब्ध होता है क्योंकि वे दोनों एक ही अर्थ को प्रकट करते हैं।

इतरेतर द्वन्द्व—जहाँ पर द्वन्द्व समास में समस्त पदों का पृथक् पृथक् अर्थ लिया जाता है अर्थात् समास में आई हुई दोनों संज्ञाएं अपनी प्रधानता और व्यक्तित्व रखती हैं वहाँ पर इतरेतर योग द्वन्द्व होता है। जैसे—नारदतुम्बुरू,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारदश्च तुम्बुरुश्च इति नारदतुम्बुरू। यहाँ पर नारद और तुम्बुरु दोनों शब्द स्वतन्त्र हैं और दोनों का महत्व समान है। इस समास में वर्णित पदार्थों की संख्या के अनुसार द्विवचन या बहुवचन होता है। इसीलिये उपर्युक्त उदाहरण में 'नारदतुम्बुरू' द्विवचन में रक्खा गया है। तथा उसी प्रकार मतंगश्च शार्ङ्गदेवश्च सोमनाथश्च इति मतङ्गशार्ङ्गदेवसोमनाथाः। यहाँ वर्णित व्यक्तियों की संख्या दो से अधिक होने के कारण बहुवचन किया गया है। परवल्लिङ्गं द्वन्द्व–तत्पुरुषयोः (२।४।२६) इस समास में अन्तिम पद का जो लिङ्ग होता है वहां पर समस्तपद का लिङ्ग होता है। जैसे—संगीतराजश्च बृहद्देशी च इति संगीतराजबृहद्देश्यौ। यहाँ पर बृहद्देशी शब्द स्त्रीलिङ्ग है अतः समस्तपद का लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग है। वर्णित वस्तुएं दो हैं इसलिए द्विवचन किया गया है। उसी तरह बृहद्देशी च संगीतराजश्च इति बृहद्देशी-संगीतराजौ यहाँ अन्तिमपद संगीतराज पुँल्लिङ्ग है। इसीलिये समस्तपद का लिङ्ग पुँल्लिङ्ग और वर्णित वस्तुओं की संख्या के अनुसार बहुवचन किया गया है।

अपवाद—किन्तु–कहीं कहीं ऊपर बताये गये नियम नहीं लगते। जैसे अश्वश्च वडवा च इति अश्ववडवौ (पुं० द्विवचन) (घोड़ा और खच्चर),

विद्या सम्बन्ध तथा योनि सन्बन्ध के वाचक ऋकारान्त पद या पदों के साथ जब द्वन्द्व समास होता है तब अन्तिम पद के पूर्व विद्यमान ऋकारान्त पद के ऋकार के स्थान में आकार हो जाता है। होता च पोता च इति होतापोतारौ। माता च पिता च मातापितरौ। होता च पोता च उद्गाता च होतापोतोद्गातारः। यहाँ पर 'होतृ' 'पोतृ' 'उद्गातृ' 'मातृ' 'पितृ' यह सभी ऋकारान्त शब्द हैं। ऊपर बताये गये नियम के अनुसार अन्तिम पद के पूर्व स्थित ऋकारान्त शब्द के 'ऋ' के स्थान में आकार किया गया है।

समाहार द्वन्द्व—

इसमें अनेक वस्तुओं के समूह का बोधन किया जाता है। इसमें सदा नपुंसकलिङ्ग और एक वचन ही होता है। जैसे—आहारश्च निद्रा च भयञ्च इति आहारनिद्राभयम्। इसका अर्थ केवल भोजन, शयन और भय ही नहीं अपितु पशु जीवन की सभी विशेषताएँ संगृहीत हैं। इस समास में 'समूह' का अर्थ मुख्य होता है अन्य पदों का अर्थ गौण। पाणी च पादौ च पाणिपादम् इसमें हाथ और पैर के अतिरिक्त मुख्य रूप से अंग मात्र का बोध होता है। उसी तरह अहिनकुलम् = सांप और नेवले के अतिरिक्त मुख्य रूप से इन दोनों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की जन्मजात शत्रुता का बोध होता है। 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् (२।४।२) जातिरप्राणिनाम् (२।४।६) विशिष्टलिङ्गो नदी देशोऽग्रामाः (२।४।७) क्षुद्रजन्तवः (२।४।८) येषां च विरोधः शाश्वतिकः (२।४।९) निम्नस्थानों पर समाहार द्वन्द्व किया जाता है—(१) शरीर के अंगों के वाचक शब्दों का, (२) अनेक प्रकार के वाद्यों को बजाने वालों का, (३) सेना के अंगवाचक शब्दों का, (४) निर्जीव वस्तुओं का (द्रव्यों का), (५) भिन्न लिङ्ग वाले नदीवाचक शब्दों का और (६) देशवाचक शब्दों का (ग्रामों का नहीं) (७) क्षुद्र कीटादि जन्तुओं का, और (८) जिन जीवों में स्वाभाविक विरोध है उनका (शब्दों का) समाहार द्वन्द्व होता है।

१. पाणी च पादौ च = पाणिपादम्
   वैणिकाश्चगोमुखाश्च = गोमुखवैणिकम्
२. मार्दङ्गिकाश्च पाणविकाश्च = मार्दङ्गिकपाणविकम् (मृदंग और ढोल वादक)
   ऋषभश्च गान्धारश्च = ऋषभगान्धारम्।
३. रथिकाश्च अश्वारोहाश्च = रथिकाश्वारोहम् (रथी और घुड़सवार)
४. धानाश्च गोधूमश्च = धानागोधूमम्
५. गंगा च शोणश्च = गंगाशोणम् (गंगा और सोन नदी)
६ कुरवश्च कुरुक्षेत्रञ्च = कुरुकुरुक्षेत्रम् (दो देशों के नाम)
७. यूका च लिक्षा च = यूकालिक्षम् (जूँ और लीख)
८. अहिश्च नकुलश्च = अहिनकुलम्।

कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहाँ विकल्प से समाहार द्वन्द्व होता है—किन्तु जब समाहार द्वन्द्व होगा तब एकवचन ही होगा और जब नहीं होगा तब द्विवचन अथवा बहुवचन भी होगा। वृक्षवाचक शब्दों का समाहार-प्लक्षाश्च न्यग्रोधाश्च = प्लक्षन्यग्रोधम्। प्लक्षन्यग्रोधाः।

इसी प्रकार मृगवाचक शब्दों का—

रुरुपृषतम्—ताः (मृगों के भेद)
कुशकाशम्—शाः (तृणों का समाहार)
व्रीहियवम्—वाः (धान्य का समाहार-अनाज के भेद)
दधिघृतम्—ते (द्विवचन) व्यञ्जनों का समाहार
गोमहिषम्—षाः पशुओं का समाहार
शुकबकम्—काः पक्षियों का समाहार
अश्ववडवम्—वौ (पुँल्लिङ्ग) अश्व वडव का समाहार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्वापरम्—रे, अधरोत्तरम्—रे, शीतोष्णम्—ष्णे, किन्तु जलवाचक में द्विवचन यानी इतरेतर द्वन्द्व ही होगा। जैसे—(शीतोष्णे उदके स्तः)। फलों, सेना के अंगों, वनस्पतियों, मृगों, पक्षियों, क्षुद्रजीवों, अन्नों और तृणों के बहुवचन वाले शब्दों में ही समाहार द्वन्द्व और एक वचन होता है—जैसे बदराणि च आमलकानि च इति बदरामलकम् अन्यथा 'बदरामलके' होगा।

व्यवहार में कुछ रूप ऐसे भी उपलब्ध होते हैं जो नियम के अनुसार नहीं बन पाते। इसी लिये उनका निपातन (ऐसा ही रूप बनेगा) किया जाता है। जैसे—

गावश्च	अश्वाश्च	अनयोः	समाहारः	इति गवाश्वम्
पुत्राश्च	पौत्राश्च	तयोः	समाहारः	इति पुत्रपौत्रम्।
स्त्री च	कुमारश्च	अनयोः	समाहारः	इति स्त्रीकुमारम्
उष्ट्रश्च	खरश्च	अनयोः	समाहारः	इति उष्ट्रखरम् (ऊँट और गधा)
मांसश्च	शोणितश्च	तयोः	समाहारः	इति मांसशोणितम्
दर्भश्च	शरश्च	अनयोः	समाहारः	इति दर्भशरम् (कुशा और सरकण्डा)
तृणश्च	उलपश्च	तयोः	समाहारः	इति तृणोलपम् (तिनका और घास)
दासी च	दासश्च	अनयोः	समाहारः	इति दासीदासम्।

इतरेतरद्वन्द्व—

इतरेतर द्वन्द्व समास में भी निपातन होते हैं—

१.	दधि च	पयश्च	इति दधिपयसी (दही दूध)
२.	सर्पिश्च	मधुच	इति सर्पिमधुनी अथवा मधुसर्पिषी(शहद और घी)
३.	शुक्लश्च	कृष्णश्च	इति शुक्लकृष्णौ।
४.	अध्ययनञ्च	तपश्च	इति अध्यनतपसी।
५.	आदिश्च	अवसानञ्च	इति आद्यवसाने।
६.	ऋक् च	सामच	इति ऋक्सामे (ऋग्वेद और सामवेद के मन्त्र)
७.	वाक् च	मनश्च	इति वाङ्मनसे (वाणी और मन)

अन्तिम दो उदाहरणों निपातन के द्वारा सामन् के 'न्' का लोप और 'मनस्' के अन्त में 'अ' प्रत्यय किया जाता है। (५।४।७७ सूत्र से)।

देवताद्वन्द्वे च (६।३।२६) वायुशब्दप्रयोगे प्रतिषेधः (वार्तिक) ईदग्नेः सोमवरुणयोः (६।३।२७) द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे (५।४।१०६)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसिद्ध साहचर्य वाले देवतावाचक शब्दों का द्वन्द्व समास होने पर पहले शब्द के अन्तिम अक्षर के स्थान पर 'आ' होता है किन्तु वायु शब्द साथ में रहने पर नहीं होगा। जैसे-मित्रश्च वरुणश्च इति मित्रावरुणौ। सूर्यश्च चन्द्रमाश्च इति सूर्याचन्द्रमसौ। अग्निश्च मरुतश्च इति अग्नामरुतौ। किन्तु अग्निवायू और वाय्वग्नी ही रूप होंगे।

सोम या वरुण शब्द आगे रहने पर अग्नि के 'इ' को 'ई' होता है जैसे—अग्निश्च सोमश्च इति अग्नीषोमौ। अग्निश्च वरुणश्च इति अग्नीवरुणौ। इसी तरह समाहार द्वन्द्व में—अन्तिम शब्द के अन्त में चवर्ग 'द्', 'ष' और 'ह्' होंगे तो उनके अन्त में 'अ' जुड़ता है। जैसे—वाक् च त्वक् च अनयोः समाहारः इति वाक्त्वचम्। त्वक् च स्रक् च अनयोः समाहारः इति त्वक्स्रजम्। शमी च दृषद् च इति शमीदृषदम् (शमी और सिल)। वाक् च त्विट् च अनयोः समाहारः इति वाक्त्विषम् (वाणी और कान्ति) छत्रञ्च उपानत् च इति छत्रोपानहम् (छाता और जूता)। किन्तु प्रावृट् च शरद् च इति प्रावृट्शरदौ हुआ यहाँ समाहार द्वन्द्व न होने के कारण अन्त में 'अ' नहीं

दिवो द्यावा (६।३।२९) दिवसश्च पृथिव्याम् (६।३।३०) उषा सोषसः (६।३।३१)।

द्यौश्च पृथिवी च यहाँ द्वन्द्वसमास करने पर द्यावापृथिव्यौ, दिवस्पृथिव्यौ यह दो रूप होते हैं (द्युलोक और पृथ्वी।) द्यौश्च भूमिश्च इति द्यावाभूमी। उषाश्च सूर्यश्च इति उषासासूर्यम् (उषा और सूर्य)।

जाया च पतिश्च इति, जम्पती, दम्पती। यहाँ पर जाया शब्द के स्थान में 'जम्' भाव और 'दम्' भाव का निपातन किया जाता है। (पतिपत्नी।)

स्त्री च पुमान् च = स्त्रीपुंसौ, समाहार करने पर स्त्रीपुंसम् होगा।
अक्षिणी च भ्रुवौ च = अक्षिभ्रुवम्
दाराश्च गावश्च = दारगवम्
ऊरू च अष्ठीवन्तौ च = ऊर्वष्ठीवम् (जांघ और घुटने)
पादौ च अष्ठीवन्तौ च = पादष्ठीवम्
नक्तञ्च दिवा च = नक्तंदिवम्
रात्रौ च दिवा च = रात्रिन्दिवम्
अहनि च दिवा च = अहर्दिवम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकशेष द्वन्द्वः—

जहां पर पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग का समास होता है, वहाँ पुँल्लिङ्ग शेष रहता है और उससे द्विवचनादि किये जाते हैं। जैसे—दासी च दासश्च = दासौ ब्राह्मणी च ब्राह्मणश्च = ब्राह्मणौ। हंसी च हंसश्च = हंसौ।

यह नियम कुछ विरूप शब्दों में भी लगता है। जैसे—

भ्राता च स्वसा च = भ्रातरौ
पुत्रश्च दुहिता च = पुत्रौ
माता च पिता च = पितरौ
श्वश्रूश्च श्वशुरश्च = श्वशुरौ, श्वश्रश्वशुरौ।
स च सा च = तौ स च यश्च = यौ अथवा तौ।
सा च यश्च = यौ सा च देवदत्तश्च = तौ। तत्र देवदत्तश्च = ते।
या च सश्च = तौ

जहाँ तीनों लिङ्गों के शब्द रहते हों वहां नपुंसकलिङ्ग ही शेष रहेगा। तच्च देवदत्तश्च यज्ञदत्ताश्च = तानि। इकारान्त और उकारान्त शब्दों को पहले रखना चाहिये। जहां पर एक से अधिक इस प्रकार के शब्द हों वहां पर किसी एक शब्द को पहले रखना चाहिये और बचे हुए शब्दों को कहीं भी रक्खा जा सकता है। जैसे—हरिश्च हरश्च इति हरिहरौ। हरिश्च हरश्च गुरुश्च हरिहरगुरवः। हरिगुरुहराः।

२—स्वर से आरम्भ होने वाले और अन्त में 'अ' वाले शब्द प्रथम रखने चाहिए अश्वरथेन्द्राः, इन्द्राश्वरथाः। (घिसंज्ञ और अजादिअदन्त) जहाँ दोनों नियम लागू हों वहां यह नियम नहीं लगता। जैसे—इन्द्रश्च अग्निश्च इति इन्द्राग्नी। ईश्वरश्च प्रकृतिश्च इति ईश्वरप्रकृती।

३—जिस शब्द में स्वर कम हों उन्हें पहले रखना चाहिए। जहां पर एक से अधिक शब्द समान मात्रा वाले हों वहाँ पर लघु या कम अक्षर वाला शब्द पहले रखना चाहिए। जैसे—शिव केशवौ (शिवश्च केशवश्च इति) क्योंकि शिव में दो स्वर हैं और केशव में तीन स्वर हैं।

४—ऋतु और नक्षत्र वाची शब्दों में जहाँ बराबर अक्षर वाले शब्द हों वहाँ ज्योतिष् के क्रम के अनुसार उन्हें रखना चाहिए जैसे—हेमन्तश्च शिशिरश्च वसन्तश्च = हेमन्तशिशिरवसन्ताः। कृत्तिका च रोहिणी च इति कृत्तिकारोहिण्यौ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५—अधिक सम्माननीय का पहले प्रयोग किया जाता है—जैसे—तापसश्च पर्वतश्च तापसपर्वतौ।

६—वर्णों के नाम क्रम से देने चाहिए—उसी तरह भाइयों के नाम भी बड़े से प्रारम्भ करने चाहिए। जैसे—ब्राह्मणश्च क्षत्रियश्च विट् च शूद्रश्च = ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः। युधिष्ठिरश्च अर्जुनश्च इति युधिष्ठिरार्जुनौ।

७—राजदन्तादिषु परम् (२।२।३१) धर्मादिष्वनियमः (वार्तिक) राजदन्तादि गण में पठित शब्दों में पूर्व प्रयोग करने के योग्य शब्द का बाद में प्रयोग होता है, किन्तु धर्मादि शब्दों में यह नियम विकल्प से लगता है।

आर्याणां शूद्राणां च समाहारः इति शूद्रार्यम्, धर्मश्च अर्थश्च धर्मार्थौ अथवा अर्थधर्मौ। उसी प्रकार शब्दश्च अर्थश्च इति शब्दार्थौ वा अर्थशब्दौ, अर्थश्च कामश्च इति कामार्थौ वा अर्थकामौ।

दन्तानां राजा इति राजदन्तः। 'सुप्सुपेति' इस सूत्र से पूर्वरङ्ग में समास हुआ और पर निपात हुआ तो 'पूर्वो रङ्ग' इति पूर्वरङ्गः हुआ।

बहुव्रीहि समास

अनेकमन्यपदार्थे (२।२।२४) समास में आये हुए दो या अधिक प्रथमान्त शब्दों का बहुव्रीहि समास होता है यदि उन शब्दों से अतिरिक्त कोई अन्य पदार्थ अभीष्ट हो। इसमें प्रथम शब्द साधारण रूप से विशेषण या गुण बोधक होता है और दूसरा शब्द विशेष्य या गुणी, दोनों पद मिलकर अपने से भिन्न पद का अर्थ बताते हैं इसीलिये विद्वानों ने 'बहुव्रीहि' की परिभाषा "अन्यपदार्थप्रधानोबहुव्रीहिः विशेष्यनिघ्नश्च" की है। किसी ने कहा भी है—

"सप्तभिराख्याभिर्वा विख्यातो यः सर्वैर्बहुव्रीहिः।
अन्यपदार्थो मुख्यः कथितो विबुधैर्बहुव्रीहौ"॥

बहुव्रीहि समासवाला पद विशेषण का कार्य करता है और विशेष्य के तुल्य उसके लिङ्ग तथा वचन किये जाते हैं। इसीलिये कहा गया है कि 'बहुव्रीहिः प्रायेण अन्यपदार्थो विशेष्यनिघ्नश्च'। बहुव्रीहि शब्द का यौगिक अर्थ बहुः व्रीहिः यस्य अस्ति सः = बहुव्रीहिः इति। (जिसके पास बहुत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चावल हो किया जा सकता है। इस 'बहुव्रीहि' में दो शब्द हैं बहुः और व्रीहिः पहला शब्द दूसरे शब्द का विशेषण है और दोनों मिलकर किसी तीसरे के विशेषण हैं। बहुव्रीहि और तत्पुरुष (कर्मधारय) समास में यही अन्तर है कि तत्पुरुष कर्मधारय में पहला पद विशेषण होता है और दूसरा विशेष्य; किन्तु बहुव्रीहि में सम्पूर्ण समस्त पद ही किसी अन्य पद का विशेषण होता है। तत्पुरुष समास के समस्त पद में ही अर्थ पूरा हो जाता है किन्तु बहुव्रीहि समास के समस्त पदों में अर्थ पूर्ण नहीं हो पाता। जैसे—'नीलकमलम्' यहाँ कर्मधारय है क्योंकि नीलशब्द और कमल शब्द दोनों में एक ही विभक्ति है (नीलम् कमलम्) किन्तु 'गम्भीरनादः' में कर्मधारय और बहुव्रीहि दोनों किये जा सकते हैं। कर्मधारयसमास मानने पर गम्भीरश्च असौ नादः (गम्भीर ध्वनि) अर्थ पूर्ण हो जाता है किन्तु 'गम्भीरः नादः यस्य सः' इस प्रकार बहुव्रीहि मानने पर गम्भीर ध्वनि से ही अर्थ पूरा नहीं हो पाता बल्कि वह व्यक्ति अपेक्षित रहता है जिसकी ध्वनि गम्भीर हो। इसप्रकार प्रकरण की आवश्यकतानुसार तत्पुरुष या बहुव्रीहि में से एक ही समास किया जा सकता है।

अन्यपदार्थप्रधान तथा विशेष्यनिघ्न बहुव्रीहि समास के तीनों लिङ्गों में उदाहरण :—

१—धृतः भारः येन सः धृतभारः (पुरुषः) । (पुं०)
२—धृतः भारः यया सा = धृतभारा (स्त्री) । (स्त्री०)
३—धृतः भारः येन तत् = धृतभारम् (मस्तकम्) (नपुं०)

साधारणतया बहुव्रीहि के सात प्रकार :—

१—द्विपद बहुव्रीहि, २—बहुपद बहुव्रीहिः, ३—संख्योभयपदबहुव्रीहि, ४—संख्योत्तरपदबहुव्रीहि, ५—सहपूर्वपदबहुव्रीहि, ६—दिगन्तराललक्षण-बहुव्रीहि, ७—व्यतिहारलक्षणबहुव्रीहि।

१—समाः स्वराः यस्यां सा = समस्वरा (कर्णाटी) २—तारषड्जो ग्रहोंऽशश्च यस्य इति = तारषड्जग्रहांशकः (शुद्धसाधारितः) ३—द्वौ वा त्रयो वा = द्वित्राः । पञ्च वा षट् वा=पञ्चषाः । द्विरावृत्ताः दश = द्विदशाः । त्रिंशतः अदूराः अदूरत्रिंशाः । चत्वारिंशतः अधिकाः = अधिकचत्वारिंशाः । ४ दशानां समीपे ये सन्ति ते = उपदशाः । एकादशानां समीपे ये सन्ति ते = उपैकादशाः । ५—तीव्रमध्यमेन सह वर्तते इति = सतीव्रमध्यमः (यमनः) सन्तानैः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सह वर्तंते इति = सहसन्तानः। पुत्रेण सह वर्तंते इति = सह पुत्रः (स पुत्रः)। ६—उत्तरस्याश्च पूर्वस्याश्च दिशोर्यदन्तरालं सा = उत्तरपूर्वा। दक्षिणस्याश्च पूर्वस्याश्च दिशोर्यदन्तरालं सा = दक्षिणपूर्वा। ७—केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तं=केशाकेशि। मुष्टिभिश्च मुष्टिभिश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तं=मुष्टीमुष्टि। बाहुभिश्च बाहुभिश्च गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तं=बाहूबाहवि। दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तं = दण्डादण्डि। समानाधिकरण बहुव्रीहि में, विग्रह करते समय बहुव्रीहि के दोनों पदों में विभक्ति की समानता रहती है। जैसे—पीताम्बरः—पीतम् अम्बरं यस्य सः। यहाँ 'पीत' और 'अम्बर' में समान विभक्ति का प्रयोग किया गया है। यत् शब्द के द्वितीया से सप्तमी तक के भेदों के आधार पर इसके छह भेद किये जाते हैं। जैसे—'प्राप्तम् उदकम् यं सः'—प्राप्तोदकोग्रामः (यत् शब्द द्वितीया विभक्ति में)। 'ऊढः रथः येन सः'—ऊढरथः, [वृषभः यत् शब्द तृ० वि०]। 'उपहृतः पशुः यस्मै सः—उपहृतपशुः रुद्रः (भेट किया गया है पशु जिसको वह—[यत् शब्द, चतुर्थी विभक्ति]। उद्धृतः ओदनः यस्याः सा—उद्धृतौदना स्थाली (यत् शब्द पञ्चमी विभक्ति)। पीतम् अम्बरं यस्य सः—पीताम्बरो हरिः (विष्णु, श्रीकृष्ण,) [यत् शब्द षष्ठी विभक्ति]।

वीराः पुरुषाः यस्मिन् सः—वीरपुरुषोदेशः (वीर पुरुष जिसमें हों ऐसा देश [यत् शब्द सप्तमी विभक्ति]। बहुव्रीहिसमास का विग्रह करते समय 'यत्' शब्द के किसी भी रूप का आना अनिवार्य है। 'यत्' शब्द के द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि समास में आये हुए शब्द किसी अन्य शब्द से ही सम्बन्ध रखते हैं।

व्यधिकरण बहुव्रीहि में दोनों पद प्रथमा विभक्ति में नहीं रहते अर्थात् दोनों में पृथक् पृथक् विभक्ति रहती है। व्यधिकरण बहुव्रीहि में एक शब्द प्रथमा विभक्ति में रहता है और दूसरा शब्द षष्ठी या सप्तमी में रहता है। जैसे—

चक्रं पाणौ यस्य सः—चक्रपाणिः। चन्द्रः शेखरे यस्य सः—चन्द्रशेखरः।
चन्द्रस्य इव कान्तिः यस्य सः—चन्द्रकान्तिः।
पद्मस्य इव गन्धः यस्य सः—पद्मगन्धिः।

यह समास षष्ठी और सप्तमी विभक्तियों के साथ ही होता है 'पञ्चमिः भुक्तम् अस्य' में समास नहीं होगा और 'पञ्चभुक्तः' रूप नहीं बनेगा।

बहुव्रीहि समास के दो भेद और पाये जाते हैं एक तद्गुणसंविज्ञान-बहुव्रीहि और दूसरा अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि वहाँ होता है जहाँ विशेषण शब्द का अर्थ भी उपस्थित रहे। जैसे–'पीताम्बरं कृष्णम् आकारय'। इस वाक्य में विशेष्य 'कृष्ण' है और उसके साथ ही पीत+अम्बर की (वस्त्र की) उपस्थिति रहना आवश्यक है। किन्तु अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि में विशेषण पद के अर्थ की उपस्थिति आवश्यक नहीं होती। जैसे—'चित्रगुं (चित्रा गौः यस्य सः चित्रगुः तम्)–गोपालम् आनय'। इस वाक्य में 'गोपाल' विशेष्य है और उसी की उपस्थिति आवश्यक है। चितकबरी गाय की उपस्थिति आवश्यक नहीं है।

समानाधिकरण बहुव्रीहि में यदि प्रथम शब्द पुँल्लिङ्ग शब्द से बना हुआ स्त्रीलिङ्ग हो और साथ ही वह उकारान्त न हो, तथा दूसरा शब्द स्त्रीलिङ्ग हो तो प्रथम शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप हटा कर उसे पहला रूप (पुँल्लिङ्ग) दिया जाता है।

रूपवतीभार्या यस्य सः––रूपवद्भार्यः बनेगा रूपवतीभार्यः रूप नहीं बनेगा (रूपवान्)। इस उदाहरण में समास का प्रथम शब्द रूपवती है और द्वितीय शब्द भार्या है। प्रथम शब्द 'रूपवत्' (पुं०) से बना था और न वह उकारान्त है किन्तु ईकारान्त है। उसी तरह दूसरा शब्द 'भार्या' स्त्रीलिङ्ग में है, इसलिये प्रथम शब्द का पुं० रूप (रूपवत्) किया गया। इसी प्रकार चित्राः गावः यस्य सः = 'चित्रगुः' हुआ (चित्रागुः नहीं बनेगा)। जरती भार्या यस्य सः जरद्भार्यः (जरतीभार्यः नहीं) किन्तु गंगा भार्या यस्य सः गंग भार्यः नहीं बनेगा। किन्तु गंगाभार्य ही बनेगा। क्योंकि गंगा शब्द किसी पुंल्लिङ्ग शब्द का स्त्रीलिङ्गरूप नहीं है। वामोरूः भार्या यस्य सः–वामोरूभार्यः। यहाँ पर प्रथम शब्द 'वामोरू' ऊकारान्त है, आकारान्त या ईकारान्त नहीं इसलिये यहाँ पुँवद्भाव नहीं हुआ। यदि प्रथम शब्द किसी का नाम हो, पूरणीसंख्या हो, जिसमें ईकारान्त अंग का नाम आता हो, जाति का नाम हो तो प्रथम शब्द को 'पुँवद्भाव' नहीं होता।

१—दत्ताभार्यः = जिस की 'दत्ता' नाम की भार्या है।

२—पञ्चमाभार्यः = जिसकी पांचवीं स्त्री है।

३—सुकेशीभार्यः = जिसकी सुन्दर केशवाली भार्या है।

४—शूद्राभार्यः = जिसकी शूद्रजाति की स्त्री है। यहाँ पुंवद्भाव नहीं हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहीं कहीं 'प्र' आदि उपसर्ग तथा निषेधार्थक 'अ' या 'अन्' अव्ययों का संज्ञाशब्दों के साथ बहुव्रीहि समास होता है। अर्थ को सूचित करने के लिये प्रयुक्त किये गये कृदन्त रूपों का विकल्प से लोप होता है। जैसे—

अविद्यमानः पुत्रः यस्य सः = अपुत्रः और 'अविद्यमानपुत्रः' यह रूप भी बनेगा।

प्रपतितानि पर्णानि यस्य सः = प्रपर्णः (जिसके पत्ते गिर गये हैं ऐसा वृक्ष) और 'प्रपतितपर्णः' यह रूप भी बनेगा।

निर्गता घृणा यस्य सः = निर्घृणः और निर्गतघृणः रूप भी बनेगा।

अस्ति क्षीरं यस्याः सा = अस्तिक्षीरा गौः (दुधारी गाय) यहाँ 'अस्ति' (विद्यमान) अव्यय है।

'सह' अव्यय का तृतीयान्त के साथ बहुव्रीहि समास होता है। इस समास में 'सह' को 'स' आदेश विकल्प से हो जाता है। जैसे—पुत्रेण सह = सपुत्रः अथवा 'स' आदेश न होने पर सहपुत्रः।

आशीर्वाद अर्थ में 'सह' को 'स' आदेश नहीं होता। जैसे—स्वस्ति राज्ञे सहपुत्राय, सहामात्याय यहाँ 'सह' को 'स' नहीं हुआ, किन्तु गो, वत्स, हल, शब्द आगे रहने पर 'सह' को 'स' आदेश अवश्य होता है तथा आशीर्वाद अर्थ रहने पर भी। स्वस्ति भवते सगवे, सवत्साय, सहलाय।

समास के अन्त में यदि 'इन्' प्रत्ययान्त शब्द आवे और यदि सम्पूर्ण समास स्त्रीलिङ्ग बनाना हो तो नित्य कप् (क) प्रत्यय जोड़ दिया जाता हैं। जैसे—बहवः दण्डिनः यस्यां सा = बहुदण्डिका (नगरी)। किन्तु यदि पुँल्लिङ्ग बनाना हो तो कप् प्रत्यय विकल्प से जोड़ा जाता है। जैसे—बहवः दण्डिनः यस्मिन् सः बहुदण्डिकः अथवा बहुदण्डी ग्रामः।

उरस्, सर्पिष् इत्यादि शब्द यदि अन्त में हों तो 'कप्' प्रत्यय नित्य होता है। जैसे – व्यूढं उरः यस्य सः— व्यूढोरस्कः (विशालवक्षस्थलवाला)।

प्रियं सर्पिः यस्य सः प्रियसर्पिष्कः (घृतप्रिय व्यक्ति) बहुव्रीहि समास के अन्तिम शब्द में यदि कोइ विकार न हुआ हो तो 'कप्' प्रत्यय विकल्प से जोड़ा जाता है। जैसे–उदात्तम् मनः यस्य सः=उदात्तमनस्कः या उदात्तमनाः। इसी तरह महायशस्कः = (महत् यशः यस्य सः इति) अथवा महायशाः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु व्याघ्रस्य इव पादौ यस्य सः=व्याघ्रपात्—यहाँ व्याघ्रपादकः रूप नहीं होगा क्योंकि समास के अन्तिम शब्द 'पाद' को व्याकरण के नियमानुसार 'पद्' आदेश हो जाता है। इसलिये यहाँ 'कप्' प्रत्यय नहीं किया जाता।

बहुव्रीहि समास का अन्तिम शब्द यदि ऋकारान्त हो तो अथवा ईकारान्त या उकारान्त स्त्रीलिङ्ग हो तो 'कप्' प्रत्यय नित्य होता है जैसे—

ईश्वरः कर्त्ता यस्य सः—ईश्वरकर्तृकः (संसारः)
रूपवती स्त्री यस्य सः—रूपवत्स्त्रीकः
सुकेशी स्त्री यस्य सः—सुकेशीस्त्रीकः
सुन्दरी वधूः यस्य सः—सुन्दरवधूकः

अन्तिम शब्द यदि आकारान्त हो तो 'कप्' के आगे रहने पर 'आकार' को 'अकार' विकल्प से होता है। जैसे—पुष्पमालाकः, पुष्पमालकः। 'कप्' प्रत्यय के अभाव में पुष्पमालः होगा।

बहुव्रीहि समास में अन्त में जाया शब्द रहने पर 'निङ्' आदेश होता है। जैसे—युवतिः जाया यस्य सः—युवजानिः, जानकी जाया यस्य सः—जानकी-जानिः इसी तरह भूजानिः आदि।

बहुव्रीहि समास में केवल एक शब्द पहले हो तो 'धर्म' को 'धर्मन्' आदेश होता है। जैसे—कल्याणः धर्मः यस्य सः—कल्याणधर्मा।

निवृत्तिः धर्मः यस्य सः—निवृत्तिधर्मा।

धनुष शब्द बहुव्रीहि समास के अन्त में यदि हो तो उसे 'धन्वन्' आदेश होता है। अधिज्यं धनुः यस्य सः—अधिज्यधन्वा (जिसके धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ी हुई है) उत्, पूति, सु पहले हो तो गन्ध को गन्धि आदेश होता है। उद्गतः गन्धः यस्य सः–उद्गन्धिः (चारों ओर जिसकी गन्ध फैल रही है)।

पूतिः गन्धः यस्य सः—पूतिगन्धिः (दुर्गन्धी)
शोभनः गन्धः यस्य सः—सुगन्धिः

'सु' और 'दुर्' के आगे स्थित 'हृदय' को मित्र और शत्रु अर्थ में—'हृत्' आदेश हो जाता है

शोभनं हृदयम् यस्य सः–सुहृत् (मित्र), दुष्टं हृदयं यस्य सः–दुर्हृत् (शत्रु) अन्यत्र सुहृदयः, दुर्हृदयः रूप होगा।

'अन्' के पश्चात् 'अर्थ' शब्द होने पर उससे 'क' प्रत्यय नित्य होता है जैसे—अनर्थकः, अन्यत्र विकल्प से अपार्थम्, अपार्थकम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाक्य—सङ्ग्रह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्णाः तद्भेदाश्च

गानक्रियोच्यते वर्णः स चतुर्धा निरूपितः।
स्थाय्यारोह्यवरोही च संचारीत्यथ लक्षणम्॥ १॥
स्थित्वा स्थित्वा प्रयोगः स्यादेकस्यैव स्वरस्य यः।
स्थायी वर्णः सः विज्ञेयः परावन्वर्थनामकौ॥ २॥
एतत्संमिश्रणाद्वर्णः संचारी परिकीर्तितः॥ ३ पूर्वार्धं॥

सं० रत्न० १।६।१–३

स्थाय्यादिभेदभिन्नास्ते···· ···· ··· ··· ···॥
एक एव स्वरो यत्र पदे विच्छिद्य गीयते।
मुहुर्मुहुः स विज्ञातस्तत्र स्थायीति लक्षितः॥

सं० राज (२।१।३।३५ P.१६८)

अन्वय—गानक्रिया (स्त्री० १.१) वर्णः (पुं० १.१) उच्यते सः (पुं० १.१) चतुर्धा (अ०) निरूपितः स्थायी-आरोही-अवरोही-च। सञ्चारी—(पुं० १.१) च अथ (अ०) लक्षणम् (न० १.१)।

अर्थ—गाने की क्रिया को वर्ण कहते हैं। वह (वर्ण) चार प्रकार से निरूपित किया गया है—स्थायी-आरोही-अवरोही-संचारी। इसके बाद, इनके लक्षण (कहते हैं)।

अन्वय—एकस्य (पुं० ६.१) एव (अ०) स्वरस्य (पुं०६.१) स्थित्वा स्थित्वा (अ०) यः (पुं० १.१) प्रयोगः (पुं० १.१) स्यात्, ज्ञः (पुं०१.१) स्थायी (पुं० १.१) वर्णः (पुं० १.१) विज्ञेयः (पुं० १.१) परौ (पुं० १.२) अन्वर्थनामकौ (पुं० १.२)।

अर्थ—एक स्वर का रूक २ कर जब प्रयोग हो तो तब उसे स्थायी वर्ण समझना चाहिये। बाद के दो (आरोही व अवरोही) सार्थक (यथार्थ) नाम वाले हैं। (आरोही का अर्थ है चढ़नेवाला तथा अवरोही का अर्थ है उतरने वाला।

अन्वय—एतत्संमिश्रणात् (न० ५.१) सञ्चारी (पुं० १.१) वर्णः (पुं० १.१) परिकीर्तितः (पुं० १.१)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ—इन (स्थायी, आरोही तथा अवरोही) के मिश्रण से सञ्चारी वर्ण कहा जाता है।

अन्वय—स्थाय्यादिभेदभिन्नाः (पुं० १.३) ते (पुं० १.३) गीतं (न० १.१) विस्तारयन्ति पदे (न० ७.१) कान्तिम् (स्त्री० २.१) वा (अ०) गच्छन्ति।

यत्र (अ०) पदे (न० ७.१) एकः (पुं० १.१) एव (अ०) स्वरः (पुं० १.१) विच्छिद्य मुहुर्मुहुः (अ०) गीयते तत्र (अ०) लक्षितः (पुं० १.१) सः (पुं० १.१) स्थायी (पुं० १.१) इति इति (अ०) विज्ञेयः।

अर्थ—स्थायी आदि के भेद से भिन्न वे (वर्ण) गीत का विस्तार करते हैं। पद में कान्ति को लाते हैं। जहाँ, पद में एक ही स्वर बार २ रुक २ कर गाया जाता है। वहाँ उसको स्थायी समझना चाहिये।

अन्वय—गीतं (न० १.१) विस्तारयन्ति पदे (न० ७.१) कान्तिम् (स्त्री०२.१) वा (अ०) गच्छन्ति।

अर्थ—गति का विस्तार करते हैं। अथवा पद में कान्ति को लाते हैं।

अलङ्कार प्रयोजनानि

विशिष्टं वर्णसंदर्भमलंकारं प्रचक्षते १।६।३ उत्तरार्ध ॥
रक्तिः लाभः स्वरज्ञानं वर्णाङ्गानां विचित्रता ॥ ६४ ॥
इति प्रयोजनान्याहुरलंकारनिरूपणे।
सं रत्ना० १।६।६४

अन्वय—विशिष्टं (पुं० २.१) वर्णसंदर्भम् (पुं० २.१) अलंकारं (पुं०२.१) प्रचक्षते।

अर्थ—विशिष्ट वर्ण समूह को अलंकार कहते हैं।

अन्वय—अलंकार-निरूपणे (पुं० ७.१) रक्तिलाभः (पुं० १.१) वर्णाङ्गानां (न० ६.३) विचित्रता (स्त्री० १.१) इति प्रयोजनानि (न०२.३) आहुः।

अर्थ—अलंकार निरूपण में रक्तिलाभ, स्वर का ज्ञान तथा वर्णांगों की विचित्रता इन तीन प्रयोजनों को बताया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतयः

... . गीतयः पुनः ॥ ६२ ॥
मागधी संभाविता च पृथुलेति क्रमादिमाः ।.... ...

सं० रत्न० १।७।६२

अन्वय—पुनः [अ०] क्रमात् [पुं० ५.१] इमाः [स्त्री० १.३] मागधी संभाविता-पृथुला (स्त्री० १.१] च—इति [अ०] गीतयः [स्त्री० १.३] भवति ।

अर्थ—क्रम से मागधी, संभाविता, पृथुला ये गीतियाँ हैं ।

गीतिलक्षणं तद्भेदाश्च

वर्णाद्यलंकृता गानक्रिया पदलयान्विता ॥ १४ ॥
गीतिरित्युच्यते सा च बुधैरुक्ता चतुर्विधा ।
मागधी प्रथमा ज्ञेया द्वितीया चार्धमागधी ॥ १५ ॥
संभाविता च पृथुलेत्येतासां लक्ष्म चक्ष्महे ।

सं० रत्न० १।८।१४—१५

अन्वय—वर्णाद्यलंकृता [स्त्री० १.१] गानक्रिया [स्त्री०१.१] पदलयान्विता [स्त्री० १.१] सति [स्त्री० १.१] इति [अ०] गीति [स्त्री० १.१] उच्यते सा [स्त्री० १.१] च [अ०] बुधैः [पुं० ३.३] चतुर्विधा [स्त्री० १.१] उक्ता ।

अर्थ—वर्ण आदि से अलंकृत, गान क्रिया जब पद, लय से अन्वित होती है तब वह गीति कही जाती है विद्वानों ने उसके चार प्रकार बताये हैं ।

अन्वय—प्रथमा [स्त्री० १.१] मागधी [स्त्री० १.१ ज्ञेया द्वितीया [स्त्री० १.१] अर्धमागधी [स्त्री० १.१] च [अ०] संभाविता [स्त्री० १.१] पृथुला स्त्री० १.१] च [अ०] एतासां [स्त्री० ६.३] लक्ष्म [न० २.१] चक्ष्मेह ।

अर्थ—पहली को मागधी, दूसरी को अर्धमागधी तथा तीसरी व चौथी को क्रमशः संभाविता, पृथुला समझनी चाहिये अब उनके लक्षणों को कहते हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग–गीतयः

गीतयः पञ्च शुद्धा च भिन्ना गौरी च वेसरा ॥ २ ॥
साधारणीति,..................

(सं० रत्ना० २।१)

अन्वय—शुद्धा (स्त्री० १.१) भिन्ना (स्त्री० १.१) गौडी (स्त्री० १.१) वेसरा (स्त्री० १.१) साधारणी (स्त्री० १.१) इति (अ०) पञ्च (स्त्री० १.३) गीतयः (स्त्री० १.३) ।

अर्थ—शुद्धा, भिन्ना, गौडी, वेसरा तथा साधारणी—ये पाँच गीतियाँ हैं ।

रागालापः

ग्रहांशमन्द्रताराणां न्यासापन्यासयोस्तथा ॥ २३ ॥
अल्पत्वस्य बहुत्वस्य षाडवौडुवयोरपि ।
अभिव्यक्तिर्यत्र दृष्टा स रागालाप उच्यते ॥ २४ ॥

(सं० रत्ना० २।२) २३ उत्तरार्धं० २४

अन्वय—ग्रहांशमन्द्रताराणां (पुं० ६.३) न्यासापन्यासयोः (पुं० ६.२) तथा (अ०) अल्पत्वस्य (न० ६.१) बहुत्वस्य (न० ६.१) षाडवौडुवयोः (न० ६.२) अपि (अ०) यत्र (अ०) अभिव्यक्तिः (स्त्री०१.१) दृष्टा (स्त्री० १.१) सः (पुं० १.१) रागालापः (पुं० १.१) उच्यते ।

अर्थ—ग्रह-अंश-तार-मन्द्र की, न्यास तथा अपन्यास की, अल्पत्व तथाबहुत्व की, षाडव तथा औडव की जहाँ अभिव्यक्ति दिखाई दे, उसे रागालाप कहते हैं ।

वाग्गेयकार–लक्षणम्

वाङ् मातुरुच्यते गेयं धातुरित्यभिधीयते ।
वाच्यं गेयं च कुरुते यः स वाग्गेयकारकः ॥ २ ॥

शब्दानुशासनधानमभिज्ञानप्रवीणता ।
छन्दः प्रभेदवेदित्वमलंकारेषु कौशलम् ॥ ३ ॥

रसभावपरिज्ञानं देशस्थितिषु चातुरी ।
अशेषभाषाविज्ञानं कलाशास्त्रेषु कौशलम् ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तौर्यत्रितयचातुर्यं हृद्यशारीरशालिता ।
लयतालकलाज्ञानं विवेकोऽनेककाकुषु ॥ ५ ॥
प्रभूतप्रतिभोद्‌भेदभाक्त्वं सुभगगेयता ।
देशीरागेष्वभिज्ञानं वाक्पटुत्वं सभाजये ॥ ६ ॥
रोष (राग) द्वेषपरित्यागः सार्द्रत्वमुचितज्ञता ।
अनुच्छिष्टोक्तिनिर्बन्धो नूतनधातुविनिर्मितिः ॥ ७ ॥
परचित्तपरिज्ञानं प्रबन्धेषु प्रगल्भता ।
द्रुतगीतविनिर्माणं पदान्तरविदग्धता ॥ ८ ॥
त्रिस्थानगमकप्रौढिर्विविधालप्तिनैपुणम् ।
अवधानं गुणैरेभिर्वरो वाग्गेयकारकः ॥ ९ ॥

सं० र०ना० प्रकीर्णकाध्यायः भा० २, पृ० १४६

अन्वय—वाक् (स्त्री० १.१) मातुः (पु० १.१) उच्यते । गेयं (नपुं० १.१) धातुः (पुं० १.१) इति (अ०) अभिधीयते । यः (पुं० १.१) वाचं (स्त्री० २.१) गेयं (नपुं० २.१) च (अ०) कुरुते । सः (पुं० १.१) वाग्गेयकारकः (पुं० १.१) ॥ २ ॥

अर्थ—वाक् अर्थात् काव्य (पदरचना) को मातु कहते हैं एवं गेय अर्थात् गीत (स्वररचना) को धातु कहते हैं। पद रचना व स्वर रचना करने वाला व्यक्ति वाग्गेयकार कहलाता है।

अन्वय—शब्दानुशासनज्ञानम् (नपुं० १.१) अभिधानप्रवीणता (स्त्री० १.१) छन्दःप्रभेदवेदित्वं (न० १.१) अलंकारेषु (पुं० ७.३) कौशलम् (न० १.१) ॥ ३ ॥ रसभावपरिज्ञानं (न० १.१) देशस्थितिषु (स्त्री० ७.३) चातुरी (स्त्री० १.१) अशेषभाषाविज्ञानं (न० १.१) कलाशास्त्रेषु (न० ७.३) कौशलम् (न० १.१) ॥ ४ ॥ तौर्यत्रितय-चातुर्यं (न० १.१) हृद्यशारीरशालिता (स्त्री० १.१) लयतालकलाज्ञानं (न० १.१) विवेकोऽनेककाकुषु (स्त्री० ७.३) ॥ ५ ॥ प्रभूतप्रति-भोद्भेदभाक्त्वं (न० १.१) सुभगगेयता (स्त्री० १.१) देशीरागेषु (पुं० ७.३) अभिज्ञानं (न० १.१) वाक्पटुत्वं (न० १.१) सभाजये (पुं० ७.१) ॥ ६ ॥ रागद्वेषपरित्यागः (पुं० १.१) सार्द्रत्वम् (न० १.१) उचितज्ञता (स्त्री० १.१) अनुच्छिष्टोक्तिनिर्बन्धः (पुं० १.१) नूतन-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धातुविनिर्मितिः (स्त्री० १.१) ॥ ७ ॥ परचित्तपरिज्ञानं (न० १.१) प्रबन्धेषु (पुं० ७.३) प्रगल्भता (स्त्री० १.१) द्रुतगीतविनिर्माणं (नपुं० १.१) पदान्तरविदग्धता (स्त्री० १.१) ॥ ८ ॥ त्रिस्थान-गमकप्रौढिः (स्त्री० १.१) अवधानं विविधालप्तिनैपुणम् (नपुं० १.१) (नपुं० १.१) एभिः (पुं० ३.३) गुणैः (पुं० ३.३) [युक्तः] वरः (पुं० १.१) वाग्गेयकारकः (पुं० १.१) ॥ ७–९ ॥

अर्थ—[वाग्गेयकार में निम्नलिखित गुण होने चाहिये ।] व्याकरणशास्त्र का ज्ञान, अमरकोशादि ग्रन्थों का ज्ञान, सभी प्रकार के छंदों का ज्ञान, उपमादि समस्त अलंकारों में कौशल, शृङ्गारादि समस्त रस तथा विभावादि भावों का उत्तम ज्ञान, विभिन्न देशों की स्थिति अर्थात् रीति रिवाजों का ज्ञान, समस्त भाषाओं का ज्ञान, संगीतशास्त्र में प्रावीण्य, गीत—वाद्य और नृत्य में चातुर्य, रमणीय शारीर (कण्ठ) से युक्त, लय (द्रुतादि), ताल (चच्चत्पुटादि) तथा तालाध्याय में वर्णित (ध्रुव, आवाप इत्यादि सशब्द, निःशब्द) कलाओं का ज्ञान, अनेक काकुओं का ज्ञान ['काकु' पारिभाषिक शब्द है । जिसका अर्थ है ध्वनि का विकार । संगीत रत्नाकर में स्वरकाकु, रागकाकु, देशकाकु, क्षेत्रकाकु, अन्यरागकाकु, यंत्रकाकु ये छः भेद वर्णित हैं ।] विलक्षण प्रतिभा के उदय की योग्यता, सुखद गायन करने की शक्ति, देशी रागों का ज्ञान, सभा के बीच विजयश्री प्राप्त करने योग्य वाक्चातुर्य, रागद्वेष का परित्याग, सरसता, विवेक-पूर्णज्ञान, स्वतंत्र रचना करने की शक्ति, नवीन नवीन स्वररचना करने का ज्ञान, दूसरे के मन को जानने की शक्ति, एलादि प्रबन्धों का उत्तमज्ञान, शीघ्र गीत निर्माण करने की शक्ति, विभिन्न गीतों की छाया का अनुकरण करने का सामर्थ्य, तीनों स्थानों में गमक लेने की शक्ति, रागालप्ति व रूपकालप्ति में निपुणता, चित्त की एकाग्रता—इन गुणों से युक्त व्यक्ति उत्तम (श्रेष्ठ) वाग्गेयकार कहलाता है ।

शब्द—गुणाः

मृष्टो मधुरचेहालत्रिस्थानकसुखावहाः ।
प्रचुरः कोमलो गाढः श्रावकः करुणो घनः ॥ ६८ ॥
स्निग्धः श्लक्ष्णो रक्तियुक्तश्छविमानिति सूरिभिः ।
गुणैरेभिः पञ्चदशभेदः शब्दो निगद्यते ॥ ६९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रोत्रनिर्वापको मृष्टस्त्रिषु स्थानेष्वविस्तरः (स्थानेश्वनश्वरः)।
मधुरः कीर्तितस्तारः प्रौढो मधुररञ्जकः ॥ ७० ॥
नातिस्थूलो नातिकृशः स्निग्धश्चेहालको घनः।
आकुण्ठकुण्ठनं स स्यात् पुंसां स्त्रीणां तु सर्वदा ॥ ७१ ॥
त्रिषु स्थानेष्वेकरूपश्छविरक्त्यादिभिर्गुणैः।
त्रिस्थानो मनसो यस्तु सुखदः स सुखावहः ॥ ७२ ॥

सं. रत्ना. भा० २

श्रीशंकरप्रियेणोक्तः प्रचुरस्थूलतायुतः।
कोमलोऽन्वर्थनामैव कोकिलाध्वनिवन्मतः ॥ ७३ ॥
गाढस्तु प्रबलो दूरश्रवणाच्छ्रावको मतः।
करुणः श्रोतृचित्तस्य करुणारसदीपकः ॥ ७४ ॥
दूरश्रवणयोग्यस्तु घनोऽन्तःसारतायुतः।
अरूक्षो दूरसंश्राव्यो बुधैः स्निग्धो ध्वनिः स्मृतः ॥ ७५ ॥
श्लक्ष्णस्तु तैलधारावदच्छिद्रो धीरसंमतः।
अनुरक्तेस्तु जनको रक्तिमानभिधीयते ॥ ७६ ॥
धातुर्विमलकण्ठत्वाद्यः प्राज्ञैरुपलक्ष्यते।
उज्ज्वलोऽयमिति प्रोक्तश्छविमानिति स ध्वनिः ॥ ७७ ॥

सं. रत्ना. भा०२ पृ.१६५

अन्वय—मृष्टः (पुं० १.१) मधुर-चेहाल-त्रिस्थानक-सुखावहाः (पुं० १.३) प्रचुरः (पु० १.१) कोमलः (पुं० १.१) गाढः (पुं० १.१) श्रावकः (पुं० १.१) करुणः (पुं० १.१) घनः (पुं० १.१) स्निग्धः (पुं० १.१) श्लक्ष्णः (पुं० १.१) रक्तियुक्तः (पुं० १.१) छविमान् (पुं० १.१) इति (अ०) एभिः (पुं० ३.३) गुणैः (पुं० ३.३) [युक्तः] पञ्चदशभेदः (पुं० १.१) शब्दः (पुं० १.१) सूरिभिः (पुं० ३.३) निगद्यते ॥ ६८—६६ ॥

अर्थ—(१) मृष्ट, (२) मधुर (३) चेहाल (४) त्रिस्थानक (५) सुखावह (६) प्रचुर (७) कोमल (८) गाढ़ (९) श्रावक (१०) करुण (११) घन (१२) स्निग्ध (१३) श्लक्ष्ण (१४) रक्तियुक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१५) छविमान् (दीप्तिमान्)—ये पन्द्रह प्रकार के शब्द (कण्ठ) गुण विद्वानों ने बतलाये हैं।

अन्वय—श्रोत्रनिर्वापकः (पुं॰ १.१) मृष्टः (पुं॰ १.१) त्रिषु (न॰ ७.३) स्थानेषु (न॰ ७.३) अनश्वरः (पुं॰ १.१) मधुरः (पुं॰ १.१) कीर्तितः तारः (पुं॰ १.१) प्रौढः (पुं॰ १.१) मधुररञ्जकः (पुं॰ १.१) न (अ॰) अतिस्थूलः (पुं॰ १.१) न (अ॰) अतिकृशः (पुं॰ १.१) स्निग्धः (पुं॰ १.१) घनः (पुं॰ १.१) च (अ॰) चेहालकः (पुं॰ १.१) सः (पुं॰ १.१) पुंसाम् (पुं॰ ६.३) आकण्ठकुण्ठनं (न॰ १.१) स्यात्। स्त्रीणां (स्त्री॰ ६.३) तु (अ॰) सर्वदा (अ॰)।

अर्थ—कर्ण को आनन्द देने वाला (शब्द गुण) 'मृष्ट' है। तीनों स्थानों में नष्ट न होने वाला 'मधुर' कहलाता है। तार, प्रौढ़, मधुररञ्जक, न अतिस्थूल, न अति कृश, स्निग्ध, घन, 'चेहालक' है। वह (चेहालक) पुरुषों में कण्ठ फूटने तक तथा स्त्रियों में सदा विद्यमान रहता है।

अन्वय—त्रिषु (न॰ ७.३) स्थानेषु (न॰ ७.३) एकरूपश्छविरक्त्यादिभिः गुणैः (पुं॰ ३.३) त्रिस्थानः (पुं॰ १.१) यः (पुं॰ १.१) तु (अ॰) मनसः (न॰ ६.१) सुखदः (पुं॰ १.१) सः (पुं॰ १.१) सुखःवह (पुं॰१.१) ॥ ७२ ॥

अर्थ—तीनों स्थानों में एकरूप, छवि, रक्ति आदि गुणों से युक्त होने पर वह (शब्द गुण) त्रिस्थान कहलाता है। मन को सुख देने वाला (गुण) 'सुखावह' है।

अन्वय—श्रीशंकरप्रियेण (पुं॰ ३.१) स्थूलतायुतः (पुं॰ १.१) प्रचुरः (पुं॰१.१) उक्तः (पुं॰ १.१) काकिलाध्वनिवन्मतः (पुं॰१.१) अन्वर्थनामा (पुं॰१.१) एव (अ॰) कोमलः (पुं॰ १.१) ॥ ७३ ॥

अर्थ—श्रीशंकरप्रिय शार्ङ्गदेव ने स्थूलता से युक्त कण्ठ ध्वनि को 'प्रचुर' कहा है। कोयल की ध्वनि के समान ही अन्वर्थनाम वाली (सार्थक) ध्वनि 'कोमल' कहलाती है।

अन्वय—प्रबलः (पुं॰ १.१) गाढः (पुं॰ १.१) तु (अ॰) दूरश्रवणाद् (न॰ ५.१) श्रावकः (पुं॰ १.१) मतः (पुं॰ १.१) श्रोतृचित्तस्य (न॰ ६.१) करुणरसदीपकः (पुं॰ १.१) करुणः (पुं॰ १.१) ॥७४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ—प्रबलता से प्रसारित होती हुई जो (ध्वनि) सुनाई पड़ती है उसे 'गाढ़' कहते हैं। दूर से सुनाई पड़ने वाली ध्वनि 'श्रावक' है। श्रोताओं के चित्त में करुण रस को उद्दीप्त करने वाली ध्वनि 'करुण' है।

अन्वय—दूरश्रवणयोग्यः (पुं० १.१) तु (अ०) अन्तःसारतायुतः (पुं०१.१) घनः (पुं० १.१), अरूक्षः (पुं०१.१) दूरसंश्राव्यः (पुं० १.१) ध्वनिः (पुं० १.१) बुधैः (पुं० ३.३) स्निग्धः (पुं० १.१) स्मृतः (पुं० १.१) ॥ ७५ ॥

अर्थ—दूर तक श्रवण योग्य तथा अन्तःसारता से युक्त ध्वनि 'घन' कहलाती है। दूर से सुनाई पड़ने वाली रूक्षता से हीन ध्वनि को बुद्धिमानों ने 'स्निग्ध' कहा है।

अन्वय—तैलधारावत् (अ०) अच्छिद्रः (पुं० १.१) [कण्ठगुणः] धीरसंमतः (पुं० १.१) श्लक्ष्णः (पुं० १.१) अनुरक्तेः (स्त्री. ६.१) तु (अ०) जनकः (पुं० १.१) रक्तिमान् (पुं १.१) अभिधीयते ॥ ७६ ॥

अर्थ—तेल की धारा के समान बीच में न टूटने वाले कण्ठ—गुण को धीरों की संमति में श्लक्ष्ण तथा अनुरक्ति को उत्पन्न करने वाले (शब्द गुण) को रक्तिमान् कहा गया है।

अन्वय—विमलकण्ठत्वात् (नपुं० ५.१) यः (पुं० १.१) धातुः (पुं० १.१) प्राज्ञैः (पुं० ३.३) उज्ज्वलः (पुं० १.१) अयम् (पुं० १.१) इति (अ०) उपलक्ष्यते। सः (पुं० १.१) ध्वनिः (पुं० १.१) छविमान् (पुं० १.१) इति (अ०) प्रोक्तः (पुं० १.१)।

अर्थ—विमल कण्ठ से गायी हुई जो गेय रचना विद्वानों के द्वारा उज्ज्वल कही गयी है उस (उज्वल) ध्वनि को छविमान् कहा गया है।

शब्द—दोषाः

रूक्षस्फुटितनिःसारकाकोलीकेटिकेणयः ।
कृशो भग्न इति प्रोक्ता दुष्टस्याष्टौ भिदा ध्वनेः ॥ ७८ ॥

रूक्षः स्निग्धत्वनिर्मुक्तः स्फुटितोऽन्वर्थनामकः ।
एरण्डकाण्डनिःसारो निःसार इति कीर्तितः ॥ ७९ ॥

काकोलिकाख्यः काकोलकुलनिर्घोषनिष्ठुरः ।
स्थानत्रयव्याप्तियुक्तो निर्गुणः केटिरुच्यते ॥ ८० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृच्छ्रोन्मीलन्मन्द्रतारः केणिरित्यभिधीयते ।
अतिसूक्ष्मः कृशो भग्नः खरोष्ट्रध्वनिनीरसः ॥ ८१ ॥

सं. रत्ना. भा. २ पृ. १६५ ।

अन्वय—रूक्षस्फुटितनिःसारकाकोलीकेटिकेणयः (पुं० १.३) कृशः (पुं० १.१) भग्नः (पुं० १.१) इति (अ०) दुष्टस्य (पुं० ६.१) ध्वनेः (पुं० ६.१) अष्टौ (पुं० १.३) भेदाः (पुं० १.३) प्रोक्ताः (पुं० १.३) ॥ ७८ ॥

अर्थ—(१) रूक्ष (२) स्फुटित (३) निःसार (४) काकोली (५) केटि (६) केणि (७) कृश तथा (८) भग्न—ये दोषयुक्त ध्वनि के आठ भेद कहे गये हैं ।

अन्वय—स्निग्धत्वनिर्मुक्तः (पुं० १.१) रूक्षः (पुं० १.१) अन्वर्थनामकः (पुं० १.१) स्फुटितः (पुं० १.१) एरण्डकाण्डनिस्सारः (पुं० १.१) निस्सारः (पुं० १.१) इति (अ०) कीर्तितः (पुं० १.१) ॥ ७९ ॥

अर्थ—स्निग्धता से हीन ध्वनि 'रूक्ष' है । 'स्फुटित' अन्वर्थक है । जो ध्वनि भग्न हुई सी प्रतिभासित हो वह 'स्फुटित' है । एरण्ड के बीज के सदृश भीतर से खोखली ध्वनि 'निस्सार' कहलाती है ।

अन्वय—काकोलकुलनिर्घोषनिष्ठुरः (पुं० १.१) काकोलिकाख्यः (पुं० १.१) स्थानत्रयव्याप्तियुक्तः (पुं० १.१) निर्गुणः (पुं० १.१) केटिः (पुं० ११.) उच्यते ॥ ८० ॥

अर्थ—कौवे के शब्द के समान कर्कश ध्वनि को काकोलि संज्ञा दी है । त्रिस्थान (मन्द्र, मध्य, तार) में व्याप्त होने पर भी जिसमें माधुर्यादिगुण न हों उसे 'केटि' कहते हैं ।

अन्वय—कृच्छ्रोन्मीलन्मन्द्रतारः (पुं १.१) केणिः (पुं० १.१) इति (अ०) अभिधीयते । अतिसूक्ष्मः (पुं० १.१) कृशः (पुं० १.१) खरोष्ट्रध्वनिनीरसः (पुं० १.१) भग्नः (पुं० १.१) ॥ ८१ ॥

अर्थ—अत्यन्त कठिनाई से तार तथा मन्द्र में व्याप्त होने वाली ध्वनि को केणि, अतिसूक्ष्म को कृश तथा गर्दभ और ऊँट के समान नीरस ध्वनि को 'भग्न' कहा गया है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आतोद्य (वाद्य)-भेदाः

चतुर्विधं च विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम् ॥ १ ॥
ततं तन्त्रीगतं ज्ञेयमवनद्धं तु पौष्करम् ।
घनस्तु तालो विज्ञेयः सुषिरो वंश एव च ॥ २ ॥

ना० शा० (२८।२-२।३१६)

अन्वय—चतुर्विधं (न० १.१) आतोद्यं (न० १.१) लक्षणान्वितं (न० १.१) विज्ञेयम् । तन्त्रीगतं (न० १.१) ततं (न० १.१) ज्ञेयं (न० १.१) पौष्करम् (न० १.१) अवनद्धं (न० १.१) तु (अ०) [ज्ञेयम्] घनः (पुं० १.१) तु (अ०) तालः (पुं० १.१) विज्ञेयः । वंशः (पुं० १.१) सुषिरः (पुं० १.१) एव च (अ०) ।

अर्थ—चार प्रकार के वाद्यों को लक्षण-सहित जानना चाहिये । तंत्री से युक्त वाद्य तत, पुष्कर से निर्मित (चमड़े से मढ़े हुये) वाद्य अवनद्ध, तालोपयोगी वाद्य घन तथा वंश (बाँस) से निर्मित (छिद्रयुक्त) वाद्य सुषिर कहलाते हैं ।

वृत्तलक्षणम्

छन्दोयुक्तं समासेन निबद्धं वृत्तमिष्यते ।
नानावृत्तविनिष्पन्ना शब्दस्यैषा तनुस्स्मृता ॥ ३९ ॥
छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति नच्छन्दश्शब्दवर्जितम् ।

ना० शा० १५ पृ० १७२

अन्वय—समासेन (पुं० ३.१) निबद्धं (नपुं० १.१) छन्दोयुक्तं (न० १.१) वृत्तम् (नपुं० १.१) इष्यते । नानावृत्तविनिष्पन्ना (स्त्री० १.१) शब्दस्य (पुं० ६.१) एषा (स्त्री० १.१) तनुः (स्त्री० १.१) स्मृता (स्त्री० १.१) । शब्दः (पुं० १.१) छन्दोहीनः (पुं० १.१) न (अ०) अस्ति [तथा] छन्दः (नपुं० १.१) शब्दवर्जितं (नपुं० १.१) न (अ०) [अस्ति] ।

अर्थ—संक्षिप्त रूप से निबद्ध तथा छन्दोयुक्त को वृत्त कहते हैं । अनेक वृत्तों से निष्पन्न हुआ शब्द का यह शरीर कहा गया है । शब्द छन्द से हीन नहीं होता और छन्द शब्द से हीन नहीं होता ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाट्यवेद-निर्माणेतिहासः

धर्म्यमर्थ्यं यशस्यं च सोपदेशं ससंग्रहम् ।
भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम् ।। १४ ।।

सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं सर्वशिल्पप्रदर्शकम् ।
नाट्यसंज्ञमिमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम् ।। १५ ।।

एवं सङ्कल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन् ।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम् ।। १६ ।।

(ना० शा० १)

अन्वय—धर्म्यम् (पुं० २.१) अर्थ्यं (पुं० २.१) यशस्यं (पुं० २.१) च (अ) सोपदेशं (पुं २.१) ससंग्रहं (पुं० २.१) भविष्यतः (पुं० ६.१) लोकस्य (पुं० ६.१) च (अ०) सर्वकर्मानुदर्शकं (पुं० २.१) सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं (पुं २.१) सर्वशिल्पप्रदर्शकम् (पुं० २.१) सेतिहासं (पुं० २.१) नाट्यसंज्ञं (पुं० २.१) इमं (पुं० २.१) वेदं (पुं० २.१) अहं (१.१) करोमि ।

अर्थ—धर्म, अर्थ तथा यश से युक्त, उपदेश तथा संग्रह से युक्त, भावी लोगों के लिये समस्त कर्मों का पथप्रदर्शक, सभी शास्त्रों के अर्थों से परिपूर्ण और सभी शिल्पों को प्रदर्शित करने वाले इतिहास से युक्त नाट्य-संज्ञक इस वेद की मैं रचना करता हूँ ।

अन्वय—एवं (अ०) संकल्प्य (अ०) भगवान् (पुं० १.१) सर्वान् (पुं० २.३) वेदान् (पुं० २.३) अनुस्मरन् (पुं० १.१) चतुर्वेदाङ्गसम्भवं (पुं० २.१) ततः (अ०) नाट्यवेदं (पुं० २.१) चक्रे ।

अर्थ—इसप्रकार का संकल्प करके भगवान् ब्रह्मा ने तब सभी वेदों का स्मरण करते हुए चारों वेदों से उत्पन्न होने वाले नाट्य वेद की रचना की ।

नाट्य-नृत्य-नृत्त-लक्षणम्

अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते ।
रूपकं तत्समारोपाद् दशधैव रसाश्रयम् ।। ७ ।।
अन्यद्भावाश्रयं नृत्यं नृत्तं ताललयाश्रयम् ।
आद्यं पदार्थाभिनयो मार्गो, देशी तथा परम् ।। ९ ।।

(दशरूपकम् १)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्वय—अवस्थानुकृतिः (स्त्री० १.१) नाट्यं (न० १.१) [तत्] दृश्यतया (स्त्री० ३.१) रूपं (न० १.१) उच्यते। तत् (न० १.१) समारोपात् (पुं० ५.१) रूपकं (न० १.१), रसाश्रयम् (न० १.१) दशधा (अ०) [भवति] ॥ ७ ॥

अर्थ—(आङ्गिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्त्विक इन चार प्रकार के अभिनयों द्वारा) अवस्था के अनुकरण को नाट्य कहते हैं। दृश्य होने के कारण उसे रूप कहते हैं। आरोप होने के कारण वह रूपक भी है। रस का आश्रय (नाट्य) दस प्रकार का है।

अन्वय—भावाश्रयं (न० १.१) नृत्यं (न० १.१) तालयाश्रयं (न० १.१) नृत्तं (न० १.१) अन्यत् (न० १.१) आद्यं (न० १.१) पदार्थाभिनयः (पुं० १.१) मार्गः (पुं० १.१) तथा (अ०) परं (न० १.१) देशी (पुं १.१) [इति उच्यते] ॥ ६ ॥

अर्थ—भाव के आश्रित नृत्य है और ताल तथा लय के आश्रित नृत्त (उससे) भिन्न है। (इनमें से) प्रथम (नृत्य) पदार्थाभिनयात्मक (है) (वह) मार्ग कहलाता है तथा दूसरा (नृत्त) देशी कहलाता है।

नाट्यस्य सर्वग्राहि-स्वरूपम्

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ॥ ११३ ॥
सर्वशास्त्राणि शिल्पानि कर्माणि विविधानि च।
अस्मिन्नाट्ये समेतानि तस्मादेतन्मया कृतम् ॥ ११४ ॥

(नाट्यशास्त्र १)

अन्वय—न(अ०)तत् (न०१.१) ज्ञानं (न०१.१) न (अ०)तत्(न०१.१)शिल्पं(न०१.१) न (अ०)सा (स्त्री०१.१) विद्या (स्त्री०१.१) न (अ०) सा (स्त्री० १.१) कला (स्त्री०१.१) न (अ०) सः (पुं०१.१) योगः (पुं०१.१) न (अ०) तत् (न० १.१) कर्म (न० १.१) यत् (न० १.१) अस्मिन् (न० ७.१) नाट्ये (न० ७.१) न (अ०) दृश्यते।

अर्थ—ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग तथा कर्म नहीं है जो इस नाट्य में न दिखलाई दे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्वय—अस्मिन् (न० ७.१) नाट्ये (न० ७.१) सर्वशास्त्राणि (न० १.३) शिल्पानि (न० १.३) विविधानि कर्माणि (न० १.३) च (अ०) समेतानि (न० १.३) [सन्ति] तस्मात् (न० ५.१) एतत् (न० १.१) मया (३.१) कृतम् (न० १.१) ।

अर्थ—इस नाट्य में सभी शास्त्रों, शिल्पों, और विविध प्रकार के कर्मों का समावेश रहता है। इसीलिये (उसका महत्त्व बतलाने के लिये) मैंने इस (नाट्य) की रचना की।

नाट्यस्य प्रयोजनम्

विनोदजननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति।
श्रुतिस्मृतिसदाचारपरिशेषार्थकल्पनम् ॥ ११७ ॥

नाट्य-स्वरूपम्

देवतानामृषीणां च राज्ञामथ कुटुम्बिनाम्।
कृतानुकरणं लोके नाट्यमित्यभिधीयते ॥ ११८ ॥

(नाट्यशास्त्र १)

अन्वय—काले (पु० ७.१) एतत् (न० १.१) नाट्यं (न० १.१) विनोदजननं (न० १.१) श्रुति-स्मृति-सदाचार-परिशेषार्थकल्पनम् (न० १.१) भविष्यति ।

अर्थ—यह नाट्य सुअवसर पर विनोद-जनक, (होगा) श्रुति, स्मृति, सदाचार और इनके अतिरिक्त अन्य अर्थ की भी कल्पनाओं को करने वाला होगा।

अन्वय—देवतानाम् (स्त्री० ६.३) ऋषीणां (पु० ६.३) च (अ०) राज्ञाम् (पु० ६.३) अथ (अ०) कुटुम्बिनाम् (पु० ६.३) कृतानुकरणं (न० १.१) लोके (पु० ७.१) नाट्यम् (न० १.१) इति (अ०) अभिधीयते ।

अर्थ—देवता, ऋषि, राजा, तथा कुटुम्बियों की कृति के (रसपूर्ण) अनुकरण को लोक में नाट्य शब्द से कहा जाता है।

रस-स्थायिभाव-व्यभिचारिभाव-नामानि

शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः ॥ १५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः ॥ १७ ॥
निर्वेदग्लानिशङ्काख्यास्तथासूयामदश्रमाः।
आलस्यं चैव दैन्यं च चिन्ता मोहः स्मृतिर्धृतिः ॥ १८ ॥
व्रीडा चपलता हर्ष आवेगो जडता तथा।
गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्रापस्मार एव च ॥ १९ ॥
सुप्तं प्रबोधोऽमर्षश्चाप्यवहित्थमथोग्रता।
मतिर्व्याधिरथोन्मादस्तथा मरणमेव च ॥ २० ॥
त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः।
त्रयस्त्रिंशदमी भावाः समाख्यातास्तु नामतः ॥ २१ ॥

ना० शा० ६।१५–२१।

अन्वय—शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः (पुं० १.३) बीभत्साद्भुतसंज्ञौ (पुं० १.२) च (अ०) इति (अ०) अष्टौ (पुं० १.३) रसाः (पुं० १.३) नाट्ये (न० ७.१) स्मृताः (१.३) ॥ १५ ॥

अर्थ—शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स तथा अद्भुत ये आठ रस नाट्य में कहे गये हैं।

अन्वय—रतिः (स्त्री० १.१) हासः (पुं० १.१) शोकः (पुं० १.१) च (अ०) क्रोधोत्साहौ (पुं० १.२) भयं (न० १.१) तथा (अ०) जुगुप्सा (स्त्री० १.१) विस्मयः (पुं० १.१) च (अ०) इति (अ०) स्थायिभावाः (पुं० १.३) प्रकीर्तिताः (पुं० १.३) सन्ति ॥ १७ ॥

अर्थ—रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, तथा विस्मय ये स्थायी भाव कहलाते हैं।

अन्वय—निर्वेदग्लानिशङ्काख्याः (पुं० १.३) तथा (अ०) असूयामदश्रमाः (पुं० १.३) आलस्यं (न० १.१) च एव (अ०) दैन्यं (न० १.१) चिन्ता (स्त्री० १.१) मोहः (पुं० १.१) स्मृतिः (स्त्री० १.१) धृतिः (स्त्री० १.१) ॥ १८ ॥

व्रीडा (स्त्री० १.१) चपलता (स्त्री० १.१) हर्षः (पुं० १.१) आवेगः (पुं० १.१) जड़ता (स्त्री० १.१) तथा (अ०) गर्वः (पुं० १.१) विषादः (पुं० १.१) औत्सुक्यं (न० १.१) निद्रा (स्त्री० १.१) अपस्मारः (पुं० १.१) एव च (अ०) ॥ १९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुप्तं (न० १.१) प्रबोधः (पुं० १.१) अमर्षः (पुं० १.१) च (अ०) अपि (अ०) अवहित्थं (न० १.१) अथ (अ०) उग्रता (स्त्री० १.१) मतिः (स्त्री० १.१) व्याधिः (पुं० १.१) अथ (अ०) उन्मादः (पुं० १.१) तथा (अ०) मरणं (न० १.१) एव च (अ०) ॥ २० ॥

त्रासः (पुं० १.१) च (अ०) एव (अ०) वितर्कः (पुं० १.१) च (अ०) व्यभिचारिणः (पुं० १.३) विज्ञेयाः (पुं० १.३) अमी (पुं० १.३) त्रयस्त्रिंशत् (पुं० १.३) भावाः (पुं० १.३) तु (अ०) नामतः (अ०) समाख्याताः (पुं० १.३) ॥ २१ ॥

अथ—निर्वेद (विरक्ति) ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य (दीनता), चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, व्रीडा (लज्जा), चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, सुप्त, प्रबोध, अमर्ष, अवहित्थ (लज्जा से मनोभाव का गोपन करना), उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास, वितर्क, ये तैंतीस व्यभिचारी भाव नाम से गिनाये गये हैं।

सात्त्विक–भावाः

स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरसादोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः ॥ २२ ॥

अभिनय–भेदाः

आङ्गिको वाचिकश्चैव आहार्यः सात्त्विकस्तथा।
चत्वारोऽभिनया ह्येते विज्ञेया नाट्यसंश्रयाः ॥ २३ ॥

नाट्यवृत्तयः

भारती सात्त्वती चैव कैशिक्यारभटी तथा।
चतस्रो वृत्तयो ह्येता यासु नाट्यं प्रतिष्ठितम् ॥ २४ ॥

नाट्यप्रवृत्तयः

अवन्ती दाक्षिणात्या च तथा चैवोड्रमागधी।
पाञ्चाली मध्यमा चैव ज्ञेया नाट्यप्रवृत्तयः ॥ २५ ॥

न० शा० ६।२२–२५–।७०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्वय—स्तम्भः (पुं० १.१) स्वेदः (पुं० १.१) अथ (अ०) रोमाञ्चः (पुं० १.१) स्वरसादः (पुं० १.१) अथ (अ०) वेपथुः (पुं०१.१) वैवर्ण्यम् (न० १.१) अश्रु (नं० १.१) प्रलयः (पुं० १.१) इति (अ०) अष्टौ (पुं० १.३) सात्त्विकाः (पुं० १.३) स्मृताः (पुं० १.३) ॥ २२ ॥

अर्थ—स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरसाद = स्वरभङ्ग (गला रूंध जाना) वेपथु, (कम्पन) वैवर्ण्य (चेहरे का रंग बदल जाना,) अश्रु, प्रलय, (मूर्च्छा) ये आठ सात्त्विक भाव कहलाते हैं।

अन्वय—आङ्गिकः (पुं० १.१) वाचिकः (पुं० १.१) च एव (अ०) हि (अ०) आहार्यः (पुं० १.१) तथा (अ०) सात्त्विकः (पुं०१.१) नाट्यसंश्रयाः (पुं० १.३) एते (पुं० १.३) हि (अ०) चत्वारः (पुं० १.३) अभिनयाः (पुं० १.३) विज्ञेयाः (पुं० १.३) ॥ २३ ॥

अर्थ—आङ्गिक, वाचिक, आहार्य, तथा सात्त्विक, नाट्य में स्थित ये चार प्रकार के अभिनय हैं।

अन्वय—भारती (स्त्री० १.१) सात्त्वती (स्त्री० १.१) च एव (अ०) कैशिकी (स्त्री० १.१) तथा (अ०) आरभटी (स्त्री० १.१) एताः (स्त्री० १.३) हि (अ०) चतस्रः (स्त्री० १.३) वृत्तयः (स्त्री० १.३) यासु (स्त्री० ७.३) नाट्यं (न० १.१) प्रतिष्ठितम् (न० १.१)।

अर्थ—भारती, सात्त्वती, कैशिकी, तथा आरभटी ये चार वृत्तियाँ हैं; जिन पर नाट्य प्रतिष्ठित है।

अन्वय—अवन्ती (स्त्री० १.१) दाक्षिणात्या (स्त्री० १.१) च तथा (अ०) उड्रमागधी (स्त्री० १.१) च एव (अ०) पांचाली (स्त्री० १.१) मध्यमा (स्त्री० १.१) च एव (अ०) नाट्यप्रवृत्तयः (स्त्री० १.३) ज्ञेयाः (स्त्री० १.३)।

अर्थ—अवन्ती, दाक्षिणात्या, उड्रमागधी, पाञ्चाली, मध्यमा ये (पांच प्रकार की) नाट्य की प्रवृत्तियाँ समझनी चाहिये।

रस—निरूपणम्

न हि रसादृते कश्चिदप्यर्थः प्रवर्तते। विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः। को वा दृष्टान्त इति चेत्–उच्यते, यथा नानाव्यञ्जनौषधिद्रव्य-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संयोगाद्रसनिष्पत्तिः, तथा नानाभावोपगमाद्रसनिष्पत्तिः। यथा गुडादिभिर्द्रव्यै-र्व्यञ्जनैरोषधीभिश्च षड्रसा निर्वर्त्यन्ते, एवं नानाभावोपहिता अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्ति। ऋषय ऊचुः। रस इति कः पदार्थः? अत्रोच्यते। आस्वाद्यत्वात्। कथमास्वाद्यो रसः? अत्रोच्यते। यथा हि नानाव्यञ्जन-संस्कृतमन्नं भुञ्जाना रसानास्वादयन्ति सुमनसः पुरुषा हर्षादींश्चाप्यधिगच्छन्ति तथा नाना भावाभिनयव्यञ्जितान् वागङ्गसत्त्वोपेतान् स्थायिभावानास्वादयन्ति सुमनसः प्रेक्षकाः। तस्मात् नाट्यरसा इति व्याख्याताः। अत्रानुवंश्यौ श्लोकौ भवतः।

यथा बहुद्रव्ययुतैर्व्यञ्जनैर्बहुभिर्युतम्।
आस्वादयन्ति भुञ्जाना भुक्तं [1]भुक्त[2]विदो जनाः॥ ३२॥

भावाभिनयसंयुक्ताः स्थायिभावास्ततो बुधाः।
आस्वादयन्ति मनसा तस्मान्नाट्यरसाः स्मृताः॥ ३३॥

१ भक्तं २ भक्तविदो — ना० शा० ६।७१। ग० + ३३ श्लोक

अन्वय--रसात् (पुं० ५.१) ऋते (अ०) कः (पुं० १.१) चि (अ०) अपि (अ०) अर्थः (पुं० १.१) न (अ०) प्रवर्त्तते। विभाव-अनुभाव-व्यभिचारिसंयोगात् (पुं० ५.१) रसनिष्पत्तिः (स्त्री० १.१)। कः (पुं० १.१) वा (अ०) दृष्टान्तः (पु० १.१) इति (अ०) चेत् (अ०) उच्यते। यथानानाव्यञ्जनौष-धिद्रव्यसंयोगात् (पुं० ५.१) रसनिष्पत्तिः (स्त्री० १.१)। यथा (अ०) गुडादिभिः (पु० ३.३) द्रव्यैः (न० ३.३) व्यञ्जनैः (न० ३.३) ओषधीभिः (स्त्री० ३.३) च (अ०) षट् (पुं० १.३) रसाः (पुं० १-३) निर्वर्त्यन्ते। एवं (अ०) नानाभावोपहिताः (पुं० १.३) अपि (अ०) स्थायिनः (पुं० १.३) भावाः (पुं० १.३) रसत्वम् (न० १.१) आप्नुवन्ति। ऋषयः (पुं० १.३) ऊचुः। रसः (पुं० १.१) इति (अ०) कः (पुं० १.१) पदार्थः (पुं० १.१)। अत्र (अ०) उच्यते। आस्वाद्यत्वात् (न० ५.१) कथम् (अ०) आस्वाद्यः (पुं० १.१) रसः (पुं० १.१)। अत्र (अ०) उच्यते। यथा हि (अ०) नानाव्यञ्जन-संस्कृतम् अन्नं (न० २.१) भुञ्जानाः (पुं० १.३) रसान् (पुं० २.३) आस्वादयन्ति। सुमनसः (पुं० १.३) पुरुषाः (पुं० १.३) हर्षादीन् (पुं० २.३) च अपि (अ०) अधिगच्छन्ति। तथा (अ०) नानाभावाभि-नयव्यञ्जितान् (पुं० २.३) वागङ्गसत्त्वोपेतान् (पुं० २.३) स्थायि-भावान् (पुं० २.३) सुमनसः (पुं० १.३) प्रेक्षकाः (पुं० १.३)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आस्वादयन्ति । तस्मात् (पुं० ५.१) नाट्यरसाः (पुं० १.३) इति (अ०) व्याख्याताः । अत्र (अ०) आनुवंश्यौ (पुं० १.४) श्लोकौ (पुं० १.२) भवतः । यथा (अ०) बहुद्रव्ययुतैः (नपुं० ३.३) बहुभिः (न० ३.३) व्यञ्जनैः (न० ३.३) युतम् (न० २.१) भक्तं (न० २.१) भुञ्जानाः (पुं० १.३) भक्तविदः (पुं० १.३) जनाः (पुं० १.३) आस्वादयन्ति ॥ ३२ ॥ ततः (अ०) भावाभिनयसंयुक्ताः (पुं० १.३) स्थायिभावाः (पुं० १.३) मनसा (न० ३.१) बुधाः (पुं० १.३) आस्वादयन्ति । तस्मात् (पुं० ५.१) नाट्यरसाः (पुं० १.३) स्मृताः (पुं० १.३) ॥ ३३ ॥

अर्थ—रस के विना कोई भी अर्थ सिद्ध नहीं होता (इसलिये सर्व प्रथम रस का ही निरूपण करेंगे) विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है । (रस निष्पत्ति प्रक्रिया में) दृष्टान्त क्या है ? (उत्तर रूप में) कहते हैं कि-जिस प्रकार नाना व्यञ्जन, औषधि, द्रव्य आदि के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है । (उसी प्रकार [विभावादि] नाना भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है) जिस प्रकार गुड आदि द्रव्य, व्यञ्जन तथा औषधि आदि के संयोग से छः रस उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार नाना भावों (विभाव–अनुभाव आदि) से युक्त स्थायिभाव रसत्व को प्राप्त करते हैं । ऋषियों ने प्रश्न किया कि रस कौन सा पदार्थ है ? ('रस' को रस इस नाम से क्यों कहते हैं ?)

(उत्तर रूप में) कहते हैं आस्वाद्यमान होने से (रस को 'रस' नाम से कहा जाता है ।)

(प्रश्न) रस का आस्वादन किस प्रकार किया जाता है [इसका उत्तर देते हैं कि] जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यञ्जनों से परिष्कृत अन्न को भक्षण करते हुए सहृदय व्यक्ति रसों का आस्वादन कर आनन्द को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार अनेक भावों और अभिनयों से व्यक्त वाक् (वाचिक) अङ्ग (आङ्गिक) सत्व (सात्विक) से युक्त स्थायीभावों का सहृदय प्रेक्षक आस्वादन करते हैं । इस प्रकार नाट्यगत रसों की व्याख्या की गयी । इस विषय में वंश परम्परा (शिष्याचार्य परम्परा) से प्राप्त दो श्लोक हैं— जिस प्रकार अनेक द्रव्यों तथा व्यञ्जनों के सहित चावल (भात) खाते हुए भक्तविद् जन (अर्थात् चावल (भात) के विशेषज्ञ) आनन्द लेते हैं ॥ ३२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसीप्रकार भाव तथा अभिनय से युक्त स्थायी भावों का मन से बुधजन आस्वादन करते हैं इसलिये वे नाट्य के रस कहे गये हैं।

भाव—निरूपणम्

वागङ्गसत्त्वोपेतान् काव्यार्थान् भावयन्तीति भावाः। लोकेऽपि सिद्धं अहो ह्यन्योन्यगन्धेन रसेन वा सर्वमेव भावितम्।

विभावेनाहृतो योऽर्थस्त्वनुभावेन गम्यते।
वागङ्गसत्त्वाभिनयैः स भाव इति संज्ञितः॥ १॥

वागङ्गमुखरागैश्च सत्त्वेनाभिनयेन च।
कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते॥ २॥

नानाभिनयसम्बन्धान् भावयन्ति रसानिमान्।
यस्मात्तस्मादमी भावा विज्ञेया नाट्ययोक्तृभिः॥ ३॥

विभाव इति कस्मादुच्यते। विभावो विज्ञानार्थः। विभावः कारणं निमित्तं हेतुरिति पर्यायाः। विभाव्यन्तेऽनेन वागङ्गसत्त्वाभिनया इति विभावः। यथा विभावितं विज्ञातमित्यर्थान्तरम्।

ना० शास्त्र ७.७६—८०।१—३

अन्वय—वागङ्गसत्त्वोपेतान् (पुं० २.३) काव्यार्थान् (पुं० २.३) भावयन्ति। इति (अ०) भावाः (पुं० १.३) लोके (पुं ७.१) अपि (अ०) सिद्धम् (न० १.१) अहो (अ०) हि (अ०) अन्योन्यगन्धेन (पुं ३.१) रसेन (पुं० ३.१) वा (अ०) सर्वम् (न० १.१) एव (अ०) भावितम् (न० १.१)।

वागङ्गसत्त्वाभिनयैः (पुं० ३.३) यः (पुं० १.१) अर्थः (पुं० १.१) विभावेन (पुं० ३.१) आहृतः (पुं० १.१) अनुभावेन (पुं० ३.१) गम्यते सः (पुं० १.१) भावः (पुं० १.१) इति (अ०) संज्ञितः (पुं० १.१) ॥ १ ॥

वागङ्गमुखरागैः (पुं० ३.३) च (अ०) सत्वेन (न० ३.१) अभिनयेन (पुं० ३.१) च (अ०) कवेः (पुं० ६.१) अन्तर्गतं (पुं० २.१) भावं (पुं० २.१) भावयन् (पुं० १.१) भावः (पुं० १.१) उच्यते ।॥२॥ यस्मात् (पुं० ५.१) नानाभिनयसम्बन्धान् (पुं० २.३) इमान् (पुं० २.३) रसान् (पुं० २.३) भावयन्ति। तस्मात् (पुं० ५.१)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाट्ययोक्तृभिः (पुं० ३.३) अमी (पुं० १.३) भावाः (पुं० १.३) विज्ञेयाः (पुं० १.३) ॥ ३ ॥

विभावः (पुं० १.१) इति (अ०) कस्मात् (पुं० ५.१) उच्यते ? विभावः (पुं० १.१) विज्ञानार्थः (पुं० १.१) । विभावः (पुं० १.१) कारणम् (न० १.१) निमित्तम् (न० १.१) हेतुः (पुं० १.१) इति (अ०) पर्यायाः (पुं० १.३) । वागङ्गसत्त्वाभिनयाः (पुं० १.३) अनेन (पुं० ३.१) विभाव्यन्ते, इति (अ०) विभावः (पुं० १.१) । यथा (अ०) विभावितम् (न० १.१) विज्ञातम् (न० १.१) इति (अ०) अर्थान्तरम् (न० १.१)

अर्थ—वाक् (वाणी) अङ्ग (शरीर के अवयव) तथा सत्त्व (सात्त्विक भावों) से युक्त काव्यार्थ को प्रकट करते हैं इसलिये भाव कहे जाते हैं । यह लोक-व्यवहार में भी प्रसिद्ध है कि एक दूसरे के गन्ध अथवा रस से सब कुछ कैसे सुवासित अथवा भावित हो गया है ।

वाचिक, आङ्गिक तथा सात्त्विक अभिनय की सहायता से विभाव के द्वारा आचरण किया हुआ और अनुभाव के द्वारा बोधन किया हुआ जो अर्थ है उसे भाव की संज्ञा दी गयी है ॥ १ ॥

वाचिक, आङ्गिक, मुखरागात्मक तथा सात्त्विक अभिनय के द्वारा कवि के हृदयस्थ भाव को प्रकट करने वाला भाव कहलाता है ॥ २ ॥

क्योंकि ये [विभावादि] नाना प्रकार के अभिनयों से सम्बद्ध रसों को उत्पन्न करते हैं; इसलिये नाट्प्रयोक्ताजन इनको भाव कहते हैं ।

प्रश्न—विभाव को विभाव क्यों कहते हैं ?

उत्तर—विशेष ज्ञान कराने वाले होने के कारण विभाव कहते हैं । विभाव, कारण, निमित्त तथा हेतु ये पर्यायवाची हैं [लोकव्यवहार में जिसे कारण, निमित्त तथा हेतु कहते हैं साहित्य में उसे विभाव कहते हैं ।]

वाचिक, आङ्गिक तथा सात्त्विक अभिनय इसके द्वारा ज्ञापित किये जाते हैं इसलिये विभाव कहलाते है । विभावित तथा विज्ञात ये एकार्थक शब्द हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बह्वोऽर्था विभाव्यन्ते वागङ्गाभिनयाश्रिताः ।
अनेन यस्मात्तेनायं विभाव इति संज्ञितः ॥ ४ ॥

अथानुभाव इति कस्मादुच्यते । यदयमनुभावयति नानार्थाभिनिष्पन्नो वागङ्गसत्त्वकृतोऽभिनय इति ।

वागङ्गाभिनयेनेह यतस्त्वर्थोऽनुभाव्यते ।
वागङ्गोपाङ्गसंयुक्तस्त्वनुभावस्ततः स्मृतः ॥ ५ ॥

ना० शा० ७।८०।४-५

अन्वय—वागङ्गाभिनयाश्रिताः (पुं० १.३) बहवः (पुं० १.३) अर्थाः (पुं० १.३) यस्मात् (पुं० ५.१) अनेन (पुं० ३.१) विभाव्यन्ते तेन (पुं० ३.१) अयं (पुं०१.१) विभावः (पुं०१.१) इति (अ०) संज्ञितः (पुं०१.१)॥ ४ ॥ अथ (अ०) अनुभावः (पुं० १.१) इति (अ०) कस्मात् (पुं० ५.१) उच्यते । वागङ्गसत्त्वैः (पुं० ३.३) नानार्थाभिनिष्पन्नः (पुं० १.१) अयं (पुं० १.१) कृतः (पुं० १.१) अभिनयः (पुं० १.१) यत् (अ०) अनुभावयति ।

यतः (अ०) वागङ्गाभिनयेन (पुं० ३.१) वागङ्गोपाङ्गसंयुक्तः (पुं० १.३) अर्थः (पुं० १.१) अनुभाव्यते ततः (अ०) [सः] अनुभावः (पुं० १.१) स्मृतः (पुं० १.१) ॥ ५ ॥

अर्थ—जिसके द्वारा वाचिक तथा आङ्गिक अभिनयाश्रित अनेक अर्थ ज्ञात कराये जाते हैं उसे विभाव नाम से कहते हैं ॥ ४ ॥

प्रश्न—अतः अनुभाव को 'अनुभाव' क्यों कहते हैं !

उत्तर—वाचिक, आङ्गिक तथा सात्त्विक अनुभावों के द्वारा अनेक अर्थों से निष्पन्न होता हुआ (किया जाने वाला) अभिनय (भाव का) अनुभव कराता है इसीलिये उसको अनुभाव कहते हैं ।

वाचिक, आंगिक अभिनय के द्वारा वाणी, अंग तथा उपांग से युक्त अर्थ का अनुभव कराया जाता है, इसलिये उसको अनुभाव कहते हैं ॥ ५ ॥

लोकस्वभावसंसिद्धा लोकयात्रानुयायिनः ।
अनुभावविभावाश्च ज्ञेयास्त्वभिनयैर्बुधैः ॥ ६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकोनपंचाशद्भावेभ्योऽन्यगुणयोगे रसनिष्पत्तिः। तत्राष्टौ भावाः स्थायिनः, त्रयस्त्रिंशत् व्यभिचारिणः, अष्टौ सात्त्विका इति भेदाः। एवमेते काव्यरसाभिव्यक्तिहेतव एकोनपञ्चाशत् भावाः प्रत्यवगन्तव्याः। एभ्यश्च सामान्यगुणयोगेन रसा निष्पद्यन्ते। भवति चात्र श्लोकः।

योऽर्थो हृदयसंवादी तस्य भावो रसोद्भवः।
शरीरं व्याप्यते तेन शुष्कं काष्ठमिवाग्निना ॥ ७ ॥

ना० शा० ७।८०।६–७

अन्वय—एकोनपञ्चाशद्भावेभ्यः (५.३) अन्यगुणयोगे (७.१) रसनिष्पत्तिः (१.१) लोकस्वभावसंसिद्धाः (पुं० १.३) लोकयात्रानुयायिनः (पुं० १.३) अनुभावविभावाः (पुं० १.३) च (अ०) अभिनयैः (पुं० ३.३) बुधैः (पुं० ३.३) ज्ञेयाः (पुं० १.३) ॥ ६ ॥

तत्र (अ०) अष्टौ (पुं० १.३) स्थायिनः (पुं० १.३) भावाः (पुं० १.३), त्रयस्त्रिंशत् (पुं० १.३) व्यभिचारिणः (पुं० १.३), अष्टौ (पुं० १.३) सात्विकाः (पुं०) भेदाः (पुं० १.३) इति (अ०) एवम् (अ०) एते (पुं० १.३) काव्यरसाभिव्यक्तिहेतवः (पुं० १.३) एकोनपञ्चाशत् (पुं० १.३) भावाः (पुं० १.३) प्रति (उपसर्ग +) अवगन्तव्याः (१.३)। एभ्यः (पुं० ५.३) च (अ०) सामान्यगुण-योगेन (पुं० ३.१) रसाः (पुं० १.३) निष्पद्यन्ते।

यः (पुं० १.१) अर्थः (पुं १.१) हृदयसंवादी (पुं० १.१) तस्य (पुं० ६.१) भावः (पुं० १.१) रसोद्भवः (पुं० १.१) तेन (पुं० ३.१) शरीरं (न० १.१) व्याप्यते, अग्निना (पुं० ३.१) शुष्कं (न० १.१) काष्ठम् (न० १.१) इव (अ०) ॥ ७ ॥

अर्थ—लोक-प्रकृति से उत्पन्न होने वाले तथा लोक-व्यवहार का अनुसरण करने वाले इन अनुभाव तथा विभावों को अभिनयों के द्वारा बुधजन समझ लें ॥ ६ ॥

उनचास भावों से अन्य गुणयोग होने पर रसनिष्पत्ति होती है। इन भावों में आठ स्थायी भाव, तैंतीस व्यभिचारी भाव तथा आठ सात्विक भाव हैं। काव्य की रसाभिव्यक्ति में हेतुभूत यही उनचास भाव हैं। इनके सामान्य गुणों के संयोग द्वारा रसादि निष्पन्न होते हैं। इस संदर्भ में यह श्लोक उद्धृत किया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो वस्तु हृदयस्पर्शी है उसका भाव रसोत्पादक है। उस भाव से शरीर व्याप्त हो जाता है, जैसे शुष्क काष्ठ में अग्नि व्याप्त होती है ॥७॥

व्यभिचारिभावाः

व्यभिचारिण इदानीं वक्ष्यामः। अत्राह व्यभिचारिण इति कस्मादुच्यन्ते? वि–अभि इत्येतावुपसर्गौ। चर् गतौ धातुः। धात्वर्थवागङ्गसत्त्वोपेतान् विविधमभिमुखेन रसेषु चरन्तीति व्यभिचारिणः। चरन्ति नयन्तीत्यर्थः। कथं नयन्ति? उच्यते–यथा सूर्य इदं नक्षत्रममुं वासरं नयतीति। न च तेन बाहुभ्यां स्कन्धेन वा नीयते। किं तु लोकप्रसिद्धमेतत् यथायं सूर्यो नक्षत्रं दिनं वा नयतीति एवमेते व्यभिचारिण इत्यवगन्तव्याः।

ना० शा० ७।८४

अन्वय—अत्र (अ०) आह इदानीं (अ०) व्यभिचारिणः (पुं० १.३) वक्ष्यामः। व्यभिचारिणः (पुं० १.३) इति (अ०) कस्मात् (पुं० ५.१) उच्यते? वि, अभि (उपसर्ग) इति (अ०) एतौ (पुं० १.२) उपसर्गौ (पुं० १.२)। चर् गतौ (स्त्री० ७.१) धातुः (पुं० १.१)। धात्वर्थवागङ्गसत्त्वोपेतान् (पुं० २.३) [भावान्] विविधमभिमुखेन (पुं० ३.१) रसेषु (पुं० ७.३) चरन्ति इति (अ०) व्यभिचारिणः (पुं० १.३)। चरन्ति नयन्ति इति (अ०) अर्थः (पुं० १.१)। कथं (अ०) नयन्ति? उच्यते—यथा (अ०) सूर्यः (पुं० १.१) इदं (न० २.१) नक्षत्रम् (न० २.१) अमुं (पुं० २.१) वासरं (पुं० २.१) नयति इति (अ०)। न (अ०) च (अ०) तेन (पुं० ३.१) बाहुभ्यां (पुं० ३.२) स्कन्धेन (पुं० ३.१) वा (अ०) नीयते। किंतु (अ०) लोकप्रसिद्धम् (न० १.१) एतत् (न० १.१)। यथा (अ०) अयं (पुं० १.१) सूर्यः (पुं० १.१) नक्षत्रं (न० २.१) दिनं (न० २.१) वा (अ०) नयति इति (अ०) एवम् (अ०) एते (पुं० १.३) व्यभिचारिणः (पुं० १.३) इति (अ०) अवगन्तव्याः (पुं० १.३)।

प्रश्न—अब हम व्यभिचारी भावों को कहते हैं। इन्हें व्यभिचारी भाव क्यों कहते हैं?

उत्तर—इसमें वि तथा अभि उपसर्ग हैं और गत्यर्थक चर् धातु है जिसका अर्थ है—जाना। धात्वर्थ, वाक्, अङ्ग यथा सत्व इनसे युक्त भावों को प्रधान रूप से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिमुख कर रस की ओर ले जाने वाले भावों को व्यभिचारी भाव कहते हैं। चरन्ति का अर्थ है नयन्ति = ले जाते हैं।

प्रश्न—ये रसों को किस प्रकार वहन करते हैं ?

उत्तर—जिस प्रकार सूर्य इस नक्षत्र को या इस दिन को ले जाता है। यहाँ यह आशय नहीं है कि यह अपनी भुजाओं या कन्धे पर उनको वहन करता है किन्तु यह लोकप्रसिद्धि है कि सूर्य नक्षत्र को अथवा दिन को वहन करता है। इसी प्रकार ये भी व्यभिचारी भाव कहलाते हैं, ऐसा समझ लेना चाहिये।

स्थायिभावः

यथा नरेन्द्रो बहुजनपरिवारोऽपि सन् स एव नाम लभते नान्यः सुमहानपि पुरुषः। बहुषु गच्छत्सु कश्चित् क्वचित् पृच्छति कोऽयमिति। स च तमाह राजेत्येव। तथा विभावानुभावव्यभिचारिपरिवृतः स्थायी भावो रसनाम लभते नरेन्द्रवत्।

यथा नराणां नृपतिः शिष्याणां च यथा गुरुः।
एवं हि सर्वभावानां भावः स्थायी महानिह ॥ ८ ॥

ना० शास्त्र ७।गद्य + ८

अन्वय—यथा (अ०) नरेन्द्रः (पुं० १.१) बहुजनपरिवारः सन् (पुं० १.१) अपि (अ०) सः (पुं० १.१) एव (अ०) नाम (न० २.१) लभते, न (अ०) अन्यः (पुं० १.१) महान् (पुं० १.१) अपि (अ०) पुरुषः (पुं० १.१)। बहुषु (पुं० ७.३) गच्छत्सु (पुं० ७.३) कश्चित् (अ०) क्वचित् (अ०) पृच्छति कः (पुं० १.१) अयम् (पुं० १.१) इति (अ०)। सः (पुं० १.१) तम् (पुं० २.१) आह राजा (पुं० १.१) इति (अ०) एव (अ०)। तथा (अ०) विभावअनुभावव्यभिचारिपरिवृतः (पुं० १.१) स्थायी भावः (पुं० १.१) नरेन्द्रवत् रसनाम (न० २.१) लभते।

यथा (अ०) नराणां (पुं० ६.३) नृपतिः (पुं० १.१) यथा (अ०) शिष्याणां (पुं० ६.३) गुरुः (पुं० १.१) च (अ०) एवं (अ०) हि (अ०) सर्वभावानां (पुं० ६.३) स्थायी (पुं० १.१) भावः (पुं० १.१) महान् (पुं० १.१) इह (अ०) ॥ ८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रश्न—इस विषय में क्या दृष्टान्त है ?

उत्तर—जिस प्रकार बड़े परिवार (या अनेक परिजन) से युक्त होने पर भी केवल राजा का ही नाम होता है, किसी अन्य बड़े जन का नहीं। अनेक लोग जब जा रहे होते हैं, तब कभी कोई पूछता है, यह कौन है ? वह उसको यही कहता है कि यह राजा है। वैसे ही विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों से युक्त स्थायी भाव ही नरेन्द्र के समान रस नाम को प्राप्त करता है।

जिस प्रकार मनुष्यों में राजा तथा शिष्यों में गुरु (मुख्य-श्रेष्ठ हैं) उसी प्रकार सभी भावों में स्थायी भाव श्रेष्ठ हैं।

भाव-रसयोः परस्परसम्बन्धः

नानाभिनयसम्बन्धान् भावयन्ति रसानिमान्।
यस्मात्तस्मादमी भावा विज्ञेया नाट्ययोक्तृभिः ॥ ३४ ॥

नानाद्रव्यैर्बहुविधैर्व्यञ्जनं भाव्यते यथा।
एवं भावा भावयन्ति रसानभिनयैः सह ॥ ३५ ॥

न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः।
परस्परकृता सिद्धिस्तयोरभिनये भवेत् ॥ ३६ ॥

व्यञ्जनौषधिसंयोगाद्यथाऽन्ने स्वादुता भवेत्।
एवं भावा रसाश्चैव भावयन्ति परस्परम् ॥ ३७ ॥

यथा बीजाद् भवेद् वृक्षो वृक्षात् पुष्पं फलं यथा।
तथा मूलं रसाः सर्वे तेषु भावा व्यवस्थिताः ॥ ३८ ॥

ना० शा० ६।३४—३८

अन्वय—यस्मात् (पुं० ५.१) नानाभिनयसम्बद्धान् (पुं० २.३) इमान् (पुं० २.३) रसान् (पुं० २.३) भावयन्ति तस्मात् (पुं० ५.१) अमी (पुं० १.३) भावाः (पुं० १.३) नाट्ययोक्तृभिः (पुं० ३.३) विज्ञेयाः (पुं० १.३)।

अर्थ—क्योंकि ये [विभावादि] नाना प्रकार के अभिनयों से सम्बद्ध रसों को उत्पन्न करते हैं इसलिये नाट्यप्रयोक्ता जन इनको 'भाव' कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्वय—यथा (अ०) बहुविधैः नानाद्रव्यैः (न० ३.३) व्यञ्जनं (न०२.१) भाव्यते एवं (अ०) भावाः (पुं० १.३) अभिनयैः (पुं० ३.३) सह (अ०) रसान् (पुं० २.३) भावयन्ति ।

अर्थ—जिस प्रकार अनेक प्रकार के द्रव्यों से व्यञ्जन सुसंस्कृत किये जाते हैं उसी प्रकार 'भाव' अभिनयों के साथ मिल कर रसों को निष्पन्न करते हैं ।

अन्वय—रसः (पुं० १.१) भावहीनः (पुं० १.१) न (अ०) अस्ति भावः (पुं० १.१) रसवर्जितः (पुं० १.१) न (अ०) [अस्ति] अभिनये (पुं० ७.१) तयोः (पुं० ६.२) परस्परकृता (स्त्री० १.१) सिद्धिः (स्त्री० १.१) भवेत् ।

अर्थ—भाव रसहीन नहीं होता तथा रस भावहीन नहीं होता । अभिनय में पारस्परिक सम्बन्ध से दोनों की सिद्धि [अस्तित्व] होती है ।

अन्वय—यथा (अ०) व्यञ्जनौषधिसंयोगात् (पुं० ५.१) अन्ने (न० १) स्वादुता (स्त्री० १.१) भवेत् । एवं (अ०) भावाः (पुं० १.३) रसाः (पुं० १.३) च एव (अ०) परस्परम् (अ०) भावयन्ति ।

अर्थ—जिस प्रकार व्यञ्जन तथा औषधि के संयोग से अन्न में स्वाद होता है उसी प्रकार भाव तथा रस भी एक दूसरे को स्वाद-योग्य बनाते हैं ।

अन्वय—यथा (अ०) बीजात् (न० ५.१) वृक्षः (पुं० १.१) भवेत् यथा (क्ष) वृक्षात् (पुं० ५.१) पुष्पं (न० १.१) फलं (न० १.१) [भवेत्] तथा (अ०) सर्वे (पुं० १.३) रसाः (पुं० १.३) मूलम् (न०१.१) तेषु (पुं० ७.३) भावाः (पुं० १.३) व्यवस्थिताः (पुं० १.३) ।

अर्थ—जिस प्रकार बीज से वृक्ष तथा क्रमशः उससे पुष्प तथा फ़ल उत्पन्न होते हैं । उसी प्रकार रस मूल (प्रधान) हैं, उन पर भाव स्थित हैं ।

रसानामुत्पाद्योत्पादक-सम्बन्धः

शृङ्गाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः ।
वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्बीभत्साच्च भयानकः ॥ ३९ ॥

शृङ्गारानुकृतिर्या तु स हास्य इति संज्ञितः ।
रौद्रस्यापि च यत् कर्म स ज्ञेयो करुणो रसः ॥ ४० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वीरस्यापि च यत् कर्म सोऽद्भुतः परिकीर्तितः ।
बीभत्सदर्शनं यच्च भवेत् स तु भयानकः ॥ ४१ ॥
ना० शा० ६।३९-४१

अन्वय—शृङ्गाराव् (पुं ५.१) हि (अ०) हास्यः (पुं० १.१) भवेत् रौद्रात् (पुं० ५.१) तु (अ०) करुणः (पुं० १.१) रसः (पुं० १.१) वीरात् (पुं० ५.१) च एव (अ०) अद्भुतोत्पत्तिः (स्त्री० १.१) बीभत्सात् (पुं० ५.१) च (अ०) भयानकः (पुं० १.१) ॥ ३९ ॥

अर्थ—शृंगार से हास्य की, रौद्र से करुण रस की, वीर से अद्भुत की तथा बीभत्स से भयानक की उत्पत्ति होती है।

अन्वय—या (स्त्री० १.१) तु (अ०) शृङ्गारानुकृतिः (स्त्री० १.१) सः (पुं० १.१) हास्यः (पुं० १.१) इति (अ०) संज्ञितः । अपि (अ० च (अ०) रौद्रस्यस्य (पुं ६.१) यत् (न० १.१) कर्म (न०१.१) सः (पुं १.१) करुणः (पुं० १.१) रसः (पुं० १.१) ज्ञेयः (पुं० १.१) ॥ ४० ॥

अर्थ—शृङ्गार की जो अनुकृति हैं उसे हास्य की संज्ञा दी गयी है। और रौद्र का जो कार्य है उसे करुण रस समझना चाहिये।

अन्वय—वीरस्य (पुं० ६.१) अपि (अ०) च (अ०) यत् (नं १.१) कर्म (न० १.१) सः (पुं० १.१) अद्भुतः (पुं० १.१) परिकीर्तितः । यत् (न० १.१) च (अ०) बीभत्सदर्शनं (न० १.१) सः (पुं०१.१) तु (अ०) भयानकः (पुं० १.१) भवेत् ।

अर्थ—वीररस का जो कार्य है उसे अद्भुतरस कहा गया है। और जो बीभत्स दिखलाई देता है उसे भयानक करते हैं।

काव्यगुणाः

(सू० ९०) आह्लादकत्वं माधुर्यं शृङ्गारे द्रुतिकारणम् ॥ ६८ ॥
शृङ्गारे अर्थात् सम्भोगे। द्रुतिर्गलितत्वमिव ।
श्रव्यत्वं पुनरोजःप्रसादयोरपि ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(सू० ९१) करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्।
अत्यन्तद्रुतिहेतुत्वात्।

(सू० ९२) दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थितिः ॥ ६९ ॥
चित्तस्य विस्ताररूपदीप्तत्वजनकमोजः।

(सू० ९३) बीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च।
वीराद्बीभत्से ततो रौद्रे सातिशयमोजः।

(सू० ९४) शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः ॥ ७० ॥

(सू० ९५) व्याप्नोत्यन्यत्प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः।

काव्य प्रकाश अष्टम उल्लास

अन्वय—आह्लादकत्वं (न० १.१) माधुर्यं (न० १.१) शृङ्गारे (पुं० ७.१) [चित्तस्य] द्रुतिकारणम् (न० १.१) [अस्ति] ॥ ६८ ॥

अर्थ—आह्लाद अर्थात् आनन्दस्वरूप माधुर्य शृङ्गार में चित्त की द्रुति का कारण है।

अन्वय—शृङ्गारे (पुं० ७.१) अर्थात् सम्भोगे (पुं० ७.१)। द्रुतिः (स्त्री० १.७) गलितत्वं (न० १.१) इव (अ०)। श्रव्यत्वं (न० १.१) पुनः (अ०) ओजप्रसादयोः (पुं० ७.२) अपि (अ०)।

अर्थ—शृंगार में अर्थात् सम्भोग में। द्रुति गलितत्व अर्थात् चित्त में काठिन्य का अभाव। भामह ने माधुर्य का लक्षण आह्लादकत्व न करके श्रव्यत्व सुनने योग्य अर्थात् सुनने में अच्छा लगने वाला किया है। किन्तु वह श्रव्यत्व ओज तथा प्रसाद में भी होने से लक्षण अतिव्याप्ति दोष से दूषित हो जायगा।

अन्वय—[तव् माधुर्यं सम्भोगात्] करुणे (पुं० ७.१) [तस्मादपि] विप्रलम्भे (पुं० ७.१) [ततोऽपि] शान्ते (पुं० ७.१) च (अ०) अतिशयान्वितम् (न० १.१)

अर्थ—सम्भोग की अपेक्षा करुण में, उनकी अपेक्षा विप्रलम्भ में तथा उसकी अपेक्षा शान्त में माधुर्य अतिशय रूप से अन्वित है। (इनमें हेतु बतलाते हैं)

अत्यन्तद्रुतिहेतुत्वात्—अत्यन्त द्रुति का कारण होने से।

अन्वय—वीररसस्थितिः (न०१.१) ओजः (न० १.१) दीप्त्यात्मविस्तृतेः (न० ६.१) हेतुः (पुं० १.१)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ—वीर रस में रहने वाला ओज दीप्तिरूप आत्मविस्तृति का कारण है।

अन्वय—ओजः (न० १.१) चित्तस्य (न० ६.१) विस्ताररूपदीप्तत्वजनकम् (न० १.१)

अर्थ—ओज (गुण) चित्त की विस्ताररूप दीप्ति का जनक है।

अन्वय—बीभत्सरौद्ररसयोः (पुं० ७.२) क्रमेण (पुं० ३.१) च (अ०) तस्य (न० ६.१) [ओजसः] आधिक्यम् (न० १.१)।

अर्थ—बीभत्स तथा रौद्र रस में क्रम से उस ओज का आधिक्य है।

अन्वय—वीरात् (पुं० ५.१) बीभत्से (पुं० ७.१) ततो [अपि] रौद्रे (पुं० ७.१) ओजः (न० १.१) सातिशयम् (न० १.१)

अर्थ—वीर की अपेक्षा बीभत्स में, उसकी (बीभत्सकी) अपेक्षा रौद्र में ओज (गुण) अतिशय रूप में स्थित है।

अन्वय—शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत् सहसैव यः (पुं० १.१) अन्यत् व्याप्नोति सर्वत्र (अ०) विहितस्थितिः (पुं० १.१) असौ (पुं० १.१) प्रसादः (पुं० १.१)॥

अर्थ—शुष्क इन्धन में अग्नि के सदृश, स्वच्छजल के समान शीघ्र ही चित्त को व्याप्त करने वाला तथा सर्वत्र रहने वाला यह प्रसाद है।

जिस प्रकार अग्नि शुष्क इंधन को शीघ्र ही व्याप्त करती है तथा जल स्वच्छ पट को सहसा व्याप्त कर लेता है उसी प्रकार प्रसाद गुण चित्त को शीघ्र ही व्याप्त कर लेता है। प्रसादगुण सभी शृङ्गारादि रसों में विहित है।

अभिनयः

अभिपूर्वस्तु णीञ्धातुराभिमुख्यार्थनिर्णये।
यस्मात्पदार्थान्नयति तस्मादभिनयः स्मृतः॥ ६॥
विभावयन्ति यस्माच्च नानार्थान् हि प्रयोगतः।
शाखाङ्गोपाङ्गसंयुक्तस्तस्मादभिनयः स्मृतः॥ ७॥

ना० शा० ८।६–७।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्वय—अभिपूर्वः (पुं० १.१) णीञ् धातुः (पुं० १.१) तु (अ०) आभिमुख्यार्थ-निर्णये (पुं० ७.१) यस्मात् (न० ५.१) पदार्थान् (पुं० २.३) नयति तस्मात् (न० ५.१) अभिनयः (पुं० १.१) स्मृतः (पुं० १.१)।

अर्थ—अभि उपसर्ग पूर्वक नी धातु आभिमुख्य रूप अर्थ के निर्णय करने में समर्थ है। पदार्थों को सम्मुख लाने के कारण ही उसका अभिनय नाम से कहा जाता है।

अन्वय—यस्मात् (न० ५.१) च (अ०) नानार्थान् (पुं० २.३) हि (अ०) प्रयोगतः (अ०) विभावयन्ति तस्मात् (न० ५.१) शाखाङ्गोपाङ्गसंयुक्तः (पुं० १.१) अभिनयः (पुं० १.१) स्मृतः (पुं० १.१.) ॥ ७ ॥

अर्थ—अनेक अर्थों को क्रियान्वित कर बोधन कराने वाला शाखा, अङ्ग, उपांग से युक्त अभिनय कहलाता है।

पाठ्य-गुणाः

पाठ्यगुणानिदानीं वक्ष्यामः। तद्यथा सप्तस्वराः, त्रीणि स्थानानि, चत्वारो वर्णाः, द्विविधा काकुः, षडलङ्काराः, षडङ्गानि, तेषामिदानीं लक्षणान्यभि-व्याख्यास्यामः।

तत्र सप्त स्वराः षड्जर्षभगान्धारमध्यमपञ्चमधैवतनिषादाः। एते रसेषूपपाद्या यथा—

हास्यश्रृङ्गारयोः कार्यौ स्वरौ मध्यमपञ्चमौ।
षडजर्षभौ तथा चैव वीररौद्राद्भूतेषु तु ॥ ३८ ॥
गान्धारश्च निषादश्च कर्तव्यौ करुणे रसे।
धैवतश्चैव कर्तव्यो बीभत्से सभयानके ॥ ३९ ॥
त्रीणि स्थानान्युरःकण्ठशिरांसीति भवन्त्यपि।
शारीर्यामथ वीणायां त्रिभ्यः स्थानेभ्य एव च ॥ ४० ॥
उरसः शिरसः कण्ठात् स्वरः काकुः प्रवर्तते।
आभाषणं तु दूरस्थे शिरसा सम्प्रयोजयेत् ॥ ४१ ॥
नातिदूरेऽपि कण्ठेनाप्युरसा चापि पार्श्वतः।
उरसोदाहृतं वाक्यं शिरसा दीपयेद् बुधः ॥ ४२ ॥
कण्ठेन शमनं कुर्यात्पाठ्यंयोगेषु सर्वदा।

ना० शा० १६।२२१।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्वय—इदानीं (अ०) पाठ्यगुणान् (पुं० २ ३) वक्ष्यामः । तत् (न० १.१) यथा (अ०) सप्तस्वराः (पुं० १.३) त्रीणि (न० १.३) स्थानानि (न० १.३), चत्वारः (पुं० १.३) वर्णाः (पुं० १.३) द्विविधा (स्त्री० १.१) काकुः (स्त्री० १.१), षट् (पुं० १.३) अलङ्काराः (पुं० १.३), षट् (न० १.३) अङ्गानि (न० १.३), इदानीं (अ०) तेषां (न० ६.३) लक्षणानि (न० २.३) अभिव्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब हम पाठ्यगुणों को कहेंगे । वे इस प्रकार हैं—सात स्वर, तीन स्थान, चार वर्ण, द्विविध काकु, छः अलंकार, छः अंग । अब उनके लक्षणों की व्याख्या करेंगे ।

अन्वय—तत्र (अ०) षड्जर्षभगान्धारमध्यमपञ्चमधैवतनिषादाः (पुं० १.३) सप्त (पुं० १.३) स्वराः (पुं० १.३)। एते (पुं० १.३) [स्वराः] रसेषु (पुं० ७.३) उपपाद्याः (पुं० १.३) ।

अर्थ—षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद ये सप्त स्वर हैं । इन स्वरों का रसों में उपपादन करना चाहिये ।

अन्वय—यथा (अ०) हास्यशृङ्गारयोः (पुं० ७.२) मध्यमपञ्चमौ (पुं०१.२) स्वरौ (पुं० १.२) कार्यौ (पुं० १.२) तथा (अ०) वीररौद्राद्भुतेषु (पुं० ७.३) तु (अ०) षड्जर्षभौ (पुं० १.२) च (अ०) ॥ ३८ ॥

करुणे (पुं० ७.१) रसे (पुं० ७.१) गांधारः (पु० १.१) च (अ०) निषादः (पुं० १.१) च (अ०) कर्त्तव्यौ (पुं १.२) । बीभत्से (पुं० ७.१) भयानके (पुं० ७.१) धैवतः (पुं० १.१) च (अ०) एव (अ०) कर्त्तव्यः (पुं० १.१) ॥ ३८—३९ ॥

अर्थ—हास्य तथा शृंगार में मध्यम व पञ्चम स्वरों का, वीर, रौद्र, तथा अद्भुत रस में षड्ज व ऋषभ का, करुण रस में गांधार तथा निषाद, बीभत्स तथा भयानक में धैवत का उपपादन करना चाहिये ।

अन्वय—उरःकण्ठशिरांसि (न० १.३) इति (अ०) त्रीणि (न० १.३) स्थानानि (न० १.३) भवन्ति । अथ (अ०) शारीर्यां (स्त्री० ७.१) वीणायां (स्त्री० ७.१) त्रिभ्यः (न० ५.३) स्थानेभ्यः (न० ५.३) उरसः (न० ५.१) शिरसः (न० ५.१) कण्ठात् (पुं० ५.१) स्वरः (पुं० १.१) काकुः (स्त्री० १.१) प्रवर्त्तते । दूरस्थे (पुं०७.१)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आमाषणं (न० १.१) तु (अ०) शिरसा (न० ३.१) संप्रयोजयेत् ॥ ४१ ॥

न (अ०) अतिदूरे (पुं० ७.१) कण्ठेन (पुं० ३.१) अपि पार्श्वतः (पुं० १.१) उरसा (न० ३.१) च (अ०) अपि (अ०) बुधः (पुं० १.१) उरसा (न० ३.१) उदाहृतं (न० २.१) वाक्यं (नपु० २.१) शिरसा (न० ३.१) दीपयेत् ॥ ४२ ॥

पाठ्ययोगेषु (पुं० ७.३) सर्वदा (अ०) कण्ठेन (पुं० ३.१) शमनं (न० २.१) कुर्यात् ।

अर्थ—उरस् कण्ठ तथा शिर ये तीन स्थान हैं। शारीरी वीणा में तीन स्थानों से अर्थात् उरस् से, शिर से तथा कण्ठ से स्वर काकु प्रवृत्त होता है। दूरस्थित व्यक्ति से सिर द्वारा निकट स्थित व्यक्ति से कण्ठ द्वारा, तथा पार्श्वस्थित व्यक्ति से उरस् से निकलने वाले वाक्यों द्वारा वार्तालाप करें। बुधजन सर्वदा पाठ्ययोग में उर से निकले हुए वाक्य को सिर द्वारा उत्तेजित करते हैं, तथा कण्ठ से स्पष्ट करते हैं।

पाठ्ये वर्णभेदास्तत्प्रयोगाश्च, तथैव काकुः

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितः कम्पितस्तथा।
वर्णाश्चत्वार एव स्युः पाठ्ययोगे तपोधनाः ॥ ४३ ॥

तत्र हास्यशृङ्गारयोः स्वरितोदात्तैः, वीररौद्राद्भुतेषूदात्तकम्पितैः, करुण-वात्सल्यभयानकेषूदात्तस्वरितकम्पितैः वर्णैः पाठ्यमुपपादयेदिति।

द्विविधा काकुः साकांक्षा निराकांक्षा चेति वाक्यस्य साकांक्षनिरा-कांक्षत्वात्।

अनियुक्तार्थकं वाक्यं साकांक्षकमिति संज्ञितम्।
नियुक्तार्थं तु यद्वाक्यं निराकाक्षं तदुच्यते ॥ ४४ ॥

ना० शास्त्र १६।२२२।

अन्वय—पाठ्ययोगे (पुं० ७.१) उदात्तः (पुं० १.१) च (अ०) अनुदात्तः (पुं० १.१) च (अ०) स्वरितः (पुं० १.१) तथा (अ०) कम्पितः (पुं० १.१) [एते] चत्वारः (पुं० १.३) वर्णाः (पुं० १.३) स्युः [इति] तपोधनाः (पुं० १.३) कथयन्ति ॥ ४३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ—पाठ्यप्रयोग में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा कम्पित ये चार वर्ण हैं ऐसा तपोवन कहते हैं।

अन्वय—तत्र (अ०) हास्यशृङ्गारयोः (पुं० ७.२) स्वरितोदात्तैः (पुं० ३.३) वीररौद्राद्भुतेषु (पुं० ७.३) उदात्तकम्पितैः (पुं० ३.३) करुणवात्सल्य-भयानकेषु (पुं० ७.३) उदात्तस्वरितकम्पितैः (पुं० ३.३) वर्णैः (पुं० ३.३) पाठ्यम् (नपुं० २.१) उपपादयेत् इति (अ०)।

अर्थ—हास्य तथा शृङ्गार में स्वरित तथा उदात्त, वीर, रौद्र तथा अद्भुत में उदात्त कम्पित, करुण, वात्सल्य तथा भयानक रस में उदात्त, स्वरित तथा कम्पित वर्णों द्वारा पद को बताना चाहिये।

अन्वय—वाक्यस्य (नपुं० ६.१) साकांक्षनिराकांक्षत्वात् (न० ५.१) काकुः (स्त्री० १.१) द्विविधा (स्त्री० १.१) साकांक्षा (स्त्री० १.१) निराकांक्षा (स्त्री० १.१) च (अ०) इति (अ०)।

अर्थ—वाक्य के साकांक्ष व निराकांक्ष होने के कारण काकु दो प्रकार की है—(१) साकांक्षा तथा (२) निराकांक्षा।

अन्वय—अनियुक्तार्थक (न० १.१) वाक्यं (न० १.१) साकांक्षकम् (न० १.१) इति (अ०) संज्ञितम्। यत् (न० १.१) वाक्यं (न० १.१) तु (अ०) नियुक्तार्थं (न० १.१) तत् (न० १.१) निराकांक्षम् (नपुं० १.१) उच्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—अनिश्चित अर्थ वाला वाक्य साकांक्ष तथा निश्चित अर्थ के वाक्य को निराकांक्ष कहते हैं।

पाठ्ये षडलङ्काराः

उच्चो दीप्तश्च मन्द्रश्च नीचो द्रुतविलम्बितौ।
पाठ्यस्यैते ह्यलङ्काराः लक्षणञ्च निबोधत ॥ ४५ ॥

उच्चो नाम शिरस्थानगतस्तारस्वरः, स च दूरस्थाभाषणविस्मयोत्तरोत्तर-संजल्पदूराह्वानत्रासनार्थं वाद्येषु। दीप्तो नाम शिरःस्थानगतस्तारतरः, स चाक्षेपकलहविवादामर्षाक्रुष्टाधर्षणाक्रोधशौर्यदर्पतीक्ष्णरूक्षाभिधाननिर्भर्त्स-नादिषु। मन्द्रो नाम उरःस्थानगतो निर्वेदग्लानिशङ्काचिन्तौत्सुक्यदैन्यावे-व्याधिगाढशस्त्रक्षतमूर्च्छामदादिषु। नीचो नाम उरःस्थानगतो मन्द्रतरः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वभावाभाषणव्याधितपथिश्रान्तत्रस्तपतितमूर्च्छितादिषु। द्रुतो नाम कण्ठगतः–स्खलितवेल्लनमदनभयशीतज्वरत्रस्तायस्तागूढकार्यवेदनादिषु। विलम्बितो नाम कण्ठस्थानगतः मन्द्रः शृङ्गारवितर्कितविचारामर्षासूयिताव्यक्तार्थप्रवादलज्जाचिन्तातर्जनविस्मयदोषानुकीर्तनदीर्घरोषनिपडीनादिषु।

ना० शा० १९।२२

अन्वय—उच्चः (पु॰ १.१) दीप्तः (पु॰ १.१) च (अ०) मन्द्रः (पु॰ १.१) नीचः (पु॰ १.१) च (अ०) द्रुतविलम्बितौ (पु॰ १.२)। एते (पु॰ १.३) हि (अ०) पाठ्यस्य (न० ६.१) अलंकाराः (पु॰ १.३) लक्षणं (न० १.१) च (अ०) निबोधत।

अर्थ—उच्च, दीप्त, मन्द्र, नीच, द्रुत तथा विलम्बित ये पाठ्य के अलंकार हैं। इनके लक्षण इस प्रकार हैं—

अन्वय—शिरःस्थानगतः (पु॰ १.१) तारस्वरः (पु॰ १.१) उच्चः (पु॰ १.१) नाम (अ०) सः (पु॰ १.१) च (अ०) दूरस्थाऽऽभाषणविस्मयोत्तरोत्तरसंजल्पदूराह्वानत्रासनार्थं (न० १.१) पाठ्येषु (न० ७.३) शिरस्थानगतस्तारतरः (पु॰ १.१) दीप्तः (पु॰ १.१) नाम (अ०), सः (पु॰ १.१) च (अ०) आक्षेपकलहविवादामर्षोत्क्रुष्टधर्षणक्रोधशौर्यदर्पतीक्ष्णरूक्षाभिधाननिर्भर्त्सनादिषु (पु॰ ७.३)। मन्द्रः (पु॰ १.१) नाम (अ०) उरःस्थानगतः (पु॰ १.१) निर्वेदग्लानिशङ्काचिन्तौत्सुक्यदैन्यावेगव्याधिगाढ़शस्त्रक्षतमूर्च्छामदादिषु (पु॰ ७.३)। नीचः (पु॰ १.१) नाम (अ०) उरःस्थानगतः (पु॰ १.१) मन्द्रतरः (पु॰ १.१) स्वभावाभाषणव्याधितपथिश्रान्तत्रस्तपतितमूर्च्छितादिषु (पु॰ ७.३)। द्रुतः (पु॰ १.१) नाम (अ०) कण्ठगतस्खलितवेल्लनमदनभयशीतज्वरत्रस्तायस्तागूढ़कार्यवेदनादिषु (पु॰ ७.३)। विलम्बितः (पु॰ १.१) नाम (अ०) कण्ठस्थानगतः (पु॰ १.१) मन्द्रः (पु॰ १.१) शृंगारवितर्कितविचारामर्षासूयिताव्यक्तार्थप्रवादलज्जाचिन्तातर्जनविस्मयदोषानुकीर्तनदीर्घरोषनिपीडनादिषु (पु॰ ७.३)।

अर्थ—शिरःस्थानगततारस्वर को 'उच्च' कहते हैं। दूरस्थित (व्यक्ति) से भाषण करने में, विस्मय, उत्तरोत्तर वार्तालाप में दूर से आस्वादन करने में तथा डराने में पाठ्यो में उसका उपयोग होता। शिरः स्थानगत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तारतर स्वर को 'दीप्त' कहते हैं उसका उपयोग आक्षेप, कलह, विवाद, अमर्ष, उत्कृष्ट घर्षण (झकझोरना) क्रोध, शौर्य, दर्प (अभिमान) तीखे व रूखे भाषण तथा निर्भत्सना में होता है। उरः स्थानगत स्वर को मन्द्र कहते हैं। निर्वेद, ग्लानि, शंका, चिन्ता, औत्सुक्य, दैन्य, आवेग, व्याधि, गाढ़शस्त्रक्षत, मूर्छा मद आदि में उसका उपयोग होता है। उरः स्थानगत मन्द्रतर स्वर को 'नीच' कहते हैं। स्वभाव आभाषण, व्याधित, मार्ग का थका हुआ, डरा हुआ, पतित, मूछित आदि में उसका उपयोग होता है। कण्ठगत स्वर को 'द्रुत' कहते हैं। खलितवेल्लन = लडखडाने में, मदन मय, शोतज्वर, त्रस्त आयस्त, गूढ़ कार्य के जानने में द्रुत का उपयोग होता है कण्ठस्थानस्थित मन्द्र को विलंबित कहते हैं। शृंगार वितर्कित विचार, अमर्ष, असूयित, अव्यक्त अर्थ प्रवाद, लज्जा, चिन्ता, तर्जन, विस्मय, दोषानुकीर्तन, दीर्घ रोष तथा निपीडन आदि में उसका उपयोग होता है।

पाठ्यगुणेषु अङ्गनिरूपणम्

अथाङ्गानि—विच्छेदोऽर्पणे विसर्गोऽनुबन्धो दीपनं प्रशमनमिति षडङ्गानि। तत्र विच्छेदो नाम विरामकृतः। अर्पणं नाम लीलावर्णस्वरेणापूरयदिव रङ्गं यत्पठ्यते। विसर्गो नाम वाक्यन्यासः। अनुबन्धो नाम पदान्तरेष्वविच्छेदादुच्छ्वासनं वा। दीपनं नाम त्रिस्थानशोभि वर्धमानस्वरञ्च। प्रशमनं नाम तारं गतानां स्वराणामवैस्वर्येणावतरणमिति। एषाञ्च रसगतः प्रयोगः। तत्र हास्यशृङ्गारयोरर्पणविच्छेदनदीपनप्रशमनयुक्तं *वाक्यं कार्यं करुणवीराद्भुतेषु समाकाङ्क्षाविच्छेदप्रशमनार्पणदीपनानुबन्धनबहुलं पाठ्यं प्रयोज्यं, बीभत्सभयानकयोर्विच्छेदार्पणयुक्तमिति सर्वेषाञ्चैतेषां मन्द्रमध्यतारव्यवस्थायां स्थानगतः प्रयोगः। तत्र दूरस्थाभाषणे तारशिरसो नातिदूरे मध्यं कण्ठेन पार्श्वतो मन्द्रमुरसा प्रयोजयेत् पाठ्यमिति। मन्द्रात्तारं गच्छेत्ताराद्वा मन्द्रमिति। एषाञ्च द्रुतमध्यविलंम्बितासु ये वर्णा रसेषूपपाद्या तत्र हास्यशृङ्गारयोर्मध्यलयः करूणे विलंम्बितो वीररौद्राद्भुतबीभत्सभयानकेषु द्रुत इत्ति।

* पाठ्यं। नाट्य शा० १९।२२४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्वय---अथ (अ०) अङ्गानि (न० १.३)। विच्छेदः (पु०१.१) अर्पणं (न०१.१) विसर्गः (पुं० १.१) अनुबन्धः (पुं० १.१) दीपनं (न० १.१) प्रशमनम् (न०१.१) इति (अ०) षट् (न०१.३) अङ्गानि (न०१.३) तत्र (अ०) विच्छेदः (पुं० १.१) नाम (अ०) विरामकृतः (पुं०१.१) अर्पणं (न० १.१) नाम (अ०) लीलावर्णस्वरेण (पुं० ३.१) रङ्गं (न० १.१) आपूरयत् इव (अ०) यत् (न० १.१) पठ्यते। विसर्गः (पुं० १.१) नाम (अ०) वाक्यन्यासः (पु० १.१)। अनुबन्धः (पुं० १.१) नाम (अ०) पदान्तरेषु (न० ७.३) अविच्छेदानुच्छ्वासनं (न० १.१) वा (अ०)। दीपनं (न० १.१) नाम (अ०) त्रिस्थानशोभि (न० १.१) वर्धमानस्वरं (न० १.१) च (अ०)। प्रशमनं (न० १.१) नाम (अ०) तारं (न०१.१) गतानां (पुं०६.३) स्वराणां (पुं० ६.३) अवैस्वर्येण (न० ३.१) अवतरणम् (न०१.१) इति (अ०)। एषां (पुं० ६.३) च (अ०) रसगतः (पुं० १.१) प्रयोगः (पुं० १.१) तत्र (अ०) हास्यशृङ्गारयोः (पुं० ७.२) अर्पणविच्छेदनदीपनप्रशमनयुक्तं (न० १.१) *वाक्यं (न० १.१) (कार्यम्) (न० १.१)। करुणवीराद्भुतेषु (पुं० ७.३) समाकाङ्क्षाविच्छेदप्रशमनार्पणदीपनानुबन्धनबहुलं (न०१.१) पाठ्यं (न० १.१) प्रयोज्यम् (न० १.१)।

अन्वय—बीभत्सभयानकयोः (पुं० ७.२) विच्छेदार्पणयुक्तं (न० १.१) इति (अ०)। सर्वेषां (पुं० ६.३) च (अ०) एतेषां (पुं० ६.३) मन्द्रमध्यतारव्यवस्थायां (स्त्री० ७.१) स्थानगतः (पुं०१.१) प्रयोगः (पुं० १.१)। तत्र (अ०) दूरस्थाभाषणे (न० ७.१) शिरसा (न० ३.१) तारं (न० २.१) न (अ०) अतिदूरे (पुं० ७.१) कण्ठेन (पुं० ३.१) मध्यं (न० २.१) पार्श्वतः (अ०) उरसा (न० ३.१) मन्द्रं (न० २.१) पाठ्यं (न० २.१) प्रयोजयेत्। मन्द्रात् (पुं० ५.१) तारं (पुं० २.१) गच्छत्, तारात् (पुं० ५.१) वा (अ०) मन्द्रम् (पुं० २.१) इति (अ०) एषां (पुं० ६.३) त्रयः (पुं० १.३) वर्णाः (लयाः) (पुं० १.३ द्रुतमध्यविलम्बिताश्च (पुं० १.३) रसेषु (पुं० ७.३) उपपाद्याः (पुं० १.३)

---

*पाठ्यं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्र (अ०) हास्यशृङ्गारयोः (पुं० ७.२) मध्यलयः (पुं० १.१) करुणे (पुं० ७.१) विलम्बितः (पुं० १.१) वीररौद्राद्भुतबीभत्सभयानकेषु (पुं० ७.३) द्रुतः (पुं० १.१) [लयः] इति (अ०)।

अर्थ—अब (पाठ्य के गुणों में से) अंगों का वर्णन करेंगे। विच्छेद, अर्पण, विसर्ग, अनुबन्ध, दीपन, प्रशमन—ये छः अंग हैं। विच्छेद का अर्थ है विराम। सुंदर वर्णयुक्त स्वर से रंगमंच को गुंजित करते हुए जो पढ़ा जाता है उसे अर्पण कहते हैं। विसर्ग का अर्थ है वाक्यन्यास, जहाँ वाक्य का त्याग किया जाता है। पदान्तर में अविच्छेद अथवा अनुच्छ्वसन अर्थात् श्वास न लेना यह अनुबन्ध कहलाता है। त्रिस्थान (मन्द्र, मध्य, तार) में शोभित होता हुआ ऊपर चढ़ने वाला स्वर दीपन कहलाता है (दीपन का प्रयोग आरोह में होता है)। तार में पहुंचे हुए स्वरों को विस्वर न बनाते हुए नीचे उतरना प्रशमन कहलाता है। इन छः अंगों का रस में प्रयोग होता है। हास्य तथा शृङ्गार में अर्पण, विच्छेद, दीपन तथा प्रशमन युक्त पाठ्य का प्रयोग करना चाहिये। करुण, वीर तथा अद्भुत रसों में सम आकांक्षा होने पर विच्छेद, प्रशमन, अर्पण, दीपन अनुबन्धन-बहुल पाठ्य का प्रयोग करना चाहिये। बीभत्स तथा भयानक रस में विच्छेद तथा अर्पण से युक्त पाठ्य होना चाहिये। इन सबका मन्द्र, मध्य व तार व्यवस्था में स्थानगत प्रयोग होता है। दूरस्थित व्यक्ति से भाषण करने में शिर से तार, निकटस्थ से वार्तालाप करने में कंठ से मध्य तथा पार्श्वस्थित से वार्तालाप करने में मन्द्र स्वर युक्त पाठ्य का प्रयोग करना चाहिये। मन्द्र से तार में अथवा तार से मन्द्र में जाना चाहिये। इन छः अंगों के जो लय द्रुत, मध्य तथा विलंबित हैं उनका रस में उपपादन करना चाहिये। हास्य तथा शृङ्गार में मध्यलय, करुण में विलंबित लय तथा वीर, रौद्र, अद्भुत, बीभत्स तथा भयानक रस में द्रुत लय का प्रयोग करना चाहिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्टम्

१. संवाद–वैभवम्
२. गीतावली (संगीतलिपिसंवलिता)
३. वृत्तगानपद्धतिनिर्देशः (संगीतलिपिसमेतः)

•

विषयानुक्रमणी

१. संवादाः

(१) संगीतशास्त्राध्ययने संस्कृतज्ञानस्योपकारकत्वम्
(२) राग–स्वरूप–विचारः
(३) गवेषण–गोष्ठी
(४) अनुसन्धान–कार्य–परिचयः
(५) नैराश्य–परिहारः
(६) पारिभाषिक–शब्द–विमर्शः

२. गीतानि

(१) 'सुरभारती जयति'—हमीर-केदार-रागः, चौताल-तालः
(२) 'वन्दे नादतनुम्'–देश-तिलककामोद-रागः, चौताल-तालः
(३) 'नन्दसुतेन वादिता वंशी' भीमपलासी-रागः, त्रिताल-तालः

३. वृत्तगानपद्धतिः

(१) विषयावतारणम्
(२) अनुष्टुप्-शार्दूलविक्रीडित-स्रग्धरा-वृत्तेषु रचितानां कालिदास-मङ्गलपद्यानां गानात्मकरूपम्
(३) वसन्ततिलकावृत्ते निबद्धस्य श्रीमद्भागवतान्तर्गतवेणुगीतस्य गानमयरूपम्
(४) प्रमाणिका-पञ्चचामर-भुजङ्गप्रयात-त्रोटकवृत्तानां गानपद्धतिः
(५) उपसंहारः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१) संवाद–वैभवम्

(१) संगीतशास्त्राध्ययने संस्कृतज्ञानस्योपकारकत्वम्

१—संस्कृतदिवसमुपलक्ष्य आयोज्यमाने अस्मिन् उत्सवे संगीतशास्त्राध्ययने संस्कृतस्य उपयोगितामधिकृत्य किंचित् पुनरवधारणं, कोऽपि पुनर्विचारः स्वचित्तस्य दृढप्रत्ययार्थम् अस्माकं कृते परमोपकारको भवितुमर्हतीति मे मतिः। अत्रोपस्थितानां सर्वेषामनुज्ञाम् अभ्यर्थये।

२—सर्वथा श्लाघनीयोऽयं प्रस्तावः।

३—अत्र श्रोतॄणामपि हितकरः प्रीतिकरश्चायं भविष्यतीति प्रतिभाति मे।

४—भारतस्य पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर-प्रदेशानां प्रतीकस्वरूपा वयमत्र तिष्ठामः। अतोऽस्माकं विचारगोष्ठीयं सार्वभारतिकी भवितुमर्हति।

१—बाढम्, भारतस्य विश्वविद्यालयानां हृदयस्वरूपं काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयस्थिता वयमिति खलु, सुमहदस्माकं दायित्वम्।

२—'हिन्दू' शब्दस्य रक्षार्थे कृतसंरम्भा वयं, किन्तु हिन्दू-शब्द-संश्लिष्ट-नामधारिणि विश्वविद्यालयेऽस्मिन् हिन्दू-शास्त्राणामध्ययनस्य, तत्र श्रद्धाया उद्भावनस्य च या महती दायित्वभावना अत्रस्थानां सर्वेषां जनानां हृदि जाज्वल्यमाना भवितुमर्हति, सा तु सुदूरपराहतैव दृश्यते।

३—नहि परचर्चाया अयमवसरः। अद्य तु स्वकीयदायित्वपालनाय चित्तस्य सर्वथा निश्चलत्वसाधनमेव अस्माकमिष्टम्।

४—अतिलघुकायेऽस्मिन् विभागे अङ्गुल्यग्रगण्या ये केचिद् वयं स्थिताः, तेषां तासां वा स्वकर्तव्यावधारणमेव अस्या गोष्ठ्याः प्रयोजनम्। आकारलाघवात् यदि अत्रस्थानां केषामपि चित्ते किमपि शैथिल्यं, कापि दीनता गन्धमात्रेणापि स्थिता स्यात्, तर्हि तस्या उन्मूलनमपि स्वत एव भविष्यतीति मत्वा स्वसंकल्पस्य दृढता एव साधनीया।

१—अन्धकारस्य तिरस्कारोपेक्षया आलोकस्य वरणमेव वरेण्यम्। भावात्मक-साधनेन अभावस्तु स्वत एव विलीयते, विधेः पालनेन निषेधस्य अपेक्षाऽपि दूरीभवति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२—नाम-मात्र-स्मृति-शेषाणां भरत-मतङ्ग-अभिनव-शार्ङ्गदेव-प्रभृति-मनीषिणां विषय-प्रतिपादनं प्रत्यक्षं तेषामेव वाण्यामधीत्य तेषां हार्दस्य अवधारणमस्माभिः सर्वप्रथमं कर्तव्यम् ।

३—तत्तु भवतु नाम, किन्तु अद्यतनीयलक्ष्यम् उररीकृत्य प्राचीन-मध्ययुगीन-शास्त्राणां प्रतिपाद्यविषयस्य अर्थनिर्णयो व्याख्या वा कर्तव्या, न तु लक्ष्यम् उपेक्ष्यैव ।

४—सत्यम्, किन्तु तत्र महद्भयस्थानमेकं वर्तते ।

१—किं तत् ?

४—प्राचीनानां हृद्गताभिप्राये प्रवेशोऽस्माकम् अवरुद्धोऽपि भवितुमर्हति यदि तेषां सम-कालिकं लक्ष्यम् अद्यतनं लक्ष्यं च अभिन्नं मत्वा तत्र प्रयत्नः क्रियेत ।

४—सर्वथा सत्यम् । दृष्टिनिर्मलीकरणं तु अत्यावश्यकम् । परन्तु तत्र दिव्याञ्जनं कुत्र लभेमहि ?

२—प्राचीनानां हृदि प्रवेशं लब्धुकामैः सर्वप्रथमं, तेषामेव शब्दानामाश्रयणं कर्तव्यम् । स्वकीय-पूर्वनिश्चितधारणाभ्यो मनो मुक्त्वा तेषां वचसामालोके एव अर्थस्यान्वेषणम् उचितम् ।

३—अहो महिमा संस्कृतशब्दानाम् । तत्र व्युत्पत्तिनिमित्तं प्रवृत्तिनिमित्तं चेत्युभयमपेक्ष्य अर्थनिर्धारणं सुफलदायकम् ।

४—सत्यमेव संस्कृतशब्दानाम् अपूर्वा कापि माधुरी, सुमहत् किंचिदर्थ-गाम्भीर्यं, निर्मलदृष्ट्या आविष्करणीयं किमपि सारगर्भत्वं, बुधजनैक-गोचरः कोऽपि चमत्कारः । एते सर्वे गुणाः संगीतशास्त्रेऽपि भृशम् उपलभ्यते ।

१—शब्देष्वेव संगीतस्य दर्शनं, इतिहासः वैचित्र्यं च निहितम् अस्माकं मनीषिभिः । एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः कामधुग् भवतीति पतञ्जलिमुनेरुक्तिः अस्माकं संगीतशास्त्रे सर्वथा समीचीनेति अनुभूयते अस्माभिः ।

२—शब्दानामर्थ-विवेचनं यदि सुष्ठु साधितं स्यादस्माभिस्तर्हि शास्त्रगत-रहस्यानां कुंजिका सुलभा भविष्यतीति नास्त्यत्र सन्देहस्यावसरः ।

३—संगीतशास्त्रगतशब्दभाण्डारस्य त्रिविधा गतिः दृश्यते । केऽपि शब्दा अर्थपरिवर्तनं विना अधुनाऽपि प्रचलन्ति । यथाहि, स्वर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग-ताल प्रभृतयः। केऽपि शब्दा भिन्नार्थे प्रचलन्ति। यथा हि, वादि-संवादि-विवादि-अनुवादि-ग्रह-अंशप्रभृतयः। केऽपि सर्वथा लुप्ताः। यथा हि स्थाय-गीति-धातु-करण-प्रभृतयः।

४—यथार्थेयम् उक्तिः। तत्र येषु शब्देषु अर्थपरिवर्तनं बाह्यदृष्ट्या न दृश्यते तत्रापि व्युत्पत्तिनिमित्तस्य प्रवृत्तिनिमित्तस्य च बोधेन नवीनम् अर्थज्ञानं भवितुमर्हति। 'वादन' शब्दो वाद्यशब्दो वा प्राचीनाभिन्नार्थे प्रचलति। किन्तु तत्र 'वद्' धातोर्णिजन्त-प्रयोगेण स्वयं वदनं न कृत्वा वाद्ययन्त्रद्वारा वादनमभिप्रेतम्।

१—अहो कियान् अस्माकं कार्यभारः। प्रचलित-संस्कृत-शब्दानां व्युत्पत्ति-प्रवृत्तिनिमित्तापेक्षया अर्थान्वेषणं, तत्र अर्थपरिवर्तनस्य स्वरूप-निर्धारणं, लुप्तशब्दानामुद्धारः, प्रचलितदेशजशब्दानामुचितस्थान-निर्धारणं च।

२—किं बहुना, अस्मिन् गुरुतरे कार्ये संस्कृत-भाषाज्ञानमनिवार्यरूपेणावश्यक-मिति एव अद्यतनः प्रकृतो विषयः, इयमेव प्रस्तुता वार्ता।

३—अर्थसंकोच-अर्थविस्तार-अर्थविपर्यय-अर्थलोपप्रभृतिभिः दुरवगाह-कान्तारभूते शब्दसमूहे नवीनपथनिर्माणं सुदुष्करमेव।

४—किन्तु नहि तत्र नैराश्यस्य पराभवस्य वा औचित्यम्।

१—उत्साहं धारयन्तः,

२—श्रद्दधानाः सन्तः,

३—तप आचरन्तः,

४—सत्यान्वेषणपथि चरिष्यामः। तत्रैकोऽपि चरणक्रमः संतोषावहो भविष्यति। इति शम्।

(२) रागस्वरूपविचारः

१—रागो हि नाम उज्ज्वलतमं रत्नं भारतीयसंगीतपद्धतेः। तदद्य रागमधिकृत्य काऽपि शास्त्रीय-चर्चा प्रवर्तताम् अस्यां गोष्ठ्याम्।

२—रागशब्दस्य अर्थद्वयं सुविदितं, रंजकता, स्वरसन्निवेशश्च। प्रथमार्थे—शब्दस्यास्य प्रयोगो नाट्यशास्त्राद् उदाहरामि—'यस्मिन् वसति रागस्तु यस्माच्चैव प्रवर्तते'।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरसन्निवेशरूप–रागशब्दस्य साङ्गोपाङ्ग-प्रयोगो मतङ्गस्य बृहद्देश्यां सर्वप्रथमं दृश्यते।

३—उक्तं च मतङ्गेन :—

रागमार्गस्य यद्रूपं यन्नोक्तं भरतादिभिः।

रागस्य सामान्यलक्षणमपि तत्रैव सर्वप्रथममुपलभ्यते। यथा —

"योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः।
रञ्जको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः"॥

४—रागद्वेषस्य द्वन्द्वं तु सुविदितमेव। यः स्वरसन्निवेशः चित्तं रञ्जयितुं समर्थः, यो वा श्रोतृचित्तं भावविशेषे निमज्जयितुं प्रभवति स एव रागशब्दवाच्यः। रागद्वेषस्य द्वन्द्वात् चित्तस्य मोचको हि सः।

१—बाढम्, सत्यमुक्तं भवद्भिः। राग-शब्दस्य प्रेमार्थम् अधिकृत्य बहु शोभनमुक्तंनृपतिकुम्भेन। तस्य श्रावणे लुब्धं मे मनः।

भवानीपादपद्मानुरागरञ्जितचेतसा ।
क्रियते राजराजेन विशुद्धा रागपद्धतिः॥
यो विरागी स्मृतः कामविकामीकरणे बुधः।
तं रागिणं गिरिसुतावदने नौमि शंकरम्॥
रागो रामाश्रयत्वेन, वर्धते प्रायशो यतः।
ततो मे वर्धतामेष, रागो रामाश्रयः सदा॥

२-अहो कियात् चमत्कारो यमकस्य। साधु, साधु। स्वरसन्निवेशस्य विशिष्टत्व–व्यंजनाय प्रेम-वर्ण-प्रभृति-विभिन्नार्थ-समन्वितो रागशब्दः प्रयुक्तो मनीषिभिः चिरन्तनैः।

३—स्वरसन्निवेशे वैशिष्ट्यस्य आधानं भवति ग्रह-अंश प्रभृतिभि-र्दशलक्षणैः त्रयोदशलक्षणैर्वा।

४—रागस्य नादमयं देवतामयं चेति रूपद्वयं कल्पितमस्माकं शास्त्रेषु। तत्र देवतामयरूपस्य निरूपणे तन्त्रस्य प्रभावः सुस्पष्टं परिलक्ष्यते।

१—स तु परिलक्ष्यते एव। पाश-खड्ग-अंकुशप्रभृत्यायुधानां यान-वाहन-वर्ण-प्रभृतीनां च तत्र ग्रहणेन तान्त्रिकपद्धत्यनुसारिणी उपासना एव सूचिता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२—अहो भवद्भ्यां तु रागध्यानस्य महान् विषयोऽस्माकं स्मृतिपथम् आनीतः। यथा तान्त्रिकपद्धत्यनुसारीणि रागध्यानानि सुविपुलानि उपलभ्यन्ते तथैव नायक-नायिका-भेदानुसारीणि अपि बहुलानि दृश्यन्ते। सुविस्तरोऽयं रागध्यानस्य विषयः।

३—अहो, रागध्यानस्य नामश्रवणमात्रेण भैरवरागस्य ध्यानमारोहति मम स्मृतिपथम्।

गङ्गाधरः शशिकलातिलकस्त्रिनेत्रः
सर्पैर्विभूषिततनुर्गजकृत्तिवासः ।
भास्वत्त्रिशूलकर एष नृमुण्डधारी,
शुभ्राम्बरो जयति भैरव आदिरागः।

किन्तु समयसांकर्येण बिभेति मे मनः। विपुलकार्यभरावनता अत्रत्याः सभासदः।

४—सत्यम्। अपरं कमप्यवसरमवलम्ब्य रागध्यानमधिकृत्यैव एका गोष्ठी योजनीया। अद्य तु रामरक्षा-स्तोत्रस्य उपान्त्यपद्यस्य आदर्शानुसारेण निर्मितं रागस्तुतिपरं पद्यमेकं श्रावयितुमिच्छामि। तदनन्तरं गोष्ठ्या विसर्जनं भवतु इति सुष्ठु प्रतिभाति मे।

१—तदेव भवतु नाम।

४— रागो रञ्जनकृन्मुदा विजयते, रागं हि याचे सदा
रागेणैव कृतं मनः सुविमलं, रागाय तस्मै नमः।
रागान्नास्ति सुगायनं परतरं, रागस्य सेवी न्वहं
रागे चित्तलयः सदा भवतु मे, भो राग! मां रञ्जय॥

(३) गवेषण—गोष्ठी

१—अद्य खलु महानन्दस्य अवसरः समुपस्थितः। अनेके संस्कृतानुरागिणः संगीतानुरागिणश्च सामाजिकाः अत्र समवेताः। अस्मिन् सहृदय-समाजे अस्माकम् अनुसन्धानकार्यस्य किञ्चिद् विवरणं यदि प्रस्तूयेत तर्हि संस्कृतदिवसस्य अनुष्ठानम् इदं सुष्ठुतरं भवितुमर्हतीति मन्ये। किं तत्र भवतां भवतीनां च अनुज्ञा वर्तते वा न वा ?

२—कोऽत्र सन्देहः। अस्माकम् अनुसन्धानकार्ये संस्कृतभाषाज्ञानस्य कियदुपयोगित्वं तत्तु अनेनैव विवरणेन प्रकटीकृतं स्यात्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३—बहु शोभनम् । अत्रास्माकं कार्यविवरणस्य अवतारणेऽत्र प्रस्तोता कः भविष्यति ?

४—अत्रभवती (इन्द्राणी देवीं प्रति निर्देशयन्ती) एव प्रस्तोत्री स्यादिति मम मतम् ।

५—बाढम् ।

१—तदेव भवतु नाम । 'आज्ञा गुरूणामनुल्लङ्घनीया' । अत्रभवत्याः अनुसन्धान-कार्यस्य विषयनिर्देशाय एव सर्वप्रथमम् अनुज्ञां याचे ।

४—तथास्तु ।

१—अत्रभवती मुसलगाँवकरोपाधिधारिणी विमलादेवी अस्मिन् विभागे संस्कृताध्यापिकारूपेण नियुक्ता । संगीतशास्त्रे विभिन्नदर्शनशास्त्राणां योगदानमिति विषयमधिकृत्य अत्रभवती अनुसन्धानकार्ये संलग्ना ।

२—अहो महान् गम्भीरोऽयं विषयः । अत्र किञ्चित् श्रोतुं समुत्सुका इयं सभा इति प्रतिभाति मे ।

४—संगीतशास्त्रे योगस्य तन्त्रस्य च विपुलः प्रभावो दृश्यते । तत्र नाद-महिमा, आहतानाहतनादभेदौ, पिण्डे आहतनादस्य उत्पत्तिक्रमः, षट्-चक्र-वर्णनम्, स्वराणां वर्ण-द्वीप-बीजाक्षरेत्यादि-निरूपणम्, राग-रागिणीनां देवतामयरूपस्य ध्यानपद्धतिः इत्यादिरूपेण हठयोगस्य तान्त्रिकोपासनायाश्च समावेशो भूरितरमुपलभ्यते ।

३—तत्र वैदिकविचारधाराया; कोऽपि अवशेषो वर्तते वा न वेति ज्ञातुं कुतूहलाविष्टं मे मनः ।

४—स तु वर्तते एव । स्वराणामृषिदैवतच्छन्दसां निर्देशः, मूर्च्छना-तानानां यज्ञनामानि, सृष्टिक्रमनिरूपणम्, वाक्-प्राण-मन-इतिकरणत्रयस्य स्वीकारः इत्यादिरूपेण वैदिक-सरणेः अनुसरणं सुस्पष्टमेव ।

५—आम् ।

१—साङ्ख्य-पूर्वमीमांसा-उत्तरमीमांसादिदशनानां संगीतशास्त्रे किमपि स्थानं दृश्यते वा न वा इति श्रोतुं समुत्सुका वयम् ।

४—त्रिगुणसिद्धान्तः, सर्वविषयेषु बहुशो भेदोपभेदगणनं च साङ्ख्य-दर्शनस्यैव प्रभावं द्योतयतः; पूर्वमीमांसातो दृष्टादृष्टफलस्य विचारः, उत्तरमीमांसातो जीवब्रह्म-निरूपणम् इत्यादिरूपेण एतेषां दर्शनानां योगदानं भृशम् उपलभ्यते ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५—एवम् ।

१—अत्रभवती कालविण्टोपाधिधारिणी विद्यादेवी सुस्वरा संस्कृतज्ञा च। भरत-नाट्यशास्त्रे गान्धर्वनिरूपणपरस्य अध्यायषट्कस्य विश्लेषणं व्याख्यां च अधिकृत्य अनुसन्धाने व्यापृता अत्रभवती।

२—अहो। अतिदुरूहमिदम् अनुसन्धानकर्म।

३—सत्यं भणितं भवता। नाट्यशास्त्रस्य सूत्रात्मिकया रीत्या, तद्व्याख्यातॄणामभिनव-गुप्त-पादानां च व्याख्यायाः पाठभ्रंशेन कान्तारभूते ग्रन्थे अर्थावबोधाय पथनिर्माणं अतिशयदुष्करमिति स्वानुभवेन जाने।

४—तत्तु दुरूहत्वं ममापि अनुभवपथम् आगतम्।

१—दुरवगाहस्य ग्रन्थस्यास्य अध्ययने यावत्परिश्रमः अपेक्षितः, तस्य तुल्यपरिमाणेन साफल्यं भवितुमर्हति वा न वेति प्रश्नेन आकुलितं मे मनः।

२—सर्वथा अयुक्तोऽयं प्रश्नः।

३—नहि प्रश्नः कोऽपि दोषावहः।

४—प्रश्नविमर्शेन तु स्वचित्तस्य दृढतैव साधनीया। ततो हेतोः प्रश्नानां सदैव स्वागतं विधेयम्।

५—एवमेव।

३—भरतनाट्यशास्त्रस्याध्ययनं तु संगीतशास्त्रस्य गम्भीरालोचने भित्तिस्वरूपम्; भित्तिं विना न कोऽपि प्रासादो निर्मितो अद्यावधि केनापि।

४—केवलं महिमख्यापनेन न हि किमपि सिद्ध्यति।

३—महिमख्यापनाय नास्ति कोऽपि संरम्भोऽत्र। किन्तु स्वर—श्रुति—ग्राम—मूर्च्छना-रागजननी—जाति-गीतक-ध्रुवा-वाद्यभेद—इत्यादिविषये मौलिकचिन्तनस्य यो निर्यासो नाट्यशास्त्रे उपलभ्यते तस्यावगमार्थं कृतपरिश्रमाः न कदापि नैराश्यं वैकल्यं वानुभवितुमर्हन्ति।

५—सत्यम्।

३—नाट्यशास्त्रे प्रवेशद्वारमुद्घाटयन्ती अभिनवभारती पाठभ्रंशदोषेण यद्यपि अंशमात्रेणैव अवगम्यते तथापि तदर्थं कृतः परिश्रमः महते लाभाय एव भवितुमर्हति।

१—सुष्ठु। भवत्याः कठोर-परिश्रमेण संगीतशास्त्रे अन्वेषणक्रमः समृद्धिमवाप्स्यति इति अस्माकं दृढा आशा। अत्रभवान् रामनाथन् महोदयः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तिरुपति–स्थितात् वेङ्कटेश्वर-विश्वविद्यालयात् स्नातको भूत्वाऽत्र आगतः। साम्प्रतं संगीतरत्नाकारे गीतनिरूपणस्य संशोधने व्यापृतोऽत्र-भवान्।

३—सर्वथोपयोगी ह्ययं विषयः।

२—संगीतरत्नाकरस्तु रत्नानामाकर एव।

४—गीतशब्देन कोऽर्थः अवबुध्यते भवता ?

२—सामान्यरूपेण गीतशब्देन कण्ठे गायन—व्यापारः तद्व्यापारस्य विषयो वा गृह्यते, किन्तु शास्त्रीयरूपेण गीतशब्दः स्वर-ताल-पदात्मके गान्धर्वे स्वरांशस्य मुख्यतया बोधकः। गौणरूपेण पदांशोऽप्यस्मिन् समाविष्टः।

३—एवम्। तर्हि गीतनिरूपणं संगीतरत्नाकरस्य स्वराध्याये, रागाध्याये, प्रकीर्णकाध्याये, प्रबन्धाध्याये च उपलभ्यते।

२—सत्यम्। इदम् अध्याय-चतुष्टयमेव ममाध्ययनस्य गोचरम्।

४—संगीतरत्नाकरस्य स्वराध्यायस्य द्वितीये प्रकरणे पिण्डोत्पत्तेर्यन्निरूपणं दृश्यते तत्तु सर्वथैव विलक्षणम्।

२—बाढम्। तत्र तु वेदान्तानुसारेण ब्रह्म-जीव-सृष्टिनिरूपणम्, आयुर्वेदानुसारेण च मनुष्यदेहस्य गर्भाधानादारभ्य विकासक्रमवर्णनं तस्याङ्गोपाङ्गनिरूपणं च संगीतरत्नाकरस्य अनन्य वैशिष्ट्यम्।

५—अतिशयरोचकोऽयं विषयः।

१—शीतलोपाधिधारिणी श्रीमती भूपेन्द्रमहोदया सुशारीरी सुगायनी च। अत्रत्ये महिला-महाविद्यालये संगीतप्राध्यापिकापदे नियुक्ता सती भारतीयसंगीते भातखण्डेमहोदयस्य अवदानस्य मूल्याङ्कनमधिकृत्य गवेषणकर्मणि संलग्ना अत्रभवती।

२—सर्वथा आधुनिकोऽयं विषयः।

४—आधुनिके सत्यप्यस्मिन् विषये गवेषणसौष्ठवाय अत्रापि संस्कृतज्ञानमपेक्ष्यते एव।

५—सत्यम्।

३—वर्तमानयुगे भारतीयसंगीतस्य शिक्षणक्रमे शास्त्रीयाध्ययनक्रमे च भातखण्डेमहोदयानां अवदानं तु सुविदितमेव।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५—किन्तु भातखण्डेमहोदयस्य कृतित्वं निन्दायाः प्रशंसाया वा पात्रं जातम् अद्यावधि। निष्पक्षरूपेण तस्याध्ययनमेव मम प्रयोजनम्।

४—आम्, सम्यग ज्ञातमधुना। (इन्द्राणीमवलोक्य) भवत्याः कार्यं-विवरणमेव साम्प्रतम् आकांक्षितम् अस्माकम्।

३—(इन्द्राणीमवलोक्य) अत्रभवत्याः परिचयस्तु (विमलादेवीं निर्दिश्य) भवत्या एव कथनीयः।

४—चक्रवर्त्युपाधिधारिणी इन्द्राणी महोदया सितारवादने कुशला, वादन-विषये स्नात्तकोत्तरोपाधिनाऽलंकृता च। भारतीयसंगीतपद्धत्यां स्वरस्य रागस्य च शास्त्रीयप्रतिपादनस्य विकासक्रमे वाद्यानां योगदानस्या-विष्करणमेव भवत्या साध्यम्।

२—अतीवगरिष्ठोऽयं विषयः।

१—सत्यम्। सारिकायुक्तेषु, सारिकाविहीनेषु च ततवाद्येषु, एवमेव सुषिर-वाद्येष्वपि ग्राम-मूर्च्छनापद्धतिः कथं व्यवहृता आसीत्, तत्पद्धते-रुच्छेदकाले च वाद्येषु किं किं परिवर्तनं जातं, रागाणां मार्गदेशीरूपेण विभाजनं वाद्यैः सह कथं सम्बद्धम् इति प्रश्नत्रयमेव मुख्यरूपेण मम गवेषणगोचरम्।

३—किन्त्वत्र निर्भ्रान्तोत्तर-लाभस्तु सुदुष्कर एव।

१—सुदुष्करत्वं हि नैवात्र पराभवस्य कारणम्।

२—बाढम्। प्रभूतेन तपसाऽत्र सत्योपलब्धिः स्यादेव।

४—वाद्यानामितिहासस्तु वैदिककालात् प्रारभ्य सुदीर्घकालव्यापकः।

१—एवमेव। अध्ययनक्षेत्रस्य मम विपुलविस्तरस्तु कालेन देशेन च सिद्धः।

३—भवत्याः प्रयाससाफल्य-कामा वयम्।

१—अनुगृहीताऽस्मि। किन्तु अस्माकं गम्भीर-वार्तालापेन सभा इयं श्रान्ता इव प्रतिभाति।

२—एवमेव। तर्हि श्रमापनोदनाय अपरं किमपि गानादिकं भवतु नाम।

सर्वे—तदेव भवतु, तदेव भवतु।

(४) अनुसन्धान-कार्य-परिचयः

१—अहो! धन्योऽयं कालः। एकवर्षानन्तरं पुनरेकवारम् अस्मिन् रङ्गे सम्मिलिता वयम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२—किन्त्वत्रान्तरे बहूनि परिवर्तनानि घटितानि अस्माकं शोधकक्षे।

४—तानि तु घटितान्येव। स्वामिनिजबोधमहाभागाः सेवातः अवकाशं लब्ध्वा साधनारताः; शृङ्गिमहोदयास्तु विश्वविद्यालयानुदानायोगस्य विशिष्टयोजनायां संलग्नाः, तत्पदं च गिरिमहोदया अलंकुर्वन्ति।

३—एवमेव।

१—सत्यम्। किन्तु एता घटनाः अस्यै सभायै कथं रुचिकरा भवेयुः ?

३—युक्तमुक्तं भवद्भिः।

४—तर्हि सदोरञ्जनाय किं कर्तव्यम् ?

१—सदसो रञ्जनं स्याद् वा न वा, किन्तु शोधकक्षेऽस्मिन् किं किं कार्यं सम्पद्यते, तस्य स्वल्पोऽपि परिचयः अत्रोपस्थितानां समेषां कुतूहल-निवारणाय प्रभविष्यति।

२—तदेव भवतु, नाम।

१—अत्रभवानेव शुभारम्भं विदधातु।

२—बाढम्। अप्रकाशित-संगीत-ग्रन्थानां मूलप्रतीनां प्रतिलिपीनां वा संग्रहः, तेषां विषयवस्तुविश्लेषणं च इति प्रथमम् अङ्गम् अत्रत्यस्य कार्यसमूहस्य।

१—एवमेव। तत्र विषयवस्तुविश्लेषणे प्रकाशितग्रन्थाः अपि समाविष्टाः। विश्लेषणस्य मुख्यप्रकारस्तु शब्दसूचीनिर्माणम्।

४—भरत-नाट्यशास्त्रस्य समग्रा शब्द-सूची निर्मिताऽस्माभिः।

२—अत्राधुनिकग्रन्था अपि न अनाद्रियन्ते। भातखण्डे-महोदयस्य हिन्दुस्तानीसंगीतपद्धतेरपि शब्दसूची प्रस्तुता।

३—अत्रभवान् विश्वविद्यालयानुदानायोगस्य योजनायां कस्मिन् कर्मणि रताः ? (शृंगिमहोदयं निर्दिश्य) इति श्रोतुं लालायितं मे मनः।

१—अहो अन्यत्कार्यविवरणस्य पूर्णतायाम् असंपन्नायामेव अयं प्रश्नः उपस्थापितो भवद्भिः।

४—किं तत्रानौचित्यम् ?

३—विश्वविद्यालयानुदानायोगस्य योजनान्तर्गतं कार्यं तु शोधकक्षस्यास्य गरिमवर्धनायैव प्रभवितुमर्हति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२—सुष्ठु ! तर्हि कथयामि संक्षेपेण। संगीतरत्नाकरस्य आंग्लभाषायामनुवादपरमिदं कार्यम् ।

३—एवम् ।

१—केवलम् अनुवादमात्रमांग्लभाषाविदां बोधाय अलंभविष्यति वा न वेत्यत्र शङ्कितं मे चित्तम् ।

२—अर्थावबोधाय तु सुविपुलाः टिप्पण्यः, व्याख्यापरा टीका च आंग्लभाषायामेव निवेश्यन्ते ।

३—आम् ।

४—(भट्टमहोदयम् प्रति अवलोक्य) संगीतविषयाणां प्रकाशिताऽप्रकाशितसंस्कृतग्रन्थानां या बृहती सूची भवद्भिर्निर्मिता सा तु विस्मृतैव ।

१—न ह्यत्रैकैकस्य कार्यस्य वर्णनं प्रतिज्ञातम् । द्वित्राणि उदाहरणानि एव बुधजनानां दिक् सूचने समर्थानि ।

२—सत्यम् । किन्तु अत्र सम्पन्नस्य, सम्पद्यमानस्य, सम्पत्स्यमानस्य च कार्यकलापस्य का उपयोगिता इति विषये किञ्चिदवश्यं वक्तव्यम् ।

३—इदं हि अति सुन्दरं प्रतिभाति मे ।

१—भारतीयसंगीतशास्त्रे अनुसन्धानकर्मणः प्रस्तावनस्वरूपमिदं सर्वम् । गम्भीरानुसन्धानार्थं सहायिका सामग्री प्रस्तूयते अनेन ।

२—सा च प्रस्तूयते एव । अत्रत्यविभागस्थाः शोधच्छात्राः, देशान्तरादागता अनुसन्धित्सवश्च अनया सामग्र्या उपक्रियन्ते इति स्वानुभवेन जानीमहे ।

४—सुष्ठु भणितं भवद्भिः । किन्तु अधुना भाविकार्यक्रमाय अवकाशो देय इति मन्ये, यतो हि विपुलकार्यभरावनतः अस्माकं श्रोतृसमाजः ।

सर्वे—अवश्यं देयः अवकाशः ।

(५) नैराश्य-परिहारः

१—हा धिक् ! किं करोमि ? क यामि ? का मे गतिः ?········खण्डितः पाठोऽध्येयग्रन्थानां, दुरूहं तात्पर्यम् , लुप्तप्राया च लक्ष्येण सह संगतिः । एतेषामध्ययने मस्तकभञ्जनं विहाय यदि गानस्याभ्यासमात्रम् अकरिष्यम्, अद्य प्रभृत्यपि कुर्यां वा, तर्हि प्रमोदावहं साफल्यं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोकरञ्जनं, कीर्त्तिः, अर्थलाभः—सर्वमेव अञ्जसा करतलगतं स्यात्। किन्तु······प्रारब्धयोगेन निपतिताऽस्मि घोरेऽस्मिन् दुस्तरसागरे। 'इतो नष्टस्ततो भ्रष्टः'—इत्येव मे शोचनीया दशा। कं पृच्छामि ? कं वा शरणं गच्छामि ? को वा ममावस्थाम् अवगमिष्यति ?

(प्रविशन्तं कमपि महापुरुषं साश्चर्यं पश्यति)

२—वत्से ! कथम् उद्विग्नाऽसि ?

१—(ससम्भ्रमम्) आर्य ! को भवान् ऋषिकल्पः। वात्सल्यं स्रवन्निव, ज्ञानगौरवं व्यञ्जयन्निव, सौम्यत्वालोकं विकीर्णयन्निव, सुधावर्षिण्या गिरा कर्णकुहरमापूरयन्निव, गाम्भीर्यस्य सीमेव, आचार्य-पदस्य महिमेव, दर्शनमात्रेण हृदयम् आह्लादयन्निव, ममाकुलताहरणाय अवतीर्णो देवतात्मा इव प्रतिभाति ? आत्मपरिचयज्ञापनाय प्रसीदतु मयि भवान्।

२—बालिके ! येषां नाम-जन्म-कर्म-देशादिपरिचयः आकलनयोग्यतामतीत्य स्थितः, येषां च कुलादिगतविशेषम् आगमसम्प्रदायधारायामेव विलीनं, तेषामेव विगलिताशेष-विशेषाणां, प्रज्ञामात्रशरीरिणां, प्रतिभामात्रोपजीविनाम् अन्यतमोऽहम् एतावन्मात्रमलं ममात्मपरिचयख्यापनाय।

१—प्रणताऽस्मि आर्य ! प्रथमदर्शने सम्भ्रमवशेन मूढमतेर्मम प्रणतिनिवेदने त्रुटिर्जाता। तत् क्षम्यताम्।

२—वत्से ! बालानामपराधे दृष्टिनिक्षेपाद् विरता एव गुरुजनाः। आचार-दोषस्य ग्लानिं विहाय तव क्लेशस्य कारणमेव कथय सद्यः।

१—हा कष्टम् ! आर्य ! घोरे कर्मणि नियोजिताऽस्मि दैवदुर्विपाकेन।

२—किं तत् ?

१—भरतमुनेर्गान्धर्व-प्रतिपादनमधिकृत्य पीएच. डी. त्युपाधिकृते शोध-प्रबन्धलेखने प्रवृत्ताऽहम्।

२—तत्तु परमसन्तोषावहम्। तत्र कष्टस्य-का कथा ?

१—आर्य ! अभिनवगुप्तपादानां विवृतिं विना भरतनाट्यशास्त्रमतीव दुर्बोधम्। विवृतिश्च पाठभ्रंशेन दुरूहा।

२—एवम् ? यदि सम्यक्पाठोद्धारार्थम् अप्राप्या सामग्री, तर्हि यावानेव पाठ उपलभ्यते तावतैव कार्यनिर्वाहः साधयितव्यः। 'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः' इति न्यायेन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१—किन्तु, तत्र गुरुतरः परिश्रमोऽपेक्षितः। तस्माच्च बिभेमि।

२—अयि मुग्धे! कृतपरिश्रमाणामेव शास्त्रमर्मावबोधो जायते, इति कथं विस्मृतं त्वया!

१—परिश्रमे कृतेऽपि तेन किं सेत्स्यते, सिद्धेऽपि यत्किञ्चिदर्थे को वा तस्य महिमानं ज्ञास्यति इत्यत्र भ्रान्ता मे मतिः।

२—'बुद्धिनाशात् प्रणश्यति' इति गीतावचनं स्मारं स्मारं व्यवसायात्मिका बुद्धिरेव साधनीयाऽऽदौ।

१—तां तु कुत्र लभेय आर्य! न हि सा आपणे विक्रीयते।

२—बाढम्। स्वधर्मप्रत्यय एव तस्या जन्मस्थानम्। युक्तायुक्तविवेक एव तत्र क्रययोग्यता, अध्यवसाय एव तत्र मूल्यम्।

१—सत्यं कथयत्यार्यः। स्वधर्मस्य निर्णये जाते तु बुद्धिनाशस्य आशङ्काऽपि सुदूरपराहता स्यात्। किन्तु को मे स्वधर्मः?

२—संस्कृतभाषा यया अधीता, गान–कौशलमपि ययाऽर्जितं तस्याः स्वधर्मस्तु हस्तामलकवत् सुस्पष्ट एव।

१—एवमार्य?

२—अथ किम्? शास्त्रगतार्थानां सम्यगवबोध एव साधनमृष्यृणान्मुक्तेः। तत्रार्जिताधिकाराणां स्वधर्मस्तन्मुक्तिसाधनमेव।

१—सुदुष्करेऽस्मिन् कर्मणि कथमुत्सहे आर्य! उपयुक्तं सम्बलं विना?

२—किं ते गुरवो नो समर्था सम्यगावलम्बनप्रदाने?

१—सामर्थ्ये तु नहि संशयावकाशः, किन्तु कर्मबाहुल्येन अस्माकमाचार्या स्वल्पकालपर्यन्तमेव प्रतिदिनमध्यापनार्थमवकाशं लभते। विपुलो हि शास्त्रवारिधिः, मितो हि आचार्यसकाशाद् अध्ययनस्य कालः। कथं पारं गमिष्यामीति विचिन्त्य आकुलमतिरहम्।

२—आचार्यस्य कर्म तु चक्षुरुन्मीलनमेव। नहि करं गृहीत्वा नयनानयनम्। उन्मीलितदृष्टिना जिज्ञासुना स्वयमेव पुष्पफलाहरणार्थं शास्त्रोपवने सञ्चरितव्यम्।

१—सम्यग्भणितमार्येण। परावलम्बनं विहाय स्वावलम्बनसाधने प्रवृत्ता भविष्यामि। किन्तु······संगीतशास्त्रविभागाद् बहिः सामान्यलोके नहि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोऽपि गवेषणकर्मण्यस्मिन् प्रेरयति अस्मान्। उत्साहवैरल्येन मन्दोद्यमाऽहमार्य!

२ – लोकात् प्रोत्साहनस्याशैव त्याज्या। किं न जानासि यन्महर्षिर्व्यासोऽपि लोकगतिं दृष्ट्वा अन्वशोचत्—

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष नहि कश्चिच्छृणोति मे।

लोकस्य गतिस्तु सत्कर्मण्यध्यवसायवतां कदाऽपि अनुकूलाऽऽसीत्, भविष्यति वा इति वक्तुं न शक्यते। तस्मात् हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वा स्वधर्मपालनमेव श्रेयः।

१—अर्जुनमनुसृत्य "नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा" इति वचने प्रवृत्ताऽपि स्वकीय-गानकौशलस्य रक्षार्थमार्यस्यानुज्ञां विना पश्चात्पदामेव अनुभवाम्यात्मानम्।

२—अनुज्ञा तु स्वतःसिद्धा। शास्त्राध्ययनं हि गानकौशलस्य साधकमेव, नहि बाधकम्।

१—यद्येवमाश्वासयत्यार्यः तर्हि नितरां धन्याऽस्मि भवतो दर्शनलाभेन।

२—वास्तविको जिज्ञासुर्नहि मार्गभ्रंशमर्हतीति भगवतः प्रतिज्ञैवात्र कारणं तव नैराश्यपरिहारे। अर्जुनविषादयोगस्यापि स्वधर्मपरिनिष्ठयैवोपसंहारो विश्वविश्रुतः। उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत।

१—करिष्ये वचनं तवार्य! (प्रणमति) (महापुरुषं निर्गच्छन्तं सानन्दास्रं विलोकयति)

(६) पारिभाषिक-शब्द-विमर्शः

१ –अहो! नितरां सुभगा इयं गोष्ठी। धन्या ह्यस्माकं भगिनी इन्द्राणी देवी तिष्ठत्यत्र।

२—किं भो! धन्यतायाः किमत्र कारणम्?

१—किं न जानासि अङ्ग! यद् भगिनीयं स्वकीयं शोधप्रबन्धं सुष्ठु समाप्य प्रस्तुतवती मासचतुष्टयपूर्वम्। सुभद्रादेव्याः पथानुसारिणीयम्।

२—ओम्। ज्ञातम्! शोधसागरे निमग्नानाम् उन्मज्जननिमज्जनवशात्कण्ठा-गतप्राणानां तु शोधप्रबन्धसमापनमेव सौभाग्यस्य परमोत्कर्ष इव प्रतीयते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४—हले ! भुक्तभोगिन एवात्र प्रमाणम् । त्वं तु Diploma in Music Appreciation—पाठ्यक्रमे संगीतश्रवणकौशलसम्पादन एव कृतकृत्यताम् अनुभवन्ती कथं ज्ञास्यसि शोधरतानां दुर्भरोद्वेगम् ?

५—अलमत्र विवादेन । कश्चित् चेतःश्रवणमङ्गलः संवाद एव प्रचलतु । नो चेत् समवेताः सामाजिका अत्र किं भावयिष्यन्ति ?

१—सत्यं कथयति भगिनी । मिथोऽस्माकं संवादोऽस्तु, गम्भीरशास्त्रवचनानामनुवादोऽस्तु नः सम्भाषणे ।

२—संवादार्थं तु प्रथमं वादोऽपेक्षितः ।

३—भवानेवात्र वादी भवतु नाम ।

४—आः, त्वमपि प्रगल्भेव जल्पसि ?

५—इयमवहेलापात्रमिति कथं मन्यते त्वया ? डिप्लोमा—पाठ्यक्रमेऽपि संगीतशास्त्रस्य मूलभूतविषयाणां परिचयस्तु जायत एव ।

१—नूनमियं लघुभगिन्यपि संवादेऽस्मिन् भागधेयस्याधिकारिणी भवितुमर्हति

२—अलमतिप्रसङ्गेन । अधुना इन्द्राणीदेव्याः समक्षं कतिपयप्रश्ना निवेदनीया अस्माभिः ।

३—तद् विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन, सेवया । तदत्र प्रणिपातं, सेवां च विहाय, परिप्रश्न एव श्रेयान् अस्माकं कृते ।

४—चपलाऽसि खलु मुग्धे ।

५—दुग्धमुग्धाननेयं क्षन्तव्या ।

१—एकः प्रश्नस्तु मम चेतः समुद्वेलयति । तन्निवेदने भवत्या अनुज्ञा वर्तते वा न वा ।

५—बाढम् । कथय निर्भयम् ।

१—सम्पन्नशोधप्रबन्धा भवती कृतार्थमात्मानं मन्यते वा न वा ।

५—साधु पृष्टम् । कृतार्थतायास्तु नास्ति काऽपि कथा । जीवनव्यापि हि अनुसन्धानकर्म । शोधप्रबन्धलेखनं तु तत्र दीक्षास्थानीयमेव । वास्तविकं शोधकर्म तु तदनन्तरमेव प्रारभ्यते ।

२—अहो ! अनुसरणीया भवत्या ज्ञाननिष्ठा ।

४—एवमेव । कुत्र लब्धेयं भवत्या ?

२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५—पीएच० डीत्युपाधिं प्रति लौल्यं विहाय सत्यानुसन्धाने दृढमतिरनायास-मेव उद्भूता अस्मिन् संगीतशास्त्र-विभागे कार्यारम्भानन्तरम्। सत्यस्यानन्तविस्तरः क्षितिज इव यदा दृष्टिपथम् आक्रामति तदा शोध-प्रबन्धलेखनस्य लघुताया बोधः सहजां विनम्रतां जनयति।

४—बहु शोभनम्! अस्माकं कृते भवत्याः कोऽपि निर्देशो यदि स्यात् तर्हि तस्य ख्यापनरूपोऽनुग्रहो विधातव्यः।

५—साधु उक्तम्। नितरां तुष्टाऽस्मि युष्माकं जिज्ञासां दृष्ट्वा। एक एव निर्देशो यदि अपेक्षितः तर्हि पारिभाषिकशब्दानाम् अर्थविकासस्येतिहासं प्रति ध्रुवा दृष्टिः अनुसन्धित्सुभिः आधेया इत्येव वक्तुमिच्छामि।

२—कतिपयैरुदाहरणैर्यदि स्वीयमभिप्रायं स्पष्टीकरोतु भवती, तर्हि उपकृताः स्याम।

५—बाढम्। अधिकारि-श्रोतृसमुदाये स्वीयाभिप्रायनिवेदनं तु परमसुखावहम्।

३—अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं शिरसि मा लिख, मा लिख मा लिखेति प्रसिद्धा सूक्तिः।

५—एवमेव। त्रीण्युदाहरणान्यत्र सद्यो मनसि आगच्छन्ति।

१—श्रवणोत्सुका वयम्।

५—स्वरशब्दस्तानशब्दः श्रुतिशब्दश्च। प्रथमं स्वरशब्दमधिकृत्य किञ्चित् कथयामि।

३—सर्वपरिचितोऽयं शब्दः।

५—आम्। किन्तु सुपरिचितोऽप्ययं शब्दो गम्भीरविचारसापेक्षः।.........
व्याकरणशास्त्रे "स्वयं राजन्ते इति स्वराः"—इति निरुक्तिः प्रसिद्धा। अनेन स्वराणामन्यनिरपेक्षत्वं सूच्यते।

४—मतङ्गेनापि इयमेव निरुक्तिः स्वीकृता—

राजृ दीप्ताविति धातोः स्वशब्दपूर्वकस्य च।
स्वयं यो राजते यस्मात् तस्मादेष स्वरः स्मृतः॥

५—आम्। किञ्चिद् विरम्य श्रूयताम्। वैदिकलौकिकव्यवहारे उच्चारण-गतोच्चत्वनीचत्वधर्मयोरपि स्वरशब्देनैवाभिधानं दृश्यते।

१—आम्। स्मरामि किञ्चित्—
'उच्चैरुदात्तः, नीचैरनुदात्तः' इति सूत्रयोर्भाष्ये पतञ्जलेरुक्तिम्, यत् उच्चत्वनीचत्वधर्मौ स्वरस्यैव नहि व्यञ्जनस्य।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५—सुष्ठु। अतो हेतोः स्वरशब्देनैव वैदिकपाठस्य लौकिकव्यवहारस्य वा उच्चत्वनीचत्वम् उक्तं चिरन्तनैः। तथाहि—स्वयंराजत्वस्य, उच्चत्वनीचत्व-धर्मस्य च समावेशः स्वरशब्दे सिद्धः।

४—किन्तु शार्ङ्गदेवेन संगीतरत्नाकरे 'स्वतो रञ्जयति इति स्वरः' इति नवीना निरुक्तिः प्रस्तुता। यथा—

श्रुत्यनन्तरभावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः।
स्वतो रञ्जयति श्रोतृचित्तं स स्वर उच्यते॥

५—सत्यम्। स्वरस्य लक्षणेऽस्मिन् लक्षणचतुष्टयमन्वितम्।

प्रथमतः—श्रुतीतिनियतस्थानोद्भूतत्वम्।

द्वितीयतः—श्रुतीतिप्रथमाघातजस्य अनुरणनहीनस्य ध्वनेरनन्तरत्वम्।

तृतीयतः—अनुरणनात्मकतया स्निग्धत्वम्।

चतुर्थतः—स्वतो अन्यनिरपेक्षरूपेण रञ्जकत्वम्, नहि स्वयंराजत्व-मात्रम्।

स्वरशब्दस्यार्थविकासस्यास्य इतिहासे अभिनवगुप्तस्य योगदानं स्मरणीयम्।

४—किं तत्?

५—उच्चत्वनीचत्वधर्मयुक्ते स्वयंराजध्वनौ निहितं श्रोतृचित्त-रञ्जकत्वं यदा गभीरविचारस्य विषयीभूतं तदा तस्य आघातजः अनुरणनात्मकश्चेति क्रमिकावस्थाद्वयं विश्लेषणात् स्फुटमभवत्। तत्राभिनवभारत्याः पङ्क्तिः स्मर्तव्या—

श्रुतिस्थानाभिघात-प्रभवशब्द-प्रभावितोऽनुरणनात्मा स्निग्धमधुरः शब्द एव स्वरः।

१—नितान्तं मनोहारीदं विवरणम्।

५—तानशब्दस्यापि विचारः प्रासङ्गिकोऽत्र। संगीतरत्नाकरस्य वाद्याध्याये वांशिकानां गुणनिरूपणे 'गातॄणां तानप्रदायिता' इत्यत्र तानशब्दस्य निवेशो विचार्यः।

४—कालिदासेनापि कुमारसम्भवमहाकाव्ये 'तानप्रदायित्व' मिति उक्तं हिमालयस्य वर्णनप्रसङ्गे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१—सम्पूर्णपद्यश्रवणे लालायितं मे मनः ।

४—श्रूयतां तर्हि ।

यः पूरयन् कीचकरन्ध्रभागान्
दरीमुखोत्थेन समीरणेन ।
उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां
तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम् ॥

५—सुषिरवाद्यानां प्रसङ्गे तानशब्दस्य प्रयोगोऽयमवधानमर्हति ।

१—एवम् । मूर्च्छनातानः शुद्धतानो वा कूटतानश्चेति सविशेषतानशब्दं जानीमो वयम् । कोऽयं निर्विशेषतानशब्दः ?

५—तदेव विचारणीयम् । तानशब्दो वैदिकसाहित्ये एकस्वरपाठस्य पर्यायरूपेण व्यवहृतः ।

४—आम् । एकश्रुतिरित्यपि तानशब्दस्य पर्यायः उक्तो वैदिकसाहित्ये ।

१—पाणिनिनाऽपि 'एकश्रुति दूरात् सम्बुद्धौ' इति सूत्रे एकश्रुतीति विशेषणम् उदात्तानुदात्तस्वरितेति त्रैस्वर्यभेदविहीनस्य वाक्यस्य प्रसङ्गे निवेशितम् ।

५—एतद्वचनसङ्ग्रहस्य समालोचनेन को निष्कर्षः समासाद्यते, इत्येवावधेयम् ।

४—भवत्येवात्र मार्गदर्शिका भवतु नाम ।

५—उच्चत्वनीचत्वभेद-विहीनमेकस्वरप्रदानमेव तानप्रदायित्वमिति प्रतीयते । आधारस्वर एव निर्विशेषतानशब्दस्यार्थः । अद्यापि 'शहनाई' वादने 'पों' धारी वादकः तानप्रदायित्वमेव साधयति । सुषिरवाद्यानां तान-प्रदायित्वे विशिष्टोपयोगित्वमासीत् प्राचीनकाले । इति निष्कर्षः ।

१—नितान्तमुपकृताः स्मः ।

३—श्रुतिशब्दोऽपि विचारयोग्य इति श्रुतं मया संवादारम्भे ।

५—आम् । श्रुतिशब्दे श्रवणयोग्यता, संवादसिद्धस्थानं चेति अर्थद्वयं समन्वितम् । तथाहि—स्वरसप्तके द्वाविंशतिस्थानानि श्रुतिसंज्ञकानि, ध्वनेः प्राकट्यप्रसङ्गे श्रवण व्यापारस्यारम्भस्थानीयाघाताज्ध्वनिश्चेति श्रुतिशब्दस्य अर्थौ । अत्र द्वितीयोऽर्थः स्वरस्य अनुरणनात्मकत्वस्य अनुगामी ।

४—अत्यन्तं कृतज्ञाः स्मः । भवत्या समन्वयात्मिका दृष्टिरुन्मीलिताऽस्माकम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१—नूनं खण्डितदृष्ट्या ईदृक् समग्रदर्शनं नैव सम्भवति।

३—सत्यम्। अखण्डदर्शनमेव साध्यमस्माकम्।

५—गभीरचर्चायामस्मिन् इयं रसिकसभा तु विस्मृताऽस्माभिः। तस्या रञ्जनार्थमन्ये प्रयोगाः कल्पिताः। तेषां कृते विरन्तव्यमधुनाऽस्माभिः।

सर्वे—एवमेव।

२. गीतावली

(१) राग—हमीर—केदार ध्रुवपद ताल चौताल

सुरभारती जयति भुवि।

सकलनिगमागमनिधाना निखिलशास्त्रादिकृतविधाना। सुरभारती, जयति भुवि, जयति दिवि।

सुनादिका परार्थिका सुकल्पिता पुमर्थदा हितावहा गुणावहा
प्रियंवदा ऋतम्भरा शुभंकरी सुरभारती·········

प्रज्ञाप्रतिभापूर्णा अर्थगभीरा, कोमल-सुदृढललित-शरीरा।
नादवर्णपदव्याकृतरूपा, क्रान्तदर्शना, रागरङ्गविविधभङ्गिशालिनी
विहारिणी प्रसादिनी, सुरभारती—

समास—विग्रह

सुरभारती—सुराणां भारती इति—षष्ठी तत्पुरुष

सकलनिगमागमनिधाना—सकलाश्च ते निगमागमाश्च इति
सकल—निगमागमाः (कर्मधारय) तेषाम्।
सकल—निगमागमानां निधाना इति
(षष्ठी तत्पुरुष)

निखिल—शास्त्रादि कृतविधाना—निखिलानि यानि शास्त्रादीनि तेषु
कृतं विधानं यया सा—बहुव्रीहि समास

सुनादिका — सुष्ठु नादः यस्याः सा इति ,, ,,
परार्थिका — परः अर्थः यस्याः सा इति ,, ,,
सुकल्पिता — सुष्ठु कल्पिता इति (प्रादि तत्पुरुष)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुमर्थदा — पुमर्थं ददाति इति उपपद तत्पुरुष समास
हितावहा — हितं वहति इति ,, ,, ,,
गुणावहा — गुणान् वहति इति ,, ,, ,,
ऋतम्भरा — ऋतं बिभर्ति इति ,, ,, ,,
प्रियंवदा — प्रियं वदति इति ,, ,, ,,
शुभंकरी — शुभं करोति इति ,, ,, ,,

प्रज्ञाप्रतिभापूर्णा—प्रज्ञा च प्रतिभा च इति प्रज्ञाप्रतिभे
(इतरेतरद्वन्द्व) ताभ्यां पूर्णा— पञ्चमी तत्पुरुष

अर्थगभीरा — अर्थेण गभीरा इति तृतीया तत्पुरुष

कोमल-सूद्भट—ललितशरीरा—कोमलं च सुष्ठु उद्भटञ्च ललितञ्च, एषां समाहार इति कोमलसूद्भटललितं शरीरं यस्याः सा— बहुव्रीहि

नाद-वर्ण-पद-व्याकृत-रूपा—नादश्च वर्णश्च पदानि च-द्वन्द्व- नाद-वर्ण-पदानि, तैः व्याकृतं रूपं यस्याः सा-बहुव्रीहि

रागरङ्ग-–विविध-–भङ्गि–शालिनी—रागरङ्गौ रागश्च रङ्गश्च इति तन्मुखाभिः विविधाभिः भङ्गिभिः शालते या सा—बहुव्रीहि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग–हमीर–केदार

स्थायी

×		०		२		०		३		४	
							म॑	प	ग	–	म
								र	भा	ऽ	र
ध	–	धनि	सं	(नि)ध	म॑	प	(ध)म॑	प	ग	–	म
ती	ऽ	ज॰	य	ति	भु	वि	सु	र	भा	ऽ	र
(सं)ध	–	ग	म	रि	ग	म	धम॑	प	ग	म	रि
ती	ऽ	स	क	ल	नि	ग	मा॰	॰	ग	म	नि
स	रि	स	–	म॑	प	ध	म॑	प	ग	–	म
धा	॰	ना	ऽ	नि	खि	ल	शा	॰	स्त्रा	ऽ	दि
(नि)ध	नि	संरिं	संनि	धप	म॑	प	म॑	प	ग	–	म
कृ	त	वि॰	धा॰	॰॰	ना	॰	सु	र	भा	ऽ	र
(सं)ध	–	धनि	सं	(नि)ध	म॑	प	ग	म	रि	सरि	स
ती	ऽ	ज॰	य	ति	भु	वि	ज	य	ति	दि॰	वि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तरा

×		०		२		०		३		४	
प	प	–	प	ध	–	नि	सं	–	सं	सं	–
सु	ना	ऽ	दि	का	ऽ	प	रा	ऽ	थिं	का	ऽ
सं	ध	–	नि	सं	–	रिं	नि	सं	ध	प	–
सु	क	ऽ	ल्पि	ता	ऽ	पु	म	ऽ	थँ	दा	ऽ
सं	गं	मं	रिं	सं	–	रिं	नि	सं	ध	प	–
हि	ता	●	व	हा	ऽ	गु	णा	ऽ	व	हा	ऽ
प	ग	म	रि	ग	मध	प	ग	म	रि	स	–
प्रि	यं	●	व	दा	●●	ऋ	तं	●	भ	रा	ऽ
रिं	ग	म	ध	मं	प	ध	मं	प	ग	–	म
शु	भं	●	क	री	●	●	सु	र	भा	ऽ	र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सञ्चारी

×	०	२	०	३	४
स रि	स —	म म	प —	मंप धप	म —
प्र ●	ज्ञा ऽ	प्र ति	भा ऽ	पू● ●●	र्णा ऽ
^मस रि	स स	ध —	प —	^पस —	स स
अ ●	र्थं गं	भी ऽ	रा ऽ	को ऽ	म ल
म —	^मप प	मं मं	प प	मंप धप	म —
सू ऽ	ङ्क ट	ल लि	त श	री● ●●	रा ऽ
प ध	प सं	— सं	सं सांनि	ध नि	सं रिं
ना ●	द व	ऽ र्ण	प द●	व्या ●	कृ त
सं नि	ध प	^सम —	म रि	— रि	स —
रू ●	पा ●	क्रा ऽ	न्त द	ऽ शं	ना ऽ

आभोग

×	०	२	०	३	४
सं —	सं मं	— मं	म म	म प	— प
रा ऽ	ग रं	ऽ ग	वि वि	ध भं	ऽ गि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×	०	२	०	३	४
सं —	सं ध	— प	म —	म रि	— स
शा ऽ	लि नी	ऽ वि	हा ऽ	रि णी	ऽ •
रि ग	म ध	र्म प	ध र्म	प ग	— म
प्र सा	• दि	नी •	• सु	र भा	ऽ र

[२] राग देश—तिलककामोद ध्रुपद चौताल ताल

स्थायो— ॐ वन्दे नादतनुम्
ढक्का-निनाद-सुव्याकृतवर्णं पदततिकलनं वाक्यविधानम् ।।

अन्तरा—सद्योजातं जन्मातीतं, वामदेवं दक्षिणभावं, तत्पुरुषम् अर्द्धीकृतवपुषम्
ईशानं दिक्कालविहीनम् , अघोरम् अतिघोर–रवधरम्
पञ्चवदन–साधित–शुचिरागं शम् ओम् ।।

संचारो—आङ्गिक-चेष्टा-राजितभुवनं वाचिक-व्यवहृति व्यक्तवाङ्मयम्
आहार्यार्थं कृतरविशशिनं सात्त्विकभावाराधितचरणं पूर्णसुनटनम् ।।

आभोग—रेप–म गरेगसा रेमपनि सं––प धम–ग रिंप–म
गरिसारि मग–सा रिगसानि पनिस– रिमप– पनिसां–
सप्तस्वरभावितमुनिहृदयं सुविमलगानं ऋं. ढुं. जगतिय वलितक
दिगिनिगि तितिझल कुचझल तितिचाऽ इतिवाक्करणालंकृत–
संस्तुतिपदं टनगिन गिननगि ननगिड गिडदगि गिडगिड
किटतक नखुनखु खुं. खुं थों.गिन थों.गिन थों. थों.
गों. गों. तकिधिकि त. त्ता. झें. गिरि गिडदा. झें•• द्रा
झें••द्रा इति-पाटप्रकटनं कपाल–कम्बल–गान- तोषितं हा हा हू हू
प्रभृति–सुशोभितसदसम् आश्रितजनहृतविहिताविहित-कर्मविपाक-
जजनुम् ॐ वन्दे ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समास—विग्रह

नादतनुम् = नाद एव तनुः यस्य तम् — बहुव्रीहि।

ढक्का-निनाद-सुव्याकृतवर्णम्=ढक्का-निनादैः सुव्याकृताः वर्णाः येन तम् — बहुव्रीहि

पदततिकलनं—पदततीनां कलनं कृतं येन तम् — बहुव्रीहि

वाक्यविधानम्—वाक्यैः विधानम् यस्य तम्। — (बहुव्रीहि)

सद्योजातं—सद्यः जातम् — कर्मधारय

जन्मातीतं—जन्मना अतीतम् — तृतीया तत्पुरुष

दक्षिणभावं—दक्षिणः भावः यस्य तम् — बहुव्रीहि

तत्पुरुषम्—स च पुरुषश्च तम् इति — कर्मधारय समास

अर्द्धीकृतवपुषम्—अर्द्धीकृतं वपुः येन तम् — बहुव्रीहि

दिक्कालविहीनम्—दिक्कालाभ्याम् विहीनम् इति — तृतीया तत्पुरुष

अतिघोररवधरं—अत्यन्तं घोरश्चासौ रवः अतिघोररवः तं धरति यः तम् — बहुव्रीहि

पञ्चवदन-साधित शुचिरागम्—पञ्चवदनैः साधितः शुचि-रागाः येन तम् — बहुव्रीहि

आङ्गिक-चेष्टा-राजित-भुवनम्—आङ्गिकचेष्टाभिः राजितं भुवनं येन तम् — बहुव्रीहि

वाचिक व्यवहृति-व्यक्तवाङ्मयम्—वाचिकी असौ व्यवहृतिः वाचिक-व्यवहृति — कर्मधारय समास

तया व्यक्तं वाङ्मयं येन तम् इति — बहुव्रीहि

आहार्यार्थं—आहार्याभिनयस्य अर्थं प्रयोजनमधिकृत्य

कृतरविशशिनम्—कृतौ रविशशिनौ येन तम् — बहुव्रीहि

सात्त्विक-भावाराधित-चरणम्—सात्त्विकभावैः आराधितौ चरणौ यस्य तम् — बहुव्रीहि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थायी

×	०	२	०	३	४
	(म) रि मप	पनि संरि	नि धप	म गरि	नि स
	ॐ ●●	वं● ●●	दे ●●	ना ●●	द त
म गरि	(रि) रिग निसा	प नि	स रि	नि. नि.	(प) ध प
तुं ●●	● ●●	ढ ●	क्का ●	नि ना	● द
(रि) नि स	रि म	प ध	म ग	रि —	म प
सु ●	व्या ●	कृ त	व ●	णं ऽ	प द
नि सं	रिं नि	(प) ध प	(प) म —	प प	मप ध
त ति	क ल	नं ●	वा ऽ	क्य वि	धा● ●
म गरि	(म) रि मप	पनि संरिं	नि धप	म गरि	नि स
नं ●●	ॐ ●●	वं● ●●	दे ●●	ना ●●	द त
म गरि	(म) रि मप	पनि संरिं	नि धप	रिम पध	म गरि
तुं ●●	ॐ ●●	वं● ●●	दे ●●	वं● ●●	दे ●●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तरा

×	०	२	०	३	४
म —	प —	नि —	नि —	सं —	सं —
स ऽ	द्यो ऽ	जा ऽ	तं ऽ	ज ऽ	न्मा ऽ
रिं नि	सं —	(मं) रिं मं	गं रिं	(मं) रिं नि —	सं —
ती ●	तं ऽ	वा ●	● म	दे ● ऽ	वं ऽ
प नि	सं रिं	(प) नि॒ ध	प —	(रि) म —	म मग
द ●	क्षि ण	भा ●	वं ऽ	त ऽ	त्पु रु०
रि —	(म) रि —	(रिं) मं —	गं रिं	गं नि	सं —
षं ऽ	अ ऽ	ध ऽ	क्ष त	व पु	षं ऽ
(रिं) नि —	नि —	सं —	सं —	प नि	सं रिं
ई ●	शा ऽ	नं ऽ	दि ऽ	क्का ●	ल वि
नि॒ ध	प —	(रि रि) म म	— म	ग रि	रि रिं
ही ●	नं ऽ	अ घो	ऽ ●	रं ●	अ ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

×	०	२	०	३	४
रिं रिं	रिं रिंनि	नि नि	सं —	(रिं) नि —	नि नि
घो ●	र र●	व ध	रं ऽ	पं ऽ	च व
सं सं	सं —	प नि	सं रिं	नि ध	प ध
द न	सा ऽ	धि त	शु चि	रा ●	गं ●
म गरि	(म) रि मप				
शं ●●	ॐ ●●				

सञ्चारी

×	०	२	०	३	४
पुनि सरि	ग निस	रिप म-गरि	रिग निस	मप निनि	संसं संसं
आं● गिक	चे ष्टा●	रा● जिऽत●	भुव नं●	वा● चिक	व्यव हृति
पध म-गरि	(रि) रिग निस	(म रि) रि म	प प	मप निनि	संरिं रिं
व्य क्तऽवा●	ङ्म यं ●	आ हा	र्यो थं	क्लृत रवि	शशि नं
(रिं) नि निनि	सं संपं	पध म गरि	रिग निस	प . सरि	गग (नि) स
सात्त्विक	भा वा●	रा● धिऽत●	चर णं●	पू० णंबु	नट नं

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आभोग

×		०		२	
रिंप – म	गरिगस	रिमपनि	सं – – प	धम – ग	रिंप – म
०		३		४	
गरिसरि	मग – स	रिगसनि	पनिस –	रिमप –	पनिसं –
×		०		२	
म – म –	पपनि –	संसंसं	रिं निसं –	रिंपंमंगं	रिं गंनिसं
स ऽ प्त ऽ	स्वरभा ऽ	वितमुनि	हृदयंऽ	सुविमल	गा • नं •
०		३		रि ४	
म – म –	पपनिनि	संसंसं	रिं निसंसं	निनिनिनि	संसंसं –
ऋ ऽ तुं ऽ	जगतिय	वलितक	दिगिनिगि	तितिझल	कुचझल
×		०		२	
रिंनिसं –	संसंसंप	पधमग	रिपमग	रिग – ग	नि नि सस
तितिचा ऽ	इतिवा •	क्करणा.	लं ्क्त ॰	सं ॰ ऽ खु	ति प दं •
०		३		४	
ममपप	निनिनिनि	संसंसं	रिं रिं रिं रिं	रिं पंमंगं	रिं गंनिसं
टनगिन	गिननगि	ननगिड	गिडदगि	गिडगिड	किटतक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×		०		२	
निसंनिसं	रिंनिसं –	सांपंपप	पधमग	रिपमग	रिगनिस
नखुनखु	खुं • खुं •	थों•गिन	थों•गिन	थों•थों•	गों•गों•

०		३ म		४	
पनि सरि	ग – स –	रि – मप	निनिसं –	सं प – ध	मगरिग
तकिधिकि	त ऽ त्ता ऽ	झें ऽ गिरि	गि ड दाऽ	झें • ऽ द्रा	झें••द्रा

×		०		२		०		३		४	
पनि	स	रिम	पध	मग	रि	मम	–प	नि	निनि	सं	संसं
इति	पा	ट•	•प्र	कुट	नं	कपा	ऽल	कं	बल	गा	नतो
रिंनि	सं	रिंमं	गंरिं	पनि	धप	रिम	गरि	पनि	धप	निनि	स
•षि	तं	हा•	हा•	हू•	हू•	प्रभृ	तिसु	शो•	भित	सद्	सं
म	प	नि	नि	सं	सं	सं	सं	प	नि	सं	रिं
आ	•	श्रि	त	ज	न	हृ	त	वि	हि	ता	•
नि	ध	प	प	रिं	रिं	रिं	नि	प ध	प	ध प	प ध
वि	हि	त	क	•	र्म	वि	पा	•	क	ज	ज
म	गरि	ॐ	••	वं	ऽ	दे	ऽ	ना	ऽ	द	त
तुं	••										

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(३) राग–भीमपलासी ताल–त्रिताल

स्थायी—नन्दसुतेन वादिता वंशी ।
घनश्यामेन, चपलाम्बरेण, चललोचनाञ्चलेन,
शुकनारदसनकादिस्तुतेन…… नन्दसुतेन वादिता वंशी

अन्तरा—गोगोपगोपीजनमोहिनी स्थावरजङ्गमधर्महारिणी,
चिदाकाशनिर्बाधचारिणी मुनिजनसुविमलमानसहंसी, … वादिता वंशी ।

संञ्चारी—घोषापूरितयामुनकूला, हृतगोपीगणह्रीदुकूला,
मग्रामर्षभ-साधारणकृत-मूर्च्छनाऽऽलापिका
राधिकाप्रेमसाधिका, भयबाधिका

आभोग—सागमनिगमगायनी, नादज्योतिःप्रकाशिनी, भक्तचित्तमोहरा,
समाहितश्रवणगोचरा, करोपलालिता सुधाप्यायिता, वादिता वंशी ।

समास–विग्रह

नन्दसुतेन—नन्दस्य सुतः इति नन्दसुतः तेन	षष्ठी तत्पुरुष
घनश्यामेन—घन इव श्यामः तेन	कर्मधारय
चपलाम्बरेण—चपलाया इव अम्बरं यस्य तेन	बहुव्रीहि
चललोचनाञ्चलेन—चले लोचनयोः अञ्चले यस्य तेन	बहुव्रीहि
शुकनारदसनकादिस्तुतेन—शुकश्च नादरदश्च सनकादयश्च= शुकनारदसनकादयः (इतरेतर द्वन्द्व)—तैः स्तुतः यस्तेन	बहुव्रीहि
गोगोपगोपीजनमोहिनी—गावश्च गोपाश्च गोपीजनश्च= गोगोपगोपीजनाः (इतरेतर द्वन्द्व) तान् मोहयति या सा	बहुव्रीहि
स्थावरजङ्गमधर्महारिणी—स्थावरजङ्गमानां धर्मान् हरति या सा	„
चिदाकाशनिर्बाधचारिणी—चिदाकाशे निर्बाधं चरति इति	
मुनिजनसुविमलमानसहंसी—मुनिजनानां सुविमलं मानसं तत्र हंसी इव इति	रूपककर्मधारय
घोषापूरितयामुनकूला—घोषेण आपूरितं यामुनं कूलं यया सा	बहुव्रीहि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हृतगोपीगणह्रीदुकूला——हृतं गोपीगणस्य ह्रींरूपं दुकूलं यया
सा (ह्री एव दुकूलम् इति) बहुव्रीहि

म-ग्रामर्षभ-साधारणकृत-मूर्च्छनाऽऽलापिका——म-ग्रामस्य
ऋषभस्य साधारणकृताया मूर्च्छनाया आलापिका इति। बहुव्रीहि

राधिका–प्रेमसाधिका = राधिकायाः प्रेम्णः साधिका इति। षष्ठी तत्पुरुष

भयबाधिका = भयस्य बाधिका ,,

सागमनिगम–गायनी = आगमसहितस्य निगमस्य गायनी ,,

नादज्योतिःप्रकाशिनी——नादस्य ज्योतिः इति नादज्योतिः
नादज्योतिषम् प्रकाशयति या सा इति। बहुव्रीहि

भक्तचित्ततमोहरा——भक्तस्य चित्तस्य तमो हरति या सा इति। बहुव्रीहि

समाहितश्रवणगोचरा——समाहितानां श्रवणस्य गोचरा। ,,

करोपलालिता——कराभ्याम् उपलालिता। तृतीया तत्पुरुष

सुधाप्यायिता—सुधया आप्यायिता। तृतीया तत्पुरुष

स्थायी

×	२	०	३
			पसं प ध
			नि ध पम प
			नं ० दु० सु
म प म	ग म ग	स	
ग म प ग	– स ग म	ग रि स –	ग म प –
ते ० न वा	ऽ दिं ता ०	वं ० शी ऽ	० ० ० ऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×	२	०	३
(ध) म प - ग़	म प - प	ग़ (म) स ग़ -	म ग़ (स) रि स
घ न ऽ श्या	• मे ऽ न	च प लां ऽ	ब रे • ण
रि ग़ म प / नि़. स ग़ म	म प सं / प नि़ - नि़	प / ध - प म	ध प प म / प ग़ म प
च ल लो •	च लां ऽ च	ले ऽ न शु	क ना • र
प म (ध) प ग	(ग़ म) - स ग़ -	म ग़ (स) रि स	पसं प ध / नि़ ध पम प
द स न का	ऽ • दि ऽ	स्तु ते • न	नं • दु• सु

अन्तरा

×	२	०	३
			प पम (ध) प ग़
			गो •• • गो
- (प) म प -	प नि़ नि़ नि़	(प) सं - - सं	सं - (रिं) नि़ सं
ऽ प गो ऽ	पी • ज न	मो ऽ ऽ हि	नी ऽ • •
नि़ सं ग़ं मं	ग़ं (सं) रिं सं सं	(सं) नि़ सं रिं नि़	सं नि ध प
स्था • व र	जं • ग म	ध • र्म हा	• रि णी •

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×	२	०	३
म प	प ध		प
प सं - नि॒	ध प म प	ग॒ म प नि॒	- नि॒ ध प
चि दा ऽ का	० श नि ०	बों ० ध चा	ऽ रि णी ०
स स	प़ प़	रि ग॒ म प	ध प
म ग॒ रि स	स नि॒. ध॒. प़	नि॒. स ग॒ म	प नि॒ नि॒ सं
मु नि ज न	सु वि म ल	मा ० न स	ह ० सी ०
प	म	स	पसं प ध
सं - - ग॒	- स ग॒ म	ग॒ रि स -	नि॒ ध पम प
० ऽ ऽ वा	ऽ दि ता ०	वं ० शी ऽ	नं ० दु० सु

सञ्चारी

×	२	०	३
			नि॒. नि॒. स प़
			घो ० षा ०
प़ प़	म म म	स	
नि॒. नि॒. स स	ग॒ ग॒ ग॒ ग॒	रि - स -	नि॒. स ग॒ म
पू ० रि त	या ० मु न	कू ऽ ला ऽ	हृ त गो ०
	स	स	
प - प प	- म - ग॒	रि - स -	म - म ग॒
पी ऽ ग ण	ऽ ह्री ऽ दु	कू ऽ ला ऽ	म ऽ ग्रा ०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×	२	०	३
स		ग	स
म ग रि रि	नि. स ग म	प म प प	म ग ग रि
म ० र्भ भ	सा ० धा ०	र ण क्र त	मू ० र्च्छ ना
	पसं	प	ध
स नि. स ग	म प. नि –	नि ध प. –	म प प ग
० ला० ० पि	का ० रा ऽ	धि का ० ऽ	प्रे ० म सा
स	प		
म ग रि स	नि. नि. ध़ प	प़ स – –	
० धि का ०	भ य बा ०	धि का ऽ ऽ	

आभोग

×	२	०	३
			स सं गं मं
			सा ० ग म
	सं		सं
नि सं गं मं गं	रिं रिं नि सं	गं मं पं –	मं गं रिं –
नि ० ग म गा	० य नी ऽ	ना – द ऽ	व्यो ० तिः ऽ
		रिंनि प	ध
सं रिं नि प नि	सं – सं –	सं नि ध पम	प ग – म
प्र का – शि०	नी ऽ भ ऽ	क्व चि ० त्त०	त मो ऽ ह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×				२				०				३			
		स											ग॒		
प	–	म	ग॒	–	रि	स	ऽ	नि॒.	स	ग॒	म	प	म	प	–
रा	ऽ	स	मा	ऽ	हि	त	ऽ	श्र	व	ण	गो	०	च	रा	ऽ
नि॒.	स	–	स	म	–	ग॒	म	–	म	प	–	प	सं	नि॒	सं
क	रो	ऽ	प	ला	ऽ	लि	ता	ऽ	सु	धा	ऽ	प्या	०	यि	ता
	प				ग॒ म		ग॒		स						
–	सं	–	ग॒	–	स	ग॒	म	ग॒	रि	स	–				
ऽ	०	ऽ	वा	ऽ	दि	ता	०	वं	०	शी	ऽ				

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. वृत्तगानपद्धति--निर्देश

(१) विषयावतारण

छन्द के प्रमुख दो भेद हैं—मात्रिक और वार्णिक। मात्रिक छन्दों में मात्रा-संख्या के आधार पर नियमिन होता है और वार्णिक छन्दों [वृत्तों] में लघु-गुरु अक्षरों के क्रम के आधार पर। संस्कृत भाषा में वार्णिक वृत्तों का ही अधिकतर प्रयोग हुआ है और मात्रिक छन्द प्राकृत, अपभ्रंश से हिन्दी आदि में आए हैं। इन दो के अतिरिक्त एक अन्य कोटि भी है जो वार्णिक होते हुए भी बहुत कुछ नियम-मुक्त है, जिसे अक्षर-मुक्तक संज्ञा दी गई है। संस्कृत का अनुष्टप् छन्द इसी कोटि में आता है। अनुष्टुप् के प्रत्येक चरण में आठ अक्षर रखने का नियम है और लघु-गुरु-क्रम में बहुत कुछ स्वतन्त्रता है। नियम केवल इतना ही है कि चारों चरणों में पाँचवाँ वर्ण लघु और छठा वर्ण गुरु होना चाहिए और द्वितीय-चतुर्थ चरणों में सातवाँ वर्ण भी लघु होना चाहिए।

किसी छन्दोबद्ध रचना को तालबद्ध करने के लिए सर्वप्रथम छन्द के प्रत्येक चरण की मात्रा-संख्या पर ध्यान देना आवश्यक है। छन्द मात्रिक हो या वार्णिक, आज की ताल-रचना मात्राधारित होने के कारण छन्द का मान मात्रा की इकाई के अनुसार जानना आवश्यक है। छन्द का एक चरण और ताल का एक आवर्तन बिलकुल बराबर मान का हो, ऐसा न तो प्रत्येक स्थिति में संभव है और न हो अनिवार्य। छन्द का एक चरण ताल के कई आवर्तनों में भी बाँधा जा सकता है। इस प्रसंग में चार बातों का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।

१—छन्दोगत मान का ताल के साथ साम्य साधने के लिए वर्णों का कर्षण[1] तो किया जा सकता है, किन्तु वर्णों के मूल मान को घटाना कदापि उचित नहीं। जैसे, १३ मात्रा के छन्द के वर्णों का कर्षण कर के १६ मात्रा के

---

१. कर्षण का शब्दार्थ है खीचना। गान-क्रिया मे पद के किसी वर्ण [अक्षर] को स्वरों में लम्बाना कर्षण है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्रिताल के साथ उसका साम्य लाया जा सकता है, किन्तु १३ मात्रा को घटा कर १२ मात्रा के ताल में बैठाना किसी प्रकार उचित नहीं है।

२—छन्द की यति या विराम पर पूरा ध्यान रहना चाहिए, और उसका साम्य ताल के आवर्तन या विभाग के साथ अवश्य बैठना चाहिए।

३—कर्षण गुरु वर्णों का ही होना चाहिए, लघु का नहीं।

४—ताल के आवर्तन में किस स्थान से छन्दोबद्ध पद का ग्रह [उठान] बैठाया जाए, इसका निर्णय इस आधार पर करना चाहिए कि ताल के सम पर छन्द के किस वर्ण का पड़ना उचित है। यथासम्भव सम पर गुरु वर्ण रहे तो अच्छा होगा। नीचे के कुछ उदाहरणों से ये बातें स्पष्ट हो जाएगी।

(२) कालिदास के मङ्गल पद्यों का गानात्मक रूप

[क] रघुवंश महाकाव्य का मङ्गलाचरणात्मक श्लोक [अनुष्टुप्] उदाहरणार्थ नीचे स्वर-लिपि में प्रस्तुत है। आठ वर्णों के प्रत्येक चरण के वर्णों का यथोचितं कर्षण कर के १६ मात्रा के त्रिताल में बाँधा गया है।

श्लोक—वागर्थाविव सम्पृक्तौ, वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे, पार्वतीपरमेश्वरौ॥

राग भूपाली—ताल त्रिताल

×	२	०	३
		स सं ध प	ग रि स रि
		वा ० ग ०	र्था ० वि व
	रि प		
प ग ग रि	ग – रि स	स ध़ स रि	ग रि ग ग
सं ० पृ ०	क्तौ ऽ ० ०	वा ० ग ०	र्थं ० प्र ति
	रि		
प ग प ध	प ग ग –	प ग प –	सं ध सं सं
प ० ० त्त	ये ० ० ऽ	वा ० ग ऽ	र्थं ० प्र ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×	२	०	३
सं रिं सं ध	प ध ध – (प)	सं – गं रिं	गं रिं सं ध
प ० ० त्त	ये ० ० ऽ	वा ऽ ग ०	थं ० प्र ति
प ध सं रिं	ध सं सं –	गं रिं गं –	– रिं सं ध
प ० ० त्त	ये ० ० ऽ	ज ग तः ऽ	ऽ ० पि त
सं – – ध	सं रिं सं ध	– प प ध	प ग – –
रौ ऽ ऽ ०	वं ० दे ०	ऽ ऽ वं ०	दे ० ऽ ऽ
प ध रि – (प)	– – ध़ स	स रि ग प	ध सं रिं गं
वं ० दे ऽ	ऽ ऽ ० ०	पा ० ० वँ	ती ० प र
(पं) रिं सं ध पध	सं रिं – –	सं रिं गं पं	(पं) रिं – सं ध
मे ० ० श्व०	रौ ० ऽ ऽ	पा ० ० वँ	ती – प र
सं रिं सं ध	प ग – –	ग रि प ग	ध प सं पध
मे ० ० श्व	रौ ० ऽ ऽ	पा ० ० वँ	ती ० प र०
प ग – प	रि – स स		
मे ० ऽ श्व	रौ ऽ ० ०		

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[ख] 'विक्रमोर्वशीय' का नान्दी पद्य शार्दूलविक्रीडित वृत्त में है। ऽऽऽ॥ऽ।ऽ॥।ऽ, ऽऽ।ऽऽ।ऽ—इस प्रकार १२+७=१९ वर्णों का एक चरण है और प्रथम विदारी में १८ तथा द्वितीय विदारी में १२, इस प्रकार कुल ३० मात्रा हैं। चौताल के ढाई आवर्तनों में यह एक चरण नीचे देखें।

पद्य—वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी
यस्मिन्नोश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः।
अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते
स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निश्श्रेयसायास्तु वः॥

राग—शंकरा ताल—चौताल

×	०	२	०	३	४	×	०	२	०	३	४
नि ध	सं नि	प –	ग म	प –	प प	नि ध	नि सं	नि –	नि –	प –	प ग
वे •	दां •	ते ऽ	षु य	मा ऽ	हु रे	• क	पु रु	षं ऽ	व्या ऽ	प्य ऽ	स्थि तं
प ग	– रि	स –	स –	(प)ग –	प –	प प	प नि	– सां	– सां	गं रिं	सं –
• रो	ऽ द	सी ऽ	य ऽ	स्मि ऽ	न्नी ऽ	श्व र	इ •	त्य नं	ऽ न्य	वि ष	यः ऽ
नि ध	सं नि	प ग	प प	निध सं	नि –	सं –	गं पं	गं रिं	सं सं	नि ध	सं नि
श •	ब्दो •	य था	• र्था	• क्ष	रः ऽ	अं ऽ	त •	र्यं •	श्च मु	मु •	क्षु भि
– प	निध सं	नि –	प –	ग –	रि ग	प ग	– रि	स –	सं –	गं रिं	गं –
ऽ र्नि	य• ति	त ऽ	प्रा ऽ	णा ऽ	दि भि	• मृ	ऽ ग्य	ते ऽ	स ऽ	स्था •	णुः ऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×	०	२	०	३	४	×	०	२	०	३	४
गं पं	गं पं	पं गं	– पं	गं रिं	सं –	नि ध	सं नि	नि प	ग प	निध सं	नि –
स्थि र	भ ०	क्तियो	ऽ ग	सु ल	भो ऽ	निः ०	श्रे ०	य सा	० या	०० स्तु	वः ऽ
प ग	ग –	रि ग	प ग	– रि	स –	स –	प ग –	ग प	नि सं	गं रिं	सं –
निः ०	श्रे ऽ	य सा	० या	ऽस्तु	वः ऽ	निः ०	श्रे ०	य सा	० या	० स्तु	वः ऽ

(ग) 'मालविकाग्निमित्र' का नान्दी पद्य स्रग्धरा वृत्त में है, जिसका स्वरूप है—ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ, । । । । । । ऽ, ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ—

एक चरण में कुल २१ वर्ण हैं, यति ७, ७, ७ पर है। तीन विदारियों की मात्रा संख्या क्रमशः १३ + ८ + १२ = ३३ है। त्रिताल के दो आवर्तनों में एक चरण को बाँधने के बाद एक मात्रा शेष रहती है। अतः तीसरे आवर्तन को पूरा करने के लिए प्रत्येक चरण के अन्त में १५ मात्रा की तान रखी गई है।

पद्य—एकैश्वर्ये स्थितोऽपि प्रणतबहुफले यः स्वयं कृत्तिवासाः
कान्तासंमिश्रदेहोऽप्यविषयमनसां यः परस्ताद् यतीनाम्।
अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्बिभ्रतो नाभिमानः
सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमीशः॥

राग—हमीर ताल—त्रिताल

×	२	०	३
	– – – धनि	संनि नि ध मं	प ग – म
	ऽ ऽ ऽ ए०	०० कै ० श्व	० र्ये ऽ स्थि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×	२	०	३
नि			
ध – ध –	ग म रि स	स रि स –	म॑ प ध म॑
तो ऽ पि ऽ	प्र ण त ब	हु फ ले ऽ	यः ऽ स्व यं
	नि नि		
प ग – म	ध – ध –	धनि संरिं संनि धप	म॑प गम रिस –रि
० क्त ऽ त्ति	वा ऽ साः ऽ	०० ०० ०० ००	०० ०० ०० ००
		नि	
स म॑प धम॑ –प	गम ध – प	– ध – नि	सं सं – संनि
० ०० ०० ऽ०	०० ० ऽ कां	ऽ ता ऽ सं	० मि ऽ श्र०
संनि रिं सं –	गं मं रिं स	सं रिं सं –	धनि संनि धनि म॑
दे० ० हो ऽ	प्य वि ष य	म न सां ऽ	यः० ०० प० र
प ग – म	रि – स –	धनि सं गंमं रिंसं	–रिं संनि धनि धप
० स्ता ऽ द्य	ती ऽ नां ऽ	०० ० ०० ००	ऽ० ०० ०० ००
म॑प गम ध गम	ध गम ध प	– ध नि सं	– गं मं रिं
०० ०० ० ००	० ०० ० अ	ऽ ष्टा ० भि	ऽ यैं ० स्य
सं रिं सं –	ध नि सं रिं	सं नि ध प	म॑ प ध म॑
क्त ० त्स्नं ऽ	ज ग द पि	त नु भि ०	बिं ० भ्र तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×	२	०	३
प ग – म	ध – ध –	गंमं रिंसं –रिं निसं	गम रिस –रि निस
० ना ऽ भि	मा ऽ नः ऽ	०० ०० ०० ००	०० ०० ०० ००
रिग मरि –ग मंध	मंप गम रिस रि	ग म ध ^{नि}ध	– ^{नि}ध नि सं
०० ०० ऽ० ००	०० ०० ०० स	० न्मा ० र्गो	ऽ लो ० क
^धनि –ध मं प	ग म रि स	स रि म –	मं प ^{नि}ध नि
ना ऽ० य ०	व्य प न य	तु स व ऽ	स्ता ० म सीं
सं गं मं रिं	सं रिं सं –	संनि धप मंप गम	ध गम ध गम
० वृ ० त्ति	सी ० शः ऽ	०० ०० ०० ००	० ०० ००
ध – – –			
० ऽ ऽ ऽ			

[घ] 'अभिज्ञानशाकुन्तल' का नान्दी पद्य भी स्रग्धरा वृत्त में है। नीचे उसे कुछ भिन्न रूप से त्रिताल में निबद्ध देखें। यहाँ समग्र पद्य को एक इकाई माना गया है, प्रत्येक चरण को त्रिताल के तीन आवर्तनों में बैठाने का आग्रह नहीं रखा गया है।

पद्य—या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग—केदार ताल—त्रिताल

×	२	०	३
	स	– म – म	– म – मग
	या	ऽ सृ ऽ ष्टिः	ऽ स्र ऽ ष्टु०
प – प –	ध प म स	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,
रा ऽ द्या ऽ	० ० ० या		
प – प –	संध –नि म॑– –	प ध प म	– म रि स
रा ऽ द्या ऽ	०० ऽ० ०ऽ ऽ	० ० ० ०	ऽ ० ० स
ध नि सं रिं	सं नि ध प	प सं सं ध	प म॑ प धप
व ह ति वि	धि हु तं ०	या ० ह वि	० र्या ० च०
म – म –	म रि स स	प ध प सं	सं – सं –
हो ऽ त्री ऽ	० ० ० ०	ये ० द्व ०	का ऽ लं ऽ
ध सं रिं सं	–संनि धप म	स स म म	प म॑ ध प
वि ध ० त्तः	ऽ ०० ०० ०	श्रु वि वि ष	य गु णा ०
सं – सं ध	– प – प	ध प म –	^{स}म – प –
या ऽ स्थि ता	ऽ व्या ऽ प्य	वि ० श्वं ऽ	० ऽ ० ऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×	२	०	३
सां – मं –	मं – म –	(ग)म प – प	– प ध प
या ऽ मा ऽ	हुः ऽ स ऽ	वँ वी ऽ ज	ऽ प्र कृ ति
मं प धप म	– म रि स	प सां सां मं	– म – मग
रि ति य॰ या	ऽ ॰ ॰ ॰	प्रा ॰ णि नः	ऽ प्रा ऽ ण॰
प – – –	मं – प –	ध नि सां सां	सां रिं – सां
वं ॰ तः ऽ	प्र ऽ त्य ऽ	क्षा ॰ भिः ऽ	प्र प ऽ न्नः
– सांनि धप म	स मग प प	मं ध मं प	सां – ध मं
ऽ ॰॰ ॰॰॰	त नु॰ भि र	व तु वः ॰	ता ऽ भि र
प म – रि	स रि स –	(म)स – (स)स म	– म – मग
॰ ष्टा ऽ भि	री ॰ शः ऽ	ता ऽ भि र	ऽ ष्टा ऽ भि॰
प – प प	प – प सां	– सां सां सांनि	रिं – – –
री ऽ शः ॰	ता ऽ भि र	ऽ ष्टा ॰ भि॰	री ऽ ऽ ऽ
सां – – –			
शः ऽ ऽ ऽ			

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[३] श्रीमद्भागवत का वेणुगीत

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के २१ वें अध्याय का नाम है 'वेणुगीत'। इसमें गोपियों द्वारा श्रीकृष्ण के वेणुवादन के लोकोत्तर प्रभाव का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। भूमिकात्मक कुछ श्लोकों [अनुष्टुप्] को छोड़कर गोपियों की पूरी उक्ति वसन्ततिलका वृत्त में निबद्ध है। ऽ ऽ । ऽ । ।। ऽ, । । ऽ । ऽ ऽ—इस प्रकार प्रत्येक चरण में ८ + ६ = १४ वर्ण हैं। मात्रा संख्या १२ + ९ = २१ है। दूसरी विदारी के अन्त में तीन मात्रा का कर्षण करके २४ मात्रा को चौताल के दो आवर्तनों में निबद्ध करने की विधि नीचे उदाहरणात्मक स्वरलिपि में देखें। विस्तार-भय से केवल प्रथम दो पद्य ही दिए गए हैं।

पद्य—अक्षण्वतां फलमिदं, न परं विदामः
संख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं
यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम्॥

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्ज-
मालानुपृक्त-परिधानविचित्रवेषौ ।
मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां
रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ॥

राग—भीमपलासी ताल—चौताल

×		०		२		०		३		४	
नि़.	स	ग॒	—	म	प	—	प	म	प	ग॒	म
अ	●	क्ष	ऽ	ण्व	तां	ऽ	फ	ल	मि	दं	●
प	प	ग॒	—	म	ग॒	रि	स	—	नि़.	नि़.	स
न	प	रं	ऽ	वि	दा	●	मः	ऽ	●	●	●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×		०		२		०		३		४	
ग	म	प	—	नि	नि	ध	प ध	प	म	प	—
स	०	ख्यः	ऽ	प	शू	०	न	नु	वि	वे	ऽ
पध	मप	ग	—	म	ग	रिं	स	—	ग	म	प
श०	य०	तो	ऽ	वं	य	०	स्यै	ऽ	०	०	०
म	प	नि	सं	नि	ध	प	प	’म	प	ग	म
व	०	क्त्र	०	त्र	जे	०	श	सु	त	यो	०
म	प	प	—	म	प	—	प	—	नि	ध	प
र	नु	वे	ऽ	णु	जु	ऽ	ष्टं	ऽ	०	०	०
ग	म	पनि	सं	नि	ध	—	प	म	प	ग	—
यै	०	र्वां०	०	नि	पी	ऽ	त	म	नु	र	ऽ
म	प	ग	—	म	ग	रिं	स	—	नि.स	गम	प
क्त	क	टा	ऽ	क्ष	मो	०	क्षं	ऽ	००	००	०
प	—	प	—	प	म	—	प	ग	—	स	—
चू	ऽ	त	ऽ	प्र	वा	ऽ	ल	ब	ऽ	हं	ऽ
	४										

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

X		०		२		०		३		४	
प	नि̱	नि̱	–	पनि̱ (⌣)	सं	–	सं	—	नि̱	नि	सं
स्त	ब	को	ऽ	त्प०	ला	ऽ	ब्ज	ऽ	०	०	०
नि̱	सं	गं̱	–	मं	मं	।ं	पं	पं	पं	गं̱	—
मा	०	ला	ऽ	नु	प	०	क्त	प	रि	धा	ऽ
गं̱	सं	गं̱	–	ं	गं	रिं	सं	—	रिं	नि̱	सं
न	वि	चि	ऽ	त्र	वे	०	षौ	ऽ	०	०	०
सं	–	नि̱	ध	प	म	प	ग̱	म	म	प	—
म	ऽ	ध्ये	०	वि	रे	०	ज	तु	र	लं	ऽ
प	नि̱	सं	–	नि̱	नि̱	ध	प	—	ग̱म (⌣)	पनि̱ (⌣)	सं
प	शु	पा	ऽ	ल	गो	०	छ्यां	ऽ	०० (⌣)	०० (⌣)	०
सं	–	नि̱	–	ध	प	—	प	म	प	ग̱	—
·	ऽ	गे	ऽ	य	था		न	ट	व	रो	ऽ
म	प	ग̱	–	म	ग̱	रि	स	—	नि̱.	नि̱.	स
क्व	च	गा	ऽ	य	मा	०	नौ	ऽ	०	०	०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(४) कुछ ताल-वृत्त

कुछ वृत्त ऐसे होते हैं, जिनमें लघु-गुरु के क्रम-विशेष की पुनरावृत्ति हुआ करती है। इन्हें ताल-वृत्त कहने की परिपाटी है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

(क) प्रमाणिका— । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ — यहाँ लघु-गुरु यह क्रम पुनरावृत्त है। ऽ की मात्रा-संख्या तीन है। प्रथम लघु को छोड़ दें तो ऽ । यह क्रम बन जाता है। इस प्रकार गुरु पर सम रख कर दादरा ताल में इसे निबद्ध कर सकते हैं जैसे—

भजे व्रजैकमण्डनं, समस्तपापखण्डनम्।
स्वभक्तचित्तरञ्जनं, सदैव नन्दनन्दनम्॥

सुपिच्छगुच्छमस्तकं, सुनादवेणुहस्तकम्।
अनङ्गरङ्गसागरं, नमामि कृष्णनागरम्॥ [श्रीकृष्णाष्टक]

×			०			×			०		
					स	स	–	ध़	स	–	रि
					भ	जे	ऽ	व्र	जै	ऽ	क
ग	–	रि	ग	–	रि	म	–	म	म	–	म
मं	ऽ	ड	नं	ऽ	स	म	ऽ	स्त	पा	ऽ	प
प	–	म	ग	–	स	ग	–	ग	ग	–	म
खं	ऽ	ड	नं	ऽ	स्व	भ	ऽ	क्त	चि	ऽ	त्त
ग	–	रि	ऱि	–	ग	नि़	–	नि़	रि	–	ग
रं	ऽ	ज	नं	ऽ	स	दे	ऽ	व	नं	ऽ	द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×			०			×			०		
स	–	स	स	–	स	प	–	प	प	–	प
नं	ऽ	द	नं	ऽ	सु	पि	ऽ	च्छ	गु	ऽ	च्छ
प	ध	प	म	–	रि	म	–	म	म	–	म
म	०	स्त	कं	ऽ	सु	ना	ऽ	द	वे	ऽ	णु
प	–	म	ग	–	स	ग	–	ग	ग	–	म
ह	ऽ	स्त	क़ं	ऽ	अ	नं	ऽ	ग	·	ऽ	ग
ग	–	रि	रि	–	ग	नि़	–	नि़	रिं	–	ग
सा	ऽ	ग	रं	ऽ	न	मा	ऽ	मिं	कृ	ऽ	ष्ण
स	–	स	स	–							
ना	ऽ	ग	रं	ऽ							

[ख] पञ्चचामर—प्रमाणिका की ही दुगनी लम्बाई में पञ्चचामर वृत्त बनता है। सुप्रसिद्ध (रावणकृत) शिवताण्डवस्तोत्र इसी वृत्त में है। उसे भी दादरा ताल में इसी प्रकार निबद्ध किया जा सकता है।

[ग] भुजङ्गप्रयात—इसके प्रत्येक चरण में।ऽऽ–यह पञ्चमात्रिक गण चार बार पुनरावृत्त होता है। प्रथम लघु को छोड़कर गुरु पर सम देने से यह झपताल में बैठ जायगा। शङ्कराचार्य के नाम से प्रसिद्ध भवान्यष्टक इसी वृत्त में है। पाठक इसे यथेच्छ स्वरावली में निबद्ध कर लें। ताल इस प्रकार रहेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×		२		०		३		
						—	—	न
ता	ऽ	तो	ऽ न	मा	ऽ	ता	ऽ	न
व	ऽ	धुं	ऽ नं	दा	ऽ	ता	ऽ	

(ग) त्रोटक—इस वृत्त के प्रत्येक चरण में ।।ऽ यह चातुर्मात्रिक गण चार वार आता है। गुरु पर सम रख कर इसे कहरवा ताल में गाया जा सकता है। वल्लभाचार्य-कृत सुप्रसिद्ध मधुराष्टक इस वृत्त में है। स्वर-योजना पाठकों पर छोड़कर इस का ताल-समन्वित रूप हम नीचे दे रहे हैं।

–	–	अ	ध	रं	ऽ	म	धु	रं	ऽ	व	द	नं	ऽ	म	धु
रं	ऽ	न	य	नं	ऽ	म	धु	रं	ऽ	ह	सि	तं	ऽ	म	धु
रं	ऽ	हृ	द	यं	ऽ	म	धु	रं	ऽ	ग	म	नं	ऽ	म	धु
रं	ऽ	म	धु	रा	ऽ	धि	प	ते	ऽ	र	खि	लं	ऽ	म	धु
रं	ऽ														

(५) उपसंहार

वृत्तों के गानमय रूप के कुछ उदाहरण विद्यार्थियों ने ऊपर देखे हैं। इनका प्रचलित बन्दिशों के साथ क्या साम्य है और क्या भिन्नता है, इसका संगीत की दृष्टि से विश्लेषण उपयोगी होगा। प्रबुद्ध विद्यार्थी इस दिशा में अवश्य प्रयास करें। तुलना के लिए गीतावली में दिये गए तीन ध्रुवपद गीत उपलब्ध हैं, जिनकी रचना प्रचलित बन्दिशों के अनुरूप हुई है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीतशास्त्रविभागीय–संस्कृतदिवस–समारोहे

डॉ० (कु०) प्रो० पद्मामिश्रमहोदयानाम् अध्यक्षीयभाषणस्य सारांशः

माननीया विद्वाँसः, विदुष्यश्च !

सहृदयहृदयाह्लादिकायाः मधुरादपिमधुरायाः सरसादपिसरसायाः संस्कृतभाषाया अनल्पान् गुणान् किमु वच्मि। अर्थगाम्भीर्यवती चारुसंनिवेशोपेता संस्कृतभाषेयं माधुर्यं, नादसौन्दर्यं गूढानुगूढभावाभिव्यञ्जकत्वं च प्रकाशयति। प्राचीनत्वमस्या अपरं वैशिष्ट्यम्। ऋक्संहितायां देवानां स्तुतयः, एकं सदित्युद्घोषः, जगतः सदसदिति विश्लेषणञ्चेत्यादीनि यस्यां भाषायां निबद्धानि सैव भारती अद्यापि यत्किंचित्परिवर्तनमन्तरेण प्रयुज्यत इत्यपि स्वगौरवाग्रहिणामितिहासकोविदानाञ्च चेतःसु सविशेषमानन्दं वितनुते। गीरियं प्राचीनतमेत्यत्र संशयः काममवकाशं लभेत परं नास्ति संदेहस्य लेशोऽपि यदियमेव गैर्वाणी वाणी प्रथमतो निरन्तरं निरवच्छिन्नं प्रवहन्ती, सहृदयाणां चेतांसि च रञ्जयन्ती अद्यावधि वरीवर्ति। नैतच्चित्रम्, यतो भाषेयं ब्राह्मी गीर्वाणवाणी चाभिधीयते। देवार्चनोद्यतो गृहीतासन उपासकः संस्कृतमेव ब्रूयादिति विधिरेव नैनां गीर्वाणवाणीपदे प्रायच्छत्। अत्रानुसन्धेया ऋग्वेदीया ऋगियम्—

"यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्।"

वाचः पन्थानं यज्ञेनासाद्य धीराणां मानसेषु निगूढां तां कवयोऽविन्दन्, एवमुपलब्धा वाग् ऋषिभिः परिशोधिता प्रसाधिता च। एतदेवानूदितमपरस्मिन् मन्त्रे—

"सक्तुमिव तितउना पुनन्तो धीरा मनसा वाचमक्रत।"

एवं क्रान्तदर्शिभिः सुसंस्कृता वाग् गीर्वाणवाणीत्याख्यामभजत। ब्राह्मीत्यभिधेयस्य रहस्यमुद्घाटयति प्रतिपादयति चास्याः गिरो महत्त्वमस्यवामस्येति सूक्ते पठितो मन्त्रोऽयम्।

"ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।"

एतादृशी वाणी यदि वर्षाणां चतुःसहस्रं यावदन्यासां वाचां समकालमेव न तु ता अभिभूय अद्यावधि विलसन्ती चारुतामधिकतरां चापादयन्ती वरीवर्तीत्यनेनैव प्रतिपादिता अस्या उपयोगिता संजीवनीशक्तिश्च।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परं विज्ञापनप्रधानेऽस्मिन् युगे प्रतिपाद्यवस्तुन उपादेयताऽवश्यमेव साधनीया। संस्कृतभाषाया उपादेयता तु भारतीयानां कृते सविशेषैव। देशान्तरदर्शनातिशायीनि नास्तिकास्तिकदर्शनानि प्रथितान्येवाखिले विश्वे। व्याकरणशास्त्रस्य सूक्ष्मातिसूक्ष्मविश्लेषणमपि विस्मयावहम्। आयुर्वेदादीनां महत्त्वमानुकूल्यञ्च प्रतिदिनमनुभूयत एव। साहित्यमपि लोकातीतां ख्यातिमलभत, न केवलं कविकर्मणा, अपि तु रसध्वन्याद्यनुपमसिद्धान्तानां गहनातिगहनालोचनेन। शालानिर्माणमूर्तिविरचनाद्याः कला अपि संस्कृते उत्कर्षमभजन्। अलं विस्तरेण, किमस्ति कोऽपि विषयो विश्वेऽस्मिन् यन्न प्रथितोऽस्यां भाषायाम्। नातिशययुतं प्रतिभात्येतद्वचनम्—'धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ। यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्'।

संस्कृतभाषां विना वयमात्मानमपि ज्ञातुं न शक्नुमः, किं पुनरग्रे सर्तुम्। अतोऽस्या भाषायाः प्रसरे यत्नो विधेय इति न विवादास्पदम्। कथं तत्साधयितव्यम् इत्युद्दिश्य प्रतिवर्षं संस्कृतदिवसोपलक्षणेन विद्वांस एकचित्तीभूय संस्कृतस्य महिमानमुपादेयताञ्चोपदिशन्ति तद्रक्षणोपायांश्च विचिन्तयन्ति। तदनन्तरञ्च पुनः संवत्सरपर्यन्तं भाषामिमां विस्मृत्य उपेक्षमाणा नैनां व्यवहरन्ति। उपेक्षितायाः क्षीणक्षीणायाश्च संस्कृतभाषाया एकशोऽप्यनुस्मरणं रसायनं संजायत इति सत्यम्। संस्कृतदिवसीयमायोजनं कथमधिकतरं साफल्यं भजेदिति संस्कृतानुरागिभिर्विचारणीयम्। यदि द्वैविध्यं प्राप्नुयात् संस्कृतदिवससमारोहस्तर्हि साफल्यातिशयभागेव स्यादिति तर्कयामि। इदानीन्तनमयोजनन्तु संस्कृतज्ञानामेवोद्बोधनम्। ये संस्कृताध्ययनवञ्चिताः संस्कृतसाहित्यानभिज्ञास्तद्गौरवं प्रति तटस्थाश्च तेभ्यः संस्कृतेतिवृत्तोपदेशाय जीवने च तदुपादेयताप्रख्यापनाय भारतीयतायाश्च संरक्षणाय संस्कृतेतरभाषास्वपि समारोहाः संयोजनीयाः। सरलाः सूक्तयः सुभाषितादयश्च अनुवादसहकृता लोके वितरणीयाः। संस्कृतनाटकेभ्यश्चोद्धृताः विनोदसाधकाः प्रसङ्गाः सुबोधभाषानिबद्धा अभिनेयाः।

संस्कृताध्ययनस्येदमपि वैशिष्ट्यं यत् सम्यगधिगता अध्यापिता चासौ भाषा स्वार्थपरित्यागे शिष्टाचरणे च नियोजयति; शास्त्रज्ञानञ्च सांसारिकीं लिप्सां न्यूनीकरोति। साहित्येन संस्कृत्या च समग्रं भारतं वर्षमेकसूत्रनिबद्धं नानारत्नमयं हारमिव परसारं संवद्धमासीत्, अधुनाऽप्यस्ति च इत्यपि दर्शयति संस्कृता गीः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदानीं संस्कृतभाषायाः प्रचारस्य प्रसरस्य च समधिकाऽऽवश्यकता वर्तते। धर्मलोलुपताऽधर्मभीतिश्च सत्कार्येषु नियोजयतः परं कुरीतिभिः धर्मविरोधिनोभिश्च धर्माग्रहोऽधर्मपरिहारेच्छा चोभावपि रसातलं प्रेषितौ। न मातापितृभिर्न वा शिक्षकैःशिष्टाचरितं शिक्ष्यते। सदाचरणस्य शिष्टसंलापस्य च निदर्शनस्वरूपभिर्विधानादिसभाभिर्यदा शिष्टव्यवहाराय तिलाञ्जलिर्दत्तस्तर्हि का कथा अभावमहार्घतादिप्रपीडितस्य लोकस्य।

संस्कृताध्येतृभिर्न परित्याज्यं शिष्टाचरणमिति सततमुपदिशद्भिः यदि शिक्ष्यते गीरियं तर्हि भ्रष्टाचारोन्मूलनायान्दोलनं शरण्यं न स्यात्। छात्रान् सर्वतो मथ्नन्तीवाशान्तिस्तज्जन्या मनसोऽस्थिरता च, तन्निमित्ताश्च विध्वंसकाः कार्यकलापा उपशमं गच्छेयुः। संस्कृतस्यैतन्माहात्म्यं कपोलकल्पितं मनोमोदकं वेति पूर्वाग्रहः परित्याज्यः। पूर्वोक्ता उपायाः प्रयोगसापेक्षाः अतः परीक्षणमपेक्षन्ते।

संस्कृतभाषा दुर्बोधा दुरधिगमा वेति लोकापवादोऽपसारयितव्यः सारल्यविधायिभिर्विद्वद्भिः। ग्रीकलैटिनादिषु प्राचीनासु भारोपीयभाषासु फ्रेञ्चजर्मनेतालियनादिषु आधुनिकभाषास्वपि संस्कृतवच्छब्दानां धातूनाञ्च रूपाणि विद्यन्ते, परं तत्रास्ति विभक्तीनां न्यूनता। चतस्र एव विभक्तयः समस्तकारकप्रयोजनानि साधयन्ति। लकारा अपि नाधिकाः एतासु भाषासु। निर्विचारानुसरणमत्रनापेक्षितम्। संस्कृतभाषया सरणिरेषानुसरणीया न वेति विचारानन्तरं यद्यभिमतं स्यात्तर्हि नामाख्यातरूपाणि न्यूनतां प्रापणीयानि। सन्धयोऽपि शनैः शनैः शिक्षणीयाः। संस्कृतभाषायाः प्रचारकामैः पण्डितैः सम्यग् विचार्य सुसरला व्यवहारयोग्यैव भाषा प्रचारयितव्या। एतदपि विचारणीयं यत् संस्कृताध्येतारो न बाला एव अपि तु व्युत्पन्नाः युवकाः वृद्धाश्चापि संस्कृतमध्येतुं मनो दधति। तेषां कृते व्यपेतकाठिन्यानि चिन्तनपराणि पद्यानि गद्यांशानि च रचयितव्यानि यथा प्रबुद्धाः परं संस्कृतानभिज्ञाः विद्यार्थिनो नीरस इति मत्वा पाठान्मा विरमेयुः।

विदुषां समक्षं न किमपि कथनीयं तथापि संस्कृतानुरागस्तत्पक्षपातश्च ममिवं वाचालयति यत् संस्कृतभाषायाः सारल्यापादनमकार्यं दुष्करं वेति पूर्वपक्षतां परित्यज्य भवद्भिः विचारसरणिं प्रापणीया एते उपायाः।

अवहितैः भवद्भिः प्रजल्पितं म श्रुतमिति भवतामौदार्यमेव। अनवधानतया संघटितं स्खलनं समाधेयं विद्वद्वरैरिति निवेद्य विरमामि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दक्षिणामूर्ति-पीठाधीश्वर परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी १०८ श्रीमहेशानन्द गिरि का आशीर्वचन

भारत का यह दुर्भाग्य रहा है कि गत कुछ शताब्दियों से मूल परम्पराओं का ज्ञान भी अनुवादों के सहारे करके लोग विशेषज्ञ बन जाते हैं। हमारे माने हुए सम्मानित दार्शनिक, धर्माचार्य, चिकित्सक, स्थपति, साहित्यिक आदियों की तरह संगीत विशारद भी असंस्कृतज्ञ होते हैं। फलतः प्राचीन ग्रन्थों को न समझ कर उनके विषय में एक भ्रान्त धारणा बना लेते हैं एवं दूसरों के सामने साधिकार घोषणायें करते रहते हैं—कर्णाटक एवं हिन्दुस्तानी संगीत के वे प्रचारक, प्रसारक, शिक्षक प्रायः संस्कृत-अनभिज्ञ होते हैं तथा भरत नाट्यशास्त्र को जिन्होंने एक बार भी भली प्रकार नहीं समझा है, वे भरत-नाट्यम् का प्रचार करते फिरते हैं। संस्कृत जाने बिना न अपनी प्राचीन परम्पराओं का ज्ञान हो पाता है एवं न उन कड़ियों के खुले बिना केवल प्रयोगात्मक कला के आधार पर कोई ठोस उन्नति ही हो पाती है। इस कमी को दूर करने के लिए अब कुछ कुछ जागृति आने लगी है एवं इसमें डा० प्रेमलता शर्मा का एक बहुत बड़ा योगदान है। जब भारत के संगीत प्रकरण के इतिहास का प्रसंग आयेगा तब इस विषय में उनका उपकार सभी को स्मरण रहेगा। आप अनेक वर्षों से संगीत-शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को तैयार करते हुए उनमें संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन का प्रचार करती रही हैं एवं संगीत के विद्यार्थियों के लिये संस्कृत को एक अनिवार्य विषय बनाने का आप ने स्तुत्य प्रयास किया है।

इस हेतु ऐसी किताबों की आवश्यकता होना स्वाभाविक है जो संस्कृत को इस प्रकार पढ़ावें कि संगीत क्षेत्र के लोगों को रुचिकर हो। संगीत वालों को इस प्रकार संस्कृत पढ़ाने वाला प्रथम ग्रन्थ सौ० विमला मुसलगांवकर ने निर्माण करके इस ओर कदम उठाया है। कहीं-कहीं तो उन्होंने कुछ आधारभूत तत्त्वों की मीमांसा की है जो अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। उदाहरण के लिये 'अच्' के बाद सर्वप्रथम हलों में 'ह' को ही ग्रहण क्यों किया गया है? इसका विचार पाणिनि शिक्षा के आधार पर बड़ा ही सुन्दर बन गया है। इसी प्रकार वर्णों के उच्चारणों के स्थान इत्यादि का विचार भी काफी अच्छे ढंग से किया गया है। प्रारम्भ में ही यौगिक, योगरूढ़, यौगिक-रूढ़ आदि शब्दभेद करके विद्यार्थियों को पहले से ही सोचने की प्रवृत्ति कराने का प्रयत्न है तथा उपसर्गों के अर्थ का विचार भी इसी कोटि का है।

सौ० विमला परिश्रमी, सुशील तथा विद्यारसिक हैं। आप भारत में संस्कृत का संगीतज्ञों में प्रचार करने का प्रयत्न सफल बनाकर संगीतज्ञों को नवीन दिशा प्रदान करें, यह हमारी भगवान् उमारमण से प्रार्थना है। आप दीर्घजीवी एवं स्वस्थजीवी बनी रहें, यह आशीर्वाद है।

आम्ना
भरतनिधि,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi